॥ श्रीः ॥

महाकविकालिदासप्रणीतम्

रघुवंश-महाकाव्यम् ।

स्मार्तकर्मानुष्ठाननिष्ठ-कश्यपवंशावतंस-स्वधर्मधुरन्धर-पाठकोपाह्व
जयकृष्णशर्मतनुजनुषा विशुद्धानन्द-महाविद्यालयीय साहि-
त्यप्रधानाध्यापकेन गौरीनाथशर्म्मणा विरचितया
सुबोधिन्याख्यया व्याख्यया सरला-
र्थया प्राकृतभाषया
संक्षिप्तार्थया

च

संवलितम्

तच्च

काशीस्थ-शारदा-भवनात्

समुल्लसितम्

काश्यां श्रीलक्ष्मीनारायणमुद्रालये द० ल० नियोजकर द्वारा
मुद्रयित्वा प्राकाश्यं नीतम्

वैक्रमाब्दाः १९९० वृ०

निवेदना

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥ (बाणभट्टः)

न खलु न विदितं विदितवेदितव्यानां विविधविद्याविद्योतितान्तःकरणानां तत्त्वविदां विपश्चितां, बुभुत्सूनामन्तेवासिनाञ्च सदापामरप्रसिद्धिं गतेषु कविकुल-कमल-दिवाकर-कालिदास-लेखनी-विगलितेषु काव्यनाटकादिषु पञ्चमहाकाव्य-शिरोरत्नायमानेऽस्मिन् रघुवंशमहाकाव्ये साहित्यमधिजिगांसूनां जनानां कीदृशः सातिशयोऽभिनिवेश इति ।

कविकुलपतेः कालिदासस्य काव्येन न केवलं भारतमेव भारतीया विभूषयन्ति किन्त्वस्य सूक्तिसुधासरोऽवगाहनविलक्षणविचक्षणाः सरस्वदुत्तरतीरनिवासिनो गौराङ्गा अप्येतदधीयाना नितान्तं वेद्यान्तरसम्पर्ककलङ्कविकलमानन्दमनुभवन्ति, महाकवयोऽपि मुहुर्मुहुर्मुक्तकण्ठेनैकपदेऽस्य कृतेरलौकिकत्वं प्रतिजानाना नितरामेनं प्रशंसन्ति ।

तदेवं गुणगणगरीयसो महाकवेरस्यां कृतौ कविना दिलीपादारभ्य अग्निवर्ण-पर्यन्ता ऊनत्रिंशद्भूपाला वर्णिताः । अत्र चाङ्गी वीरो रसः । शृङ्गारकरुणशान्ताद-यश्चाङ्गानि । इदञ्च काव्यं रामायणमहाभारतादिवर्णितामितिहासकथामाश्रित्य प्रणीतम् । सम्यगुपवर्णिताश्चात्र परमानन्दैकफला धर्मार्थकाममोक्षरूपाश्चत्वारो वर्गाः । विलसन्ति च यथायोगमत्र सर्वाण्येव महाकाव्यलक्षणानि ।

अयञ्च महाकविरिह जगति रघुवंशकुमारसम्भवात्मकमनुत्तमं श्रव्यं महाकाव्यं, अभिज्ञानशाकुन्तलविक्रमोर्वशीमालविकाग्निमित्रादिरूपमनुपमं दृश्यं काव्यं, ऋतुसंहारमेघदूतादिरूपं सर्वोत्कृष्टं खण्डकाव्यं, नलोदयादिरूपं यमककाव्यं, श्रुतबोधादिरूपं छन्दःशास्त्रं, ज्योतिर्विदाभरणरूपं ज्योतिःशास्त्रमन्यांश्च बहुविधान् निबन्धान् निबध्नन्नसाधारणं स्वीयं वैदुष्यं सर्वतोमुखीं प्रतिभाञ्च स्फुटं प्रकटयामास ।

अस्य समयादिव्यतिकरं निर्णेतुं चिरं प्रयतमानानां बहूनां भारतीयानां प्रत्नतत्त्वान्वेषणनिपुणानां विदेशीयानाञ्च मिथो विसंवादतया नाद्यावधि कैरपि कश्चन सिद्धान्त आसाद्यत । अयञ्च स्वल्पीयानेवांशः परीक्ष्यतया प्रकाश्यत इति मयापि ग्रन्थगौरवभयादत्र मौनमेवावलम्ब्यत इति—

विदुषामनुचरस्य
गो [illegible] नाथ [illegible]

कथा-संक्षेप



दूसरा-सर्ग

राजा दिलीप को नन्दिनी का वरदान देना।

मायाकेसरिणं प्रदर्श्य नृपतेर्भावं निदिग्ध्या मुने-
र्धेनुः सूनुमवाप्नुहीति मुदिता तस्मै वरं सा ददौ ।
सोऽपि प्राप्य मनोरथं मुनिमुपामन्त्र्य प्रजावत्सलो
देव्या सार्धमुपाजगाम पवनप्रोत्पताकां पुरम् ॥ २ ॥

प्रातःकाल होते ही नित्यकर्म से निवृत्त हो, रानी से नन्दिनी का पूजन कराकर राजा दिलीप उसे चराने के लिये जङ्गल ले गया। कुछ दूर जाने पर रानी तथा सिपाहियों को उसने लौटा दिया। और स्वयं, गुरुदेव की आज्ञानुसार सारा दिन नन्दिनी को चराता व उसकी सेवा करता और सायंकाल होते ही उसे आश्रम में लाता, रानी सुदक्षिणा आगे बढ़कर उसके पुनीत मस्तक की पूजा करती, इस प्रकार सेवा करते २ उसे २१ दिन व्यतीत हुए।

बाइसवें दिन नन्दिनी दिलीप की परीक्षा करने के हेतु चरती चरती गङ्गाजी के किनारे हरी हरी दूबों वाली एक गुफा में चली गई। राजा यह समझ कर कि यह कामधेनु की कन्या है किस पशु की शक्ति है जो उस पर आक्रमण कर सके; उसकी रक्षा से निश्चिन्त हो पहाड़ी सुहावना दृश्य देखने लगा। इधर राजा ज्योंही नन्दिनी के ओट हुआ है कि अकस्मात् एक सिंह उस पर झपटा। नन्दिनी बड़ी जोर से डकराई उसकी मर्मभेदी आवाज सुन पीछे घूमकर राजा क्या देखता है कि नन्दिनी के ऊपर सिंह बैठा हुआ है और नन्दिनी राजा की ओर अपनी रक्षा के लिये अत्यन्त कातर दृष्टि से देख रही है। इस दृश्य को देखकर राजा के मन में बड़ी दया आई और सिंह पर अत्यन्त क्रुद्ध हो उसे मारने के लिये

तरकस से वाण निकालने के हेतु अपना दाहिना हाथ पीठ की ओर किया, पर, उसका हाथ वाण के पास जाकर वहीं चिपक गया। राजा अपनी ऐसी अनहोनी दशा देखकर बड़ा असमंजस में पड़ा, क्रोध के मारे सर्वांग से चिनगारियाँ निकलने लगीं पर कुछ कर न सका। तब सिंह मनुष्य वाणी में बोला "हे राजन्! अब तू मेरे मारने के लिये विशेष प्रयत्न न कर, तेरा एक भी शस्त्र मेरा बाल बाँका नहीं कर सकता, मैं जन्म का पशु नहीं हूँ, तू अपने सामने जो देवदारु का पेड़ देख रहा है. यह पार्वतीजी के हाथ का सींचा हुआ है और पुत्र की तरह उन्हें अत्यन्त प्यारा है।

एक दिन किसी जङ्गली हाथी ने खुजलाने के लिये अपनी कनपटी इसी वृक्ष के स्कन्ध में रगड़ दी उससे इसकी छाल छिल गई। पार्वती जी यह देख उतनी ही शोकाकुला हुईं जितनी देव और दानवों की लड़ाई में स्वामीकार्तिक के घायल होने से हुईं थीं। इसलिये उसी दिन से जङ्गली हाथियों को डराने के लिये मुझे शिवजी ने सिंह बनाकर यहाँ रहने की आज्ञा दी है और यह भी कहा है कि पशु अपने आप तेरे पास आ जाय उसे खा लेना भक्ष्य ढूँढ़ने कहीं न जाना। इसलिये आज मानों साक्षात् शंकर भगवान की भेजी हुई यह गाय मेरे पास आई है। यह मेरा भक्ष्य है मैं इसे छोड़ नहीं सकता। अब तू अपने गुरु के पास लौट जा। लज्जा छोड़ दे। मनुष्य जिस वस्तु की रक्षा नहीं कर सकता। उससे उसका यश क्षीण नहीं होता।" इस प्रकार सिंह का वचन सुनकर राजा ने उससे यों कहना शुरू किया:—

"हे सिंह! देवादिदेव महादेव जैसे आपके मान्य हैं उसी तरह वे मेरे भी मान्य हैं और गुरु की यह "गाय" भी पूजनीय है, इसलिये अपने सामने इसका विनाश होने देना सर्वथा अनुचित है। अतः यदि आपको भोजन करना है तो आप दया करके इसे छोड़ दें और उसकी जगह मुझे खालें। सिंह यह सुन बड़ी जोर से हँसता हुआ बोला:—

राजन्! एक पशु के लिये अपने इतने बड़े राज को लात मारना महा मूर्खता है। यदि तू जीता रहेगा, असंख्य प्रजा का पालन करेगा, इस एक गाय के बदले इससे भी अधिक दूध देने वाली प-- करोड़ों गायें देकर अपने गुरु को प्रसन्न कर सकेगा। इस पर

ने कहा, जो कुछ हो अपने सामने गुरु की वस्तु का नाश देख नहीं सकता, इस तरह अपनी बातों से सिंह को हरा कर गाय का छोड़ना और अपना खाना सिंह से उसने स्वीकार करवाया और अपना शस्त्र दूर रख शरीर को मांस पिण्ड की तरह सिंह के सामने झुका दिया, मानों माँस का लोथड़ा किसी ने सिंह को खाने दे दिया हो। दिलीप मन ही मन समझ रहा था कि अब सिंह मेरे ऊपर झपटेगा और विचारी नन्दिनी की जान बचेगी पर इतने ही में ऊपर से विद्याधरों ने फूल बरसाये और नन्दिनी ने अति मधुर वचनों से कहा कि:— "हे पुत्र उठो"। राजा उठा और उसने अपने सामने माता की समान नन्दिनी को देखा पर सिंह कहीं दिखाई न दिया। नन्दिनी ने राजा से कहा कि "हे पुत्र मैं तुझ पर प्रसन्न हुई, तुझे जो वर माँगना हो माँग ले"। इस पर राजा ने जब सुदक्षिणा में अपने समान पुत्र माँगा तब नन्दिनी ने दोने में अपना दूध दुहकर पीने की आज्ञा दी। परन्तु राजा ने विना गुरु की आज्ञा के उसे ग्रहण करना उचित न समझ कर आश्रम में आ, गुरु को सम्पूर्ण वृत्तान्त कहकर उनकी आज्ञा ले नन्दिनी का दूध पीया।

प्रातःकाल गोसेवारूप व्रत की पारणा करने के उपरान्त दिलीप और सुदक्षिणा गुरु, गुरुपत्नी, अग्नि, और नन्दिनी की प्रदक्षिणा कर अपनी राजधानी की ओर लौटीं और रानी गर्भवती हुई ॥ २ ॥

तीसरा सर्ग।

रघु का जन्म और उसका राज्याभिषेक।

देवी द्यावसुपुवे शुभेऽहनि रघुं राजाऽस्य यूनः क्रमात्
कृत्वोद्वाहमनीव गृध्नुरभवद्वृद्धोऽश्वमेधान् प्रति।
छेपादश्वमुपं विजित्य रघुणा शक्रंप्रतापी मघां-
स्तव्यैकांतगतं रघौ कुलधुरं धृत्वा सदारोऽसरत् ॥

इस प्रकार कुछ दिन के अनन्तर दसवें महीने रानी को पुत्र उत्पन्न हुआ राजा ने उसका नाम "रघु" रक्खा। राजकुमार रघु शुक्लपक्ष के चन्द्र की तरह दिन प्रतिदिन अपने शरीर की पुष्टि को धारण करने लगा। राजा दिलीप ने बड़े उत्साह और उमंग के साथ

यथा समय उसके चूड़ाकरण उपनयन आदि संस्कार कराये। विद्वानों को रख कर विद्या पढ़ाई। उसके सम्पूर्ण विद्या में निष्णात होने पर राजा दिलीप ने स्वयं उसे धनुर्वेद की शिक्षा दी अनन्तर उसे युवराज बनाया। दिलीप ने अपना सौवां अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया और उस यज्ञिय अश्व की रक्षा करने के लिये अन्यान्य राजकुमारों सहित युवराज रघु को नियुक्त किया। इन्द्र यह समझ कर कि यदि दिलीप का यह यज्ञ पूरा हो जायगा तो वह मेरे पद का अधिकारी होगा। इसलिये इन्द्र ने उस अश्व को रघु और उसके अनुयाइयों के सामने से ही चुराया परन्तु उसकी माया से कोई उसे और अश्व को देख न सका। रघु और उसके अनुयायी अत्यन्त चकित हुए। उसी समय परमेश्वर की कृपा से कुलगुरु भगवान् वसिष्ठ मुनि की धेनु वहाँ आई। उसके मूत्र से रघु ने ज्योंही अपने नेत्र को धोया: पूर्व दिशा में घोड़ा भगाकर ले जाते हुए इन्द्र को देखा और बड़े गम्भीर स्वर से इन्द्र को ललकार कर कहा कि हे देवेन्द्र ! यज्ञ की रक्षा करने वाले आप ही यदि ऐसे नीच कर्म में प्रवृत्त होंगे तो यह सब कर्म सदा के लिये लुप्त हो जायगा। इसलिये आप कृपा कर इस अश्व को छोड़ दें। रघु के ऐसे वचन सुन इन्द्र बोला—"हे राजकुमार ! तेरा कहना सत्य है परन्तु शतक्रतु अर्थात् सौ यज्ञ करने वाला मेरा ही नाम है दूसरे का नहीं, पर, अब तेरे पिता ने मेरा यह नाम मिटाने के लिये ही यह सौवां अश्वमेध यज्ञ रचा है इसलिये मैंने इस अश्व को चुराया है। तू इसके पीछे मत पड़, नहीं तो सगर राजा की सन्तान की तरह तेरा भी नाश होगा"। इन्द्र के इस वचन को सुन रघु बड़े जोर से ठह ठहा कर हँस पड़ा और इन्द्र से बोला, इन्द्र ! मुझे विना जीते तू घोड़ा नहीं ले जा सकता इतना कह तुरन्त इन्द्र की छाती में एक बाण मारा। इन्द्र ने भी रघु को बाण से घायल किया रघु ने भी एक बाण से उसकी ध्वजा काटी और एक बाँण उसकी बाहु में मारा। इस प्रकार चारों ओर से सिद्ध और सैनिकों से घिरा हुआ उन दोनों में भयंकर युद्ध होने लगा। अन्त में रघु के बाण से इन्द्र की प्रत्यञ्चा कट जाने पर इन्द्र ने अति क्रुद्ध हो रघु के ऊपर वज्र छोड़ा। राजकुमार रघु के छाती पर उसका प्रहार होते ही वह मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ा। सारी सेना हाहाकार करती हुई दौड़ी, पर वाहरे राजकुमार, इन्द्र के वज्र प्रहार को तनिक भी परवाह न

देखते ही देखते उठ खड़ा हुआ, इतना ही नहीं, उठते ही उस महावीर ने इन्द्र को मारने के लिये ज्यों ही धनुष पर बाण चढ़ाना चाहा कि इन्द्र ने रोक कर उसे कहाः—

"राजकुमार ! मैं तेरी वीरता से प्रसन्न हुआ। इस घोड़े को छोड़ कर तू जो चाहे मुझ से वर माँग"। रघु ने उत्तर दिया कि जो यही तेरे मन में है तो ऐसा कर कि विना घोड़ा छोड़े ही मेरे पिता ९९ यज्ञों से १०० यज्ञ का फल प्राप्त कर सकें और इस वृत्तान्त को वह तेरे ही मुख से सुनें। इन्द्र ने रघु की चतुराई को समझ कर मन ही मन उसे सराहा और उसके वचन को स्वीकार किया। इसके बाद इन्द्र घोड़ा लेकर अपनी पुरी को सिधारा। रघु भी अपने राज्य की ओर लौटा। रघु के आने से पहिले दिलीप ने इन्द्र के दूत से लड़ाई का सारा वृत्तान्त सुन लिया था इसलिए राजकुमार रघु के आते ही बड़ी खुशी २ उसे गले लगाया और कुछ दिन के उपरान्त रघु को राज देकर वानप्रस्थाश्रम का आश्रय लिया ॥ ३ ॥

चौथा सर्ग ।

रघु की दिग्विजय यात्रा

स्थित्वा राज्यपदे रघुः परिचरन् हित्वा प्रमादं द्विजान्
गत्वा सैन्यपुरःसरः समधिकं जित्वा चतस्रो दिशः ।
हत्वा विद्विपतां श्रियो मखमहं कृत्वा कृती दक्षिणां ।
दत्त्वा सर्वधनोच्चयं निजयशः श्रुत्वा दरिद्रो बभौ ॥

शरदऋतु के लगते ही रघु को दिग्विजय का उत्साह हुआ। सेना लेकर पहले पूर्व दिशा की ओर गया। सुह्मदेश और वङ्गदेश जीता। गङ्गा के टापुओं में विजय स्तम्भ गाड़े। कपिशा नदी उतर कर कलिंग देश में गया। वहाँ के राजा को जीता। कपिशा नदी के किनारे २ चल कर कावेरी को पार कर मलयागिरि की तराई में डेरा किया। पाण्डुदेश के राजा से मोती आदि अनेक रत्न भेंट लेकर मलय तथा दर्दुर पर्वतों पर होता हुआ पश्चिम को ओर चला। वहाँ के राजाओं को जीत उनसे भेंट ले त्रिकूट पहाड़ को देखता हुआ पारसीक देश में आकर यवनों को जीता उसके बाद उत्तर दिशा को ओर गया। वहाँ हूण जाति के क्षत्रियों को जीत कर उनसे तथा

शाम्बोंओं से भेंट ली। हिमालय पर चढ़ कर पहाड़ियों से बहुत धन लिया और कैलाश तक गया। वहाँ से लौट कर लौहित्या नदी के पार प्राग्ज्योतिष के राजा को तथा कामरूप के राजा को जीत कर उनसे भेंट में हाथी लिये। इस प्रकार चारो दिशाएँ जीत कर रघु अपनी राजधानी में पहुँचा और विश्वजित यज्ञ कर सारा धन ब्राह्मणों को दे धर्म-राज करने लगा।

पञ्चमः-सर्गः।

अजका स्वयंवर के लिये प्रयाण करना।

विद्यान्ते गुरुदक्षिणां मृगयते कौत्साय यज्ञेश्वराव
आकृष्य व्यतरद्रघुः कनकजाः कोटीश्चतस्रो दश।
देव्यामस्य तदाशिषाऽभवदजः सोऽपीन्दुमत्यै प्रयान्
अस्त्रं शापहरः प्रियंवदमुखात्प्राप्याविशत्कुण्डिनम् ॥५॥

इस प्रकार विश्वजित यज्ञ में अपना सारा ऐश्वर्य देकर रघु मिट्टी के पात्र को अपने कार्य में लाया करता था।

किसी समय महर्षि वरतन्तु के शिष्य कौत्स अपने गुरु को गुरु-दक्षिणा देने के लिये द्रव्य की कामना ले रघु के पास आये। रघु ने अपने यहाँ आये अतिथि कौत्स की यथाविधि पूजा की। कुशल प्रश्न के उपरान्त कौत्स ने कहा "हे राजन्! आपके ऐसे धर्मशील प्रजा-पालक राजा के होते हुए प्रजा क्यों न सुखी होवे, आपके गुण आपके पूर्वजों से भी कहीं उँचे पद पर पहुँचे हुए हैं। मैं इस समय आपके पास अपने स्वार्थ के लिये आया हूँ पर आपकी स्थिति देख कर मालूम होता है कि मुझे आपके पास इससे पहले ही आ जाना चाहिये था। अस्तु। यद्यपि इस समय आप केवल नामधारी राजा के सदृश हो रहे हैं पर, फिर भी देवताओं की तृप्ति के लिये स्वयं क्षीण चन्द्र की तरह भिक्षुकों में सर्वस्व दान करने वाले आप अनुपम शोभा धारण कर रहे हो। जैसे किसी कवि ने कहा है कि—

मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो
मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः।
कलाशेषश्चन्द्रः, सुरतमृदिता बालवनिता,
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नृपाः॥

अब मैं गुरुदक्षिणा के लिये और किसी राजा के पास जाता हूँ" इतना कह कर ज्यों ही कौत्स ने जाना चाहा कि राजा रघु ने उन्हें रोक कर पूछा कि हे विद्वन्? कितने धन की आपको आवश्यकता है। इस पर कौत्स ने गुरु महर्षि वरतन्तु के साथ की हुई सारी बातें कह कर उसे चौदह करोड़ की आवश्यकता बतलाई। रघु ने यह कह कर कि आज तक मेरे यहाँ से कोई अतिथि अपने मनोरथ को विना पूरा किये लौटा नहीं इस लिये आप मेरे इस पवित्र अग्नि-शाला में दो तीन दिन कृपा कर प्रतीक्षा करें मैं आपके कार्य के लिये प्रयत्न करता हूँ। कौत्स ने इसे स्वीकार किया। रघु ने कुबेर पर प्रातःकाल चढ़ाई करने का निश्चय किया। रघु प्रातःकाल ज्योंही रथ पर पैर रखता है कि खजाने के पहरेदारों ने आ विनीत होकर निवेदन किया कि "रात्रि में "कोष-गृह" में सुवर्ण की वृष्टि हुई है।" रघु ने जाकर उसे देखा और पर्वत की तरह वह सुवर्ण की सारी राशि विद्वान् कौत्स को दे दी। कौत्स ने उन्हें पुत्र-लाभ का आशीर्वाद देकर गुरु के आश्रम की ओर प्रयाण किया।

कुछ दिन के बाद रघु को एक पुत्र हुआ जिसका नाम "अज" रक्खा गया। क्रमशः समय पाकर शिक्षा आदि पाने के उपरान्त अज युवा अवस्था को प्राप्त हुआ और इन्दुमती के स्वयंवर में प्रस्थान किया। मार्ग में मतङ्ग ऋषि के शाप से गज शरीर को प्राप्त प्रियंवद गन्धर्व को मार कर उसका उस योनि से उद्धार किया। प्रसन्न होकर उसने उसको सम्मोहन नाम का अस्त्र दिया। इस प्रकार वह राजा भोज के नगर में पहुँचा। भोज ने उसका स्वागत किया और एक सुन्दर सजे सजाए राजभवन में ठहराया। अज ने स्नानादि क्रिया से निवृत्त हो विश्राम किया और दूसरे दिन प्रातःकाल स्वयंवरोचित वेष-भूषा को धारण कर स्वयंवरस्थ राज-समाज की ओर प्रयाण किया।



श्रीरघुवंश-महाकाव्यम् ।

द्वितीयः सर्गः



अथ प्रजानामधिपः प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् ।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ॥ १ ॥

रघूणां (रघुकुलोद्भवानां भूपतीनां) वंशः, तद्विषयकप्रबन्धः अस्ति अस्मिन् महाकाव्ये तद् रघुवंशं महाकाव्यम् । सूर्यकुलोत्पन्ननृपतिचरितकथनात्मकं महाकाव्यमित्यर्थः ।

अत्र कविना दिलीपादारभ्य अग्निवर्णपर्यन्ता एकोनत्रिंशद्भूपाला वर्णिताः । ते च यथा—

(१) दिलीपः	(१,२,३, सर्गेषु)	(१५) पारियात्रः	(१८ सर्गे)
(२) रघुः	(३,४,५, सर्गेषु)	(१६) शिलः	(१८ सर्गे)
(३) अजः	(५,६,७,८, सर्गेषु)	(१७) उन्नाभः	(१८ सर्गे)
(४) दशरथः	(९,११,१२, सर्गेषु)	(१८) वज्रनाभः	(१८ सर्गे)
(५) रामः	(१०,११,१२,१३, १४,१५, सर्गेषु)	(१९) शङ्खणः	(१८ सर्गे)
		(२०) व्युषिताश्वः	(१८ सर्गे)
(६) कुशः	(१६ सर्गे)	(२१) विश्वसहः	(१८ सर्गे)
(७) अतिथिः	(१७ सर्गे)	(२२) हिरण्यनाभः	(१८ सर्गे)
(८) निषधः	(१८ सर्गे)	(२३) कौसल्यः	(१८ सर्गे)
(९) नलः	(१८ सर्गे)	(२४) ब्रह्मिष्ठः	(१८ सर्गे)
(१०) नभः	(१८ सर्गे)	(२५) पुत्रः	(१८ सर्गे)
(११) पुण्डरीकः	(१८ सर्गे)	(२६) पौष्यः	(१८ सर्गे)
(१२) क्षेमधन्वा	(१८ सर्गे)	(२७) ध्रुवसन्धिः	(१८ सर्गे)
(१३) देवानीकः	(१८ सर्गे)	(२८) सुदर्शनः	(१८ सर्गे)
(१४) अहीनगुः	(१८ सर्गे)	(२९) अग्निवर्णः	(१९ सर्गे

(अन्वयः) अथ, यशोधनः, प्रजानाम्, अधिपः, प्रभाते, जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्यां, पीतप्रतिबद्धवत्सां, ऋषेः, धेनुं, वनाय, मुमोच ।

(टीका) अथ = निशानयनानन्तरं, यशोधनः = कीर्तिधनः, "अतियशस्वी" इत्यर्थः । "यशः कीर्तिः समज्ञा च" इत्यमरः, प्रजानां = जनानां, "प्रजा स्यात्संततौ जने" इत्यमरः, अधिपः = प्रभुर्दिलीपः, प्रभाते = प्रातःकाले, जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्यां = सुदक्षिणास्वीकारितचन्दनपुष्पमालाम्, पीतप्रतिबद्धवत्सां = पानानन्तरबद्धवत्सकां, ऋषेः = वसिष्ठस्य, धेनुं = नन्दिनीम्, वनाय = वनं गन्तुं, मुमोच = मुक्तवान् ॥ १ ॥

(समासः) यशोधनः, यश एव धनं यस्य सः यशोधनः । प्रजानां = प्रजायन्त इति प्रजाः तासाम् । अधिकम्पातीत्यधिपः । प्रभाते = प्रकर्षेण भातीति प्रभातं तस्मिन् । जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्यां, गन्धश्च माल्यञ्च गन्धमाल्ये, जायतेऽस्यामिति जाया, तया प्रतिग्राहिते गन्धमाल्ये यया सा ताम् । पीतप्रतिबद्धवत्साम्, आदौ पीतः पश्चात्प्रतिबद्धः वत्सो यस्याः सा ताम् ॥ १ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अथ प्रभाते यशोधनेन प्रजानाम् अधिपेन जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्या पीतप्रतिबद्धवत्सा ऋषेः धेनुः वनाय मुमुचे ॥ १ ॥

(सरलार्थः) प्रातः सुदक्षिणा धेनुं गन्धमाल्यादिभिः पूजयामास । कृतस्तन्यपानं तस्या वत्सञ्च स्वस्थाने बबन्ध, ततश्च कीर्तिधनो दिलीपः स्वच्छन्दविहारार्थं तां नन्दिनीमुन्मुमोच ॥ १ ॥

(सरलार्थ भाषा) रात्रि व्यतीत होने पर प्रातःकाल प्रजापालक, यशके धनी राजा दिलीपने, सुदक्षिणासे दिये हुए चन्दन और पुष्पमालाको धारणकरनेवाली, दूध पोकर बँधे हुए बछड़ेवाली मुनिवसिष्टजी की गायको जंगलमें घूमने के लिये खोल दिया ॥ १ ॥

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्तनीया ।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ॥२॥

(अन्वयः) अपांसुलानां, धुरि, कीर्तनीया, मनुष्येश्वरधर्मपत्नी, खुरन्यासपवित्रपांसुं, तस्याः, मार्गं, स्मृतिः, श्रुतेः, अर्थम्, इव, अन्वगच्छत् ॥ २ ॥

(टीका) अपांसुलानां = पापरहितानां पतिव्रतानां, धुरि = अग्रे, कीर्तनीया = परिगणनीया "पतिव्रतात्वेन कामिनीकुलललामभूता" मनुष्येश्वरधर्मपत्नी = दिलीपभार्या सुदक्षिणा, खुरन्यासपवित्रपांसुं = शफनिक्षेपपूतरजःकणम्, "शफं क्लीबे खुरः पुमान्" इति तथा "रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः पांसुर्ना न द्वयो रजः" इति चामरः, तस्याः= धेनोः, मार्गं = पन्थानं, स्मृतिः = मन्वादिस्मृतिः, श्रुतेः = वेदस्य, अर्थमिव = अभिधेयमिव, अन्वगच्छत् = अनुसार ॥ २ ॥

(समासः) अपांसुलानां, पांसवः = दोषाः पापानि वा सन्ति आसाम् इति पांसुलाः "सिध्मादिभ्यश्चेति लच प्रत्ययः" न पांसुला इत्यपांसुलास्तासाम् । कीर्तयितुं योग्या कीर्तनीया । मनुष्येश्वरधर्मपत्नी, धर्मस्य पत्नी, धर्मपत्नी, ईशितुं शीलमस्येति ईश्वरः, मनुष्याणामीश्वर इति मनुष्येश्वरस्तस्य धर्मपत्नी । तल्लक्षणं यथाः-

"पतिं धर्मरतं पत्नी साध्वी शुश्रूषते तु या ।
नित्यं त्वनन्यहृदया धर्मपत्नीं तु तां विदुः ॥"

खुरन्यासपवित्रपांसुं, पूयन्ते एभिरिति पवित्राः, खुराणां न्यासाः खुरन्यासाः तैः पवित्राः पांसवो यस्य सः तं । मार्गं = मार्ग्यतेऽन्विष्यतेऽनेनेति मार्गः तम् । श्रुतेः = श्रूयते धर्मोऽनयेति श्रुतिः तस्याः ॥२॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)...... ......मनुष्येश्वरधर्मपत्न्या खुरन्यासपवित्रपांसुः तस्याः मार्गः श्रुतेः अर्थः स्मृत्या इव अन्वगम्यत ॥ २ ॥

(सरलार्थः) यथा स्मृतिः श्रुतिप्रतिपादितमर्थम् अभिदधाना सदा तामेवानुगच्छति तथैव पतिव्रताकुलललामभूता महाराजमहिषी सुदक्षिणाऽपि धेनोः पावनैः खुरक्षेपैः पवित्रपांसुं तमेव नन्दिनीमार्गमनुजगाम ॥ २ ॥

(सरलार्थ भाषा) पतिव्रताओंमें पहले पूजा करने योग्य राजा दिलीपकी पत्नी सुदक्षिणा, नन्दिनीके खुरके रखनेसे पवित्र धूलिवाले मार्गमें श्रुतिके अर्थ के अनुसार स्मृतिके नाई चली ॥ २ ॥

निवर्त्य राजा दयितां दयालुस्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः ।
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ॥ ३ ॥

(अन्वयः) यशोभिः, सुरभिः, दयालुः, राजा, दयितां, निव

पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां, गोरूपधराम्, उर्वीम्, इव, तां सौरभेयीं, जुगोप ॥३॥

(टीका) यशोभिः = कीर्तिभिः, "यशः कीर्तिः समज्ञा च" इत्यमरः, सुरभिः = मनोज्ञः "सुरभिः स्यान्मनोज्ञेऽपि" इति विश्वः, दयालुः = कृपालुः "स्याद्दयालुः कारुणिकः कृपालुः" इत्यमरः, राजा = भूपो दिलीपः, दयितां = प्रियां, "दयितं वल्लभं प्रियम्" इत्यमरः निवर्त्य = परावर्त्य, भूमिपक्षे = पयोधरीभूतचतुःसमुद्राम = ऊधीभूतचतुःसागरां, धेनुपक्षे = दुग्धनिस्यन्दनचतुःस्तनराम्, गोरूपधरां = गोमूर्त्तिधारिणीम्, उर्वीम् = वसुन्धरामिव. "वसुधोर्वी वसुन्धरा" इत्यमरः, जुगोप = ररक्ष ॥ ३ ॥

(समासः) दयाशीलो दयालुः । राजते शोभतेऽसौ राजा । पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां, भूमिपक्षे-समीचीनाः उद्राः जलजन्तुविशेषादयो यत्र, सह मुद्रया वेलया वर्तत इति वा समुद्रः, धरन्तीति धराः, पयसां धराः पयोधराः, अपयोधराः पयोधराः सम्पद्यमानाः पयोधरीभूताः, पयोधरीभूताश्चत्वारः समुद्रा यस्यास्ताम् । धेनुपक्षेः—पयसा अनधरा अधराः संपद्यमाना अधरीभूता अधरीभूताश्चत्वारः समुद्रा यस्यास्ताम् । सुरभेः अपत्यं स्त्री सौरभेयी ताम् । गोरूपधरां, धरतीति धरा, गोः रूपं गोरूपं, तस्य धरा ताम् ॥ ३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) यशोभिः सुरभिणा दयालुना राज्ञा दयितां निवर्त्य पयोधरीभूतचतुःसमुद्रा गोरूपधरा उर्वी इव सा सौरभेयी जुगुपे ॥ ३ ॥

(सरलार्थः) परमकारुणिको दिलीपः तपोवनवहिर्गमनात्सुदक्षिणां परावर्त्य नन्दिनीरूपेण समागतां चतुर्भिः स्तनैरिव चतुर्भिः समुद्रैः संयुक्तां साक्षाद्वसुन्धरां देवीमिव तां नन्दिनीं ररक्ष ॥ ३ ॥

(भावार्थ) दयावान और यशस्वी राजा दिलीपने रानी सुदक्षिणाको लौटा कर चार समुद्ररूपी चार स्तनोंवाली कामधेनूकी कन्याकी गायके रूपमें पृथ्वीके जैसी रक्षा की ॥ ३ ॥

व्रताय तेनाऽनुचरेण धेनोर्न्यषेधि शेषोऽप्यनुयायिवर्गः ।
न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः॥४॥

(अन्वयः) व्रताय, धेनोः, अनुचरेण, तेन, शेषोऽपि, अनुयायिवर्गः, न्यषेधि, तस्य, शरीररक्षा, अन्यतः, न च, हि, मनोः, प्रसूतिः, स्ववीर्यगुप्ता (अस्ति) ॥ ४ ॥

(टीका) व्रताय = गोपालनरूपं व्रतङ्कर्तुं, धेनोः = नन्दिन्याः, अनुचरेण = सेवकेन, तेन = राज्ञा दिलीपेन, शेषोऽपि = अवशिष्टोऽपि, सुदक्षिणापेक्षयेत्यर्थः, अनुयायिवर्गः = अनुचरगणः, न्यषेधि = परावर्तितः, तस्य = दिलीपस्य, शरीररक्षा = देहसंरक्षणं, "गात्रं वपुः संहननं शरीरं, वर्ष्म विग्रहः । कायो देहः" इत्यमरः, च, अन्यतः = अन्यस्मात्, पुरुषात् न = नास्ति, हि = यतः, मनोः = वैवस्वतमनोः, प्रसूतिः = सन्ततिः, स्ववीर्य्यगुप्ता = स्वपराक्रमरक्षिता भवति ॥ ४ ॥

(समासः) अनुचरेण, अनु = पश्चाच्चरतीत्यनुचरस्तेन । अनुयायिवर्गः, अनु = पश्चाद्यान्ति तच्छीला अनुयायिनोऽनुगामिनस्तेषां वर्गः । शरीररक्षा शृणाति शीर्यते वा शरीरं, तस्य रक्षा । प्रसूयत इति प्रसूतिः । स्ववीर्यगुप्ता, स्वस्य वीर्य्यं स्ववीर्य्यं, तेन गुप्ता ॥४॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) व्रताय धेनोः अनुचरः सः शेषम् अपि अनुयायिवर्गं न्यषेधीत् । अस्य शरीररक्षया च अन्यतः न, हि मनोः प्रसूत्या स्ववीर्यगुप्तया (भूयते) ॥ ४ ॥

(सरलार्थः) व्रतपरिपालनायैव वने नन्दिनीमनुगच्छन्दिलीपः प्राक् सुदक्षिणां ततस्ततोऽवशिष्टानन्यानपि अनुचरान् अनुगमनान्निवर्तयामास । मनुप्रभवाः कुलधुरन्धरा राजानः स्वबाहुबलेनैव आत्मरक्षणं कुर्वन्ति आत्मरक्षार्थं परान्नापेक्षन्ते ॥ ४ ॥

(भावार्थ) राजा दिलीपने शेष अनुचरोंका झुण्ड भी लौटा दिया, उसके शरीरकी रक्षा दूसरे किसीसे नहीं होती थी, क्योंकि मनुकी सन्तान अपने ही बलसे रक्षित रहती है ॥ ४ ॥

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च ।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् ॥ ५ ॥

(अन्वयः) सम्राट्, सः, आस्वादवद्भिः, तृणानां, कवलैः, कण्डूयनैः, दंशनिवारणैः, अव्याहतैः, स्वैरगतैः, च, तस्याः, समाराधनतत्परः, अभूत् ॥५॥

(टीका) सम्राट् = मण्डलेश्वरः, "येनेष्टं राजसूयेन मण्डलस्येश्वरश्च यः । शास्ति यश्चाज्ञया राज्ञः स सम्राट्" इत्यमरः,

= दिलीपः, आस्वादवद्भिः = रसवद्भिः, "सुस्वादुभिरित्यर्थः" तृणानां = घासानां, "शष्पं बालतृणं घासः" इत्यमरः, कवलैः = ग्रासैः, "ग्रासस्तु कवलः पुमान्" इत्यमरः, कण्डूयनैः=नखादिना गात्रमर्जनैः, दंशनिवारणैः, = वनमक्षिकादूरीकरणैः, "दंशस्तु वनमक्षिका" इत्यमरः, अव्याहतैः = अप्रतिहतैः, स्वैरगतैः = स्वेच्छागमनैः "मन्दस्वच्छन्दयोः स्वैरः," इत्यमरः, तस्याः = धेनोः, समाराधनतत्परः = सेवासक्तः, "तत्परे प्रसितासक्तौ" इत्यमरः, अभूत् = आसीत् ॥५॥

(समासः) सम्यक् राजतेऽसौ सम्राट् । दंशनिवारणैः, दंशानां निवारणानि तैः । आस्वादवद्भिः, आस्वादो विद्यते येषान्ते आस्वादवन्तस्तैः । अव्याहतैः, न व्याहतानीत्यव्याहतानि तैः । स्वैरगतैः, स्वेन (स्वातन्त्र्येण) ईरते इति स्वैराणि, स्वैराणि गतानि स्वैरगतानि तैः । समाराधनतत्परः = तदेव परं प्रधानं यस्येति तत्परः, आराध्यतेऽनेनेत्याराधनं, सम्यग् आराधनं समाराधनं, तस्मिन् तत्पर इति समाराधनतत्परः ॥५॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन सम्राजा आस्वादवद्भिः······तस्याः समाराधनतत्परेण अभावि ॥५॥

(सरलार्थः) राजा दिलीपः कोमलघासग्रासदानेन, गात्रमर्जनेन, वनमक्षिकादूरीकरणेन, अप्रतिरुद्धेन तस्याः गमनेन च, धेनोः आराधनासक्त आसीत् ॥५॥

(भावार्थ) राजा दिलीप कभी २ हरे हरे घासों के ग्रासों से कभी २ खुजलाने से, कभी २ मक्खी और मच्छड़ों के उड़ाने से और इच्छानुसार उसे फिरने देने से, उसकी सेवा में तत्पर रहता था ॥५॥

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः ।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥ ६ ॥

(अन्वयः) सः, भूपतिः, स्थितां, तां स्थितः 'सन्', प्रयातां "तां" उच्चलितः 'सन्' निषेदुषीम्, "तां" आसनबन्धधीरः 'सन्' जलम्, आददानां "तां" जलाभिलाषी 'सन्' छायेव, अन्वगच्छत् ॥ ६ ॥

(टीका) भूपतिः = महीपतिः, सः = दिलीपः, स्थितां = निवृत्तगमनाम्, ऊर्ध्वम् अवतिष्ठमानामित्यर्थः, तां = नन्दिनीं, 'दृष्ट्वा' स्थितः सन् = तिष्ठन् सन्, प्रयातां = प्रस्थितां 'दृष्ट्वा' उच्चलितः सन् = प्रस्थितः

सन्, निषेदुषीं = उपविष्टां, 'दृष्ट्वा' आसनबन्धधीरः सन् = उपविष्टः सन्, जलं = सलिलं, आददानां = पिबन्तीं "दृष्ट्वा" "स्वयं" जलाभिलाषी सन् = सलिलेच्छुः सन्, स्वयम् अपि जलं 'पिबन् सन्नित्यर्थः' छायेव = प्रतिबिम्बमिव, "छाया सूर्य्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः" इत्यमरः, अन्वगच्छत् = अनुजगाम ॥ ६ ॥

(समासः) पातीति पतिः, भुवः पतिः भूपतिः। निषेदुषीं, निषसाद इति निषेदुषी तां। आसनबन्धधीरः = आस्यते अस्मिन्निति आसनम्, आसनस्य बन्धः आसनबन्धः तत्र धीरः। आददानां, आदत्तेऽसावाददाना ताम् । जलाभिलाषी = जलमभिलषतेऽसौ जलाभिलाषी ॥ ६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) भूपतिना, स्थिता स्थितेन, प्रयाता उच्चलितेन, निषेदुषी आसनबन्धधीरेण जलं आददाना जलाभिलाषिणा (सता) सा छायया इव अन्वगम्यत ॥ ६ ॥

(सरलार्थः) यदा नन्दिनी गमनादुपरेमे तदा राजा अपि तस्मादुपरतो बभूव, यदा चलितुं प्रववृते तदा सोऽपि चचाल, यदा जलम्पातुमियेष तदायमपि जलाभिलाषी बभूव, किमन्यत् सः तस्याश्छाया इव तामनुजगाम ॥ ६ ॥

(भावार्थः) राजा दिलीप का चलना, रुकना, बैठना और पानी पीना नन्दिनी की इन २ क्रियाओं पर ही निर्भर रहता था ॥ ६ ॥

सन्यस्तचिन्हामपि राजलक्ष्मीं तेजोविशेषानुमितां दधानः ।
आसीदनाविष्कृतदानराजिरन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः ॥ ७ ॥

(अन्वयः) न्यस्तचिह्नामपि, तेजोविशेषानुमितां, राजलक्ष्मीं, दधानः, सः, अनाविष्कृतदानराजिः, अन्तर्मदावस्थः द्विपेन्द्रः, इव, आसीत् ॥ ७ ॥

(टीका) न्यस्तचिह्नामपि = त्यक्तच्छत्रचामरामपि, तेजोविशेषानुमितां = प्रतापातिशयतर्कितां "स प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोपदण्डजम्" इत्यमरः, राजलक्ष्मीं = राजश्रियं, दधानः = धारयन्, सः = राजा दिलीपः, अनाविष्कृतदानराजिः = अप्रकटितमदरेखः, "गण्डः कटो मदो दानम्" इत्यमरः, अन्तर्मदावस्थः = अन्त दानदशः, द्विपेन्द्रः = गजेन्द्रः, "द्विरदोऽनेकपो द्विपः ।

गजो नागः" इत्यमरः, इव = यथा, "व वा यथातथैवैवम्" इत्यमरः, आसीत् = अभूत् ॥ ७ ॥

(समासः) न्यस्तचिह्नामपि, न्यस्तानि चिन्हानि यस्याः सा ताम् । तेजोविशेषानुमितां, तेजसः विशेषस्तेजोविशेषस्तेनाऽनुमिता ताम् । राजलक्ष्मीं, राज्ञः लक्ष्मीः राजलक्ष्मीः तां । धत्तेऽसौ दधानः । दानस्य राजिः, दानराजिः, न आविष्कृता अनाविष्कृता, अनाविष्कृता दानराजिर्यस्यासौ अनाविष्कृतदानराजिः । मदस्य अवस्था मदावस्था, अन्तः मदावस्था यस्य सोऽन्तर्मदावस्थः । द्वाभ्यां शुण्डतुण्डाभ्यां पिबन्तीति द्विपास्तेषामिन्द्रो द्विपेन्द्रः ॥ ७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन न्यस्तचिह्नाम् अपि .... दधानेन (सता) अनाविष्कृतदानराजिना अन्तर्मदावस्थेन द्विपेन्द्रेण इव अभूयत ॥ ७ ॥

(सरलार्थः) यथा कश्चन समदो गजराजः स्वीयां मदावस्थां दानोदकधाराभिर्बहिरप्रकटयन्नपि केवलं तेजसः अतिशयेन भव्याकारतया वाऽन्तर्गतां दानदशां प्रत्याययति, तथैवायमपि अङ्गीकृतनन्दिनीपरिचर्य्याव्रतो भूमिपश्छत्रचामररत्नखचितशिरोमुकुटालङ्कारादिभिः स्वां राजश्रियमप्रदर्शयन्नपि असाधारणप्रतापातिशयशालिना निजमूर्तिप्रभावेणैव स्वां राजलक्ष्मीमनुमापयति स्म ॥ ७ ॥

(भावार्थ) जैसे किसी हाथीके मस्तकसे मदका चूना प्रगट नहीं हुआ है तो भी उसके भव्य आकार के देखने से ही भीतर मदका रहना जाना जाता है उसी प्रकार यद्यपि उस समय दिलीपके पास राजलक्ष्मीके चिह्न छत्र चामर आदि नहीं थे तोभी केवल उनके तेजसे ही राजलक्ष्मी जानी जाती थी ॥ ७ ॥

लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशैरधिज्यधन्वा विचचार दावम् ।
रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनोर्वन्यान्विनेष्यन्निव दुष्टसत्वान् ॥ ८ ॥

(अन्वयः) लताप्रतानोद्ग्रथितैः, केशैः, "उपलक्षितः" अधिज्यधन्वा, सः, मुनिहोमधेनोः, रक्षापदेशात्, वन्यान्, दुष्टसत्वान्, विनेष्यन्, इव, दावं, विचचार ॥ ८ ॥

(टीका) लताप्रतानोद्ग्रथितैः = वल्लीतन्तुभिरुद्ग्रथितैः, "वल्ली तु व्रततिर्लता" इत्यमरः, केशैः = कचैः "चिकुरः कुन्तलो

बालः कचः केशः शिरोरुहः" इत्यमरः 'उपलक्षितः' अधिज्यधन्वा = आरोपितकार्मुकः, सः = दिलीपः, मुनिहोमधेनोः = वसिष्ठनन्दिन्याः, रक्षापदेशात् = संरक्षणच्छलात्, वन्यान् = काननोत्पन्नान्, "अटव्य-रण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्" इत्यमरः, दुष्टसत्वान् = हिंस्रजन्तून्, "सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु" इत्यमरः, विनेष्यन्निव = शिक्षयिष्यन्निव, दावं = वनं, दवदावौ वनारण्ये वह्नी" इत्यमरः विचचार = परिबभ्राम ॥ ८ ॥

(समासः) लताप्रतानोद्ग्रथितैः, प्रतन्यन्त इति प्रतानाः लतानां प्रतानाः लताप्रतानाः तैः उद्ग्रथितास्तैः । ज्यामधिगतमधिज्यं, अधिज्यन्धनुर्यस्य सोऽधिज्यधन्वा । मुनिहोमधेनोः, होमस्य धेनुर्होमधेनुः, मुनेर्होमधेनुस्तस्याः । रक्षापदेशात्, रक्षाया अपदेशस्तस्मात् । वने भवा वन्यास्तान् । दुष्टसत्वान्, दुष्टाश्च ते सत्वाश्च दुष्टसत्वास्तान् । विनेष्यन्, विनेष्यतीति विनेष्यन् ॥ ८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) लताप्रतानोद्ग्रथितैः केशैः उपलक्षितेन अधिज्यधन्वना तेन मुनि .... विनेष्यता इव दावः विचेरे ॥ ८ ॥

(सरलार्थः) इतस्ततः परिभ्रमन्दिलीपः स्वान् केशान् लतातन्तुभिः संयम्य आरोपितमौर्वीकं धनुरादाय वनोत्पन्नान् हिंस्रजन्तून् दण्डयन्निव अटति स्म । वसिष्ठनन्दिनीसंरक्षणं तु तस्य केवलं व्याजमेवासीत् ॥ ८ ॥

(भावार्थः) वसिष्ठकी दगनन्दिनीकी रक्षा करनेके बहानेसे जङ्गलके दुष्ट प्राणियोंको शिक्षा देता हुआ लताओंके तन्तुओं से गुंथे हुए केशोंवाला राजा दिलीप प्रत्यञ्चा चढ़े हुए धनुषको धारण कर वन में विचरने लगा ॥ ८ ॥

विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य ।
उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः ॥ ९ ॥

(अन्वयः) पार्श्वद्रुमाः, उन्मदानां, वयसां, विरावैः, विसृष्टपार्श्वानुचरस्य, पाशभृता, समस्य, तस्य, आलोकशब्दं, उदीरयामासुः, इव ॥ ९ ॥

(टीका) पार्श्वद्रुमाः = पार्श्वस्थवृक्षाः, उन्मदानां = मदोन्मत्तानां, वयसां = पक्षिणां, "खगबाल्यादिनोर्वयः" इत्यमरः, विरावैः = शब्दैः

विसृष्टपार्श्वानुचरस्य = त्यक्तपार्श्वसेवकस्य, पाशभृता = वरुणेन "प्रचेता वरुणः पाशी" इत्यमरः, समस्य = समानस्य, तस्य = दिलीपस्य, आलोकशब्दं = राजानमालोकयेतिसूचकशब्दं, "राजोचितजयशब्दमिति भावः" उदीरयामासुरिव = उच्चारयामासुरिव ॥९॥

(समासः) पार्श्वद्रुमाः = द्रवति ऊर्ध्वं गच्छति इति द्रुः, द्रवशाखाः सन्त्येपामिति द्रुमाः, पार्श्वयोः द्रुमाः, पार्श्वद्रुमाः । उन्मदानां उत् (उत्कटः) मदो येषान्तानि तेषाम् । विसृष्टपार्श्वानुचरस्य = अनुचरन्तीत्यनुचराः, पार्श्वयोरनुचराः, पार्श्वानुचराः, विसृष्टाः पार्श्वानुचरा येन तस्य । पाशभृता = पाशं बिभर्तीति पाशभृत् तेन आलोकशब्दं, आलोकनमित्यालोकस्तस्य शब्दस्तमालोकशब्दम् ॥९॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) पार्श्वद्रुमैः उन्मदानां वयसां विरावैर्विसृष्टपार्श्वानुचरस्य........ आलोकशब्दः उदीरयाञ्चक्रे ॥९॥

(सरलार्थः) दिलीपस्य उभयपार्श्वस्था वृक्षाः परित्यक्ताऽनुचरमार्गस्य तस्य "जयति जयति महाराजः" इति विजयशब्दं स्वाश्रितमत्तशकुन्तकुलकूजितैः प्रोच्चारितवन्तः ॥ ९ ॥

(भावार्थ) वरुणके उपमावाले राजा दिलीप का जयशब्द दोनों ओरके वृक्षोंने उन्मत्त पक्षियोंके कलरव द्वारा कराया ॥ ९ ॥

मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं तमर्च्यमारादभिवर्तमानम् ।
अवाकिरन् बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः ॥ १० ॥

(अन्वयः) मरुत्प्रयुक्ताः, बाललताः, मरुत्सखाभम्, आरात्, अभिवर्तमानम्, अर्च्यं, तं, प्रसूनैः, पौरकन्याः, आचारलाजैः, इव, अवाकिरन् ॥ १० ॥

(व्याख्या) मरुत्प्रयुक्ताः = मारुतान्दोलिताः, बाललताः = कोमलवल्लयः, "वल्ली तु व्रततिर्लता" इत्यमरः, मरुत्सखाभं = अग्नितुल्यं, आरात् = समीपे, "आराद्दूरसमीपयोः" इत्यमरः, अभिवर्तमानं = [illegible], अर्च्यं = पूज्यं, तं = दिलीपं, प्रसूनैः = कुसुमैः, 'प्रसूनं कुसुमं सुमं' इत्यमरः, पौरकन्याः = पुरवासिसुताः, आचारलाजैः = मङ्गलार्थलाजैः, इव, अवाकिरन् = अवृषन्, "विक्षेपण उपरि पुष्पाणि अवृषन्" इत्यर्थः ॥ १० ॥

(समासः) मरुत्प्रयुक्ताः = मरुता प्रयुक्ताः । बाललताः = बालाश्च

ताः लताश्च बाललताः । मरुत्सखाभं = मरुतः सखा मरुत्सखस्तस्य आभेवाभा यस्य सः तम् । अभिवर्तमानं, अभिवर्ततेऽसावभिवर्तमानस्तम् । आचारार्था लाजाः आचारलाजास्तैः, पौरकन्याः = पुरे भवाः पौरास्तेषां कन्याः । अर्चितुं योग्यो अर्च्यस्तम् ॥१०॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) मरुत्प्रयुक्ताभिः बाललताभिः मरुत्सखाभः अर्च्यः आराद् अभिवर्तमानः सः, आचारलाजैः पौरकन्याभिः इव, प्रसूनैः अवाकीर्यत ॥ १० ॥

(सरलार्थः) मारुतान्दोलिता अभिनवलताः समीपस्थितस्य वह्निसमकान्तेः दिलीपस्य उपरि नवजातकुसुमानि समवर्षन् ॥ १० ॥

(भावार्थ) नयी लताओंने, समीप आये हुए आदरणीय अग्नितुल्य तेजस्वी दिलीपराजा पर, पुरकी कन्या, जैसे अपने देशके राजा पर लावा बरसाती हैं, उस तरह फूलोंको वर्षा की ॥ १० ॥

धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्रभावमाख्यातमन्तःकरणैर्विशङ्कैः ।
विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः ॥११॥

(अन्वयः) धनुर्भृतः, अपि, अस्य, विशङ्कैः, अन्तःकरणैः, दयार्द्रभावम्, आख्यातं, वपुः, विलोकयन्त्यः, हरिण्यः, अक्ष्णां, प्रकामविस्तारफलं, आपुः ॥११॥

(टीका) धनुर्भृतः = धनुर्धारिणः, अपि, अस्य = दिलीपस्य, विशङ्कैः = निर्भीकैः, अन्तःकरणैः = चित्तैः, दयार्द्रभावं = दयया स्निग्धीभूताशयम्, आख्यातं = कथितं 'अस्य' वपुः = शरीरं "गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः" इत्यमरः, विलोकयन्त्यः = सादरमालोकयन्त्यः, हरिण्यः = मृग्यः, अक्ष्णां = नेत्राणां, "लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी" इत्यमरः, प्रकामविस्तारफलं = अत्यन्तविशालतायाः फलं, आपुः = प्रापुः ॥११॥

(समासः) धनुर्भृतः = धनुर्बिभर्ति इति धनुर्भृत्, धनुः बिभर्तीति धनुर्भृत्तस्य । विशङ्कैः = विगता शङ्का येभ्यस्तानि तैः । विलोकयन्त्यः = विलोकयन्तीति विलोकयन्त्यः । प्रकामविस्तारफलं = प्रकामं विस्तारः प्रकामविस्तारस्तस्य फलम् । दयार्द्रभावं = दयया आर्द्रः भावश्चित्ताभिप्रायो यस्य सः तम् ॥११॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) विलोकयन्तीभिः हरिणीभिः अक्ष्णां प्रकामविस्तारफलम्, आपे ॥११॥

(सरलार्थः) धृतधन्वनोऽप्यस्य कृपया द्रवीभूतमन्तराशयं ज्ञात्वा निर्भीकाः सत्यो हरिण्योऽस्य शरीरलावण्यम् आकर्णं प्रसारितनयनैः पश्यन्त्यो निजनयनविशालताया यथार्थं साफल्यमनुभवत्यः ॥११॥

(भावार्थ) धनुष को धारण करनेपर भी भयरहित हो राजा के शरीर को देखने वाली हरिणियों ने अपनी आँखों के बड़ेपन का फल पाया ॥११॥

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम् ।
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः॥१२॥

(अन्वयः) सः, मारुतपूर्णरन्ध्रैः, कूजद्भिः, कीचकैः, आपादितवंशकृत्यं, कुञ्जेषु, वनदेवताभिः, उच्चैः, उद्गीयमानं, स्वं, यशः, शुश्राव ॥१२॥

(टीका) सः = दिलीपः, मारुतपूर्णरन्ध्रैः = वायुपूरितच्छिद्रैः, "छिद्रं निर्व्यथनं रोकं रन्ध्रं श्वभ्रं वपा सुषिः, इत्यमरः, (अत एव) कूजद्भिः, = स्वनद्भिः, कीचकैः = वेणुविशेषैः, "वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः" इत्यमरः, आपादितवंशकृत्यं = सम्पादितसुषिरकार्य्यं; कुञ्जेषु = निकुञ्जेषु, "निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे ।" इत्यमरः, वनदेवताभिः = विपिनदेवीभिः, "अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्" इत्यमरः, उच्चैः = उच्चस्वरेण, उद्गीयमानं, = स्तूयमानं, स्वं = निजं, यशः = कीर्तिं, "यशः कीर्तिः समज्ञा च" इत्यमरः, शुश्राव = श्रुतवान् ॥१२॥

(समासः) मारुतेन पूर्णानि रन्ध्राणि येषान्तैः । कूजन्ति ते कूजन्तस्तैः । वंशस्य कृत्यं वंशकृत्यं, आपादितं वंशकृत्यं यस्मिन् तत् । वनानां देवताः ताभिः । उद्गीयत इत्युद्गीयमानम् ॥ १२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिः कीचकैः आपादितवंशकृत्यं कुञ्जेषु वनदेवताभिः उच्चैः उद्गीयमानं स्वं यशः शुश्रुवे ॥ १२ ॥

(सरलार्थः) वने भ्रमन् सः वनदेवताभिः उपगीतं स्वं यशः श्रुतवान् ॥ १२ ॥

(भावार्थ) राजा दिलीप ने छिद्रोंमें भरे हुए वायुसे गूँजने वाले बाँसों द्वारा लतागृह में वनदेवताओं से ऊँचे स्वरसे गाये हुए अपने यश को सुना ॥ १२ ॥

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ।
तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिषेवे ॥ १३ ॥

(अन्वयः) गिरिनिर्झराणां, तुषारैः, पृक्तः, अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी, पवनः, अनातपत्रं, आतपक्लान्तं, आचारपूतं, तं, सिषेवे ॥१३॥

(टीका) गिरिनिर्झराणां = पर्वतप्रवाहाणां, "प्रवाहो निर्झरो झरः" इत्यमरः, तुषारैः = हिमकणैः, "तुषारौ हिमसीकरौ" इत्यमरः, पृक्तः = सम्पृक्तः, अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी = वृक्षाकम्पितकुसुमसुगन्धिः, पवनः = वातः, "नभस्वद्वातपवन-" इत्यमरः, अनातपत्रं = छत्ररहितं, (अतएव) आतपक्लान्तं = उष्णम्लानं, आचारपूतं = सदाचारपवित्रं, तं = दिलीपं, सिषेवे = सेवितवान् ॥ १३ ॥

(समासः) गिरीणां निर्झरास्तेषाम् । अनसः (शकटस्य) अकं (गतिं) हन्तीत्यनोकहः, आकम्पितानि च तानि पुष्पाणि आक०, अनोकहानाम् आकम्पितपुष्पाणि अनो० तेषां गन्धोऽस्यास्तीत्यनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी । पुनातीति पवनः । आतपात्त्रायत इत्यातपत्रं, न विद्यते आतपत्रं यस्य सः तम् । आतपेन क्लान्तस्तम् । आचारेण पूतः आचारपूतस्तम् ॥ १३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) गिरिनिर्झराणां तुषारैः पृक्तेन अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धिना पवनेन अनातपत्रः आतपक्लान्तः आचारपूतः सः सिषेवे ॥ १३ ॥

(सरलार्थः) जगत्पावनः शीतलः सुगन्धो गन्धवहो विना छत्रं भ्रमणेन राज्ञो दिलीपस्य आतपजनितां क्लान्तिं दूरीचकार ॥ १३ ॥

(भावार्थ) पहाड़ी झरनोंके जलबिन्दुओं सहित तथा सुन्दर गन्धयुत वायुने छत्ररहित अतएव सूर्यके किरणों से सन्तप्त पवित्र उस दिलीप राजा की सेवा की ॥ १३ ॥

शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्निरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः ।
ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने ॥१४॥

(अन्वयः) गोप्तरि, तस्मिन्, वनं, गाहमाने, 'सति' दवाग्निः वृष्ट्या, विना, अपि, शशाम, फलपुष्पवृद्धिः, विशेषा, आसीत्, सत्त्वेषु, अधिकः, ऊनं, न, बबाधे ॥ १४ ॥

(टीका) गोप्तरि = रक्षितरि, तस्मिन् = दिलीपे, वनं = अरण्यं "अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्" इत्यमरः, गाहमाने सति = प्रविशति सति, दवाग्निः = वनाग्निः, "दवदावौ वनारण्यवह्नी" इत्यमरः, वृष्ट्या = वर्षणेन, विना अपि = वर्षणाभावेऽपि, शशाम = शान्तो बभूव, फलपुष्पवृद्धिः = सस्यकुसुमसमृद्धिः, "वृक्षादीनाम् फलं सस्यम्" इत्यमरः, विशेषा = अतिशयिता, आसीत् = अभूत्, सत्त्वेषु = जन्तुषु, "सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु" इत्यमरः, अधिकः = सबलः, सिंहादिरित्यर्थः" ऊनं = दुर्बलं, 'मृगादिकमित्यर्थः' न बबाधे = न पीडयामास ॥ १४ ॥

(समासः) गोपायतीति गोप्ता तस्मिन् । गाहतेऽसौ गाहमानस्तस्मिन् । फलानि च पुष्पाणि च फलपुष्पाणि तेषां वृद्धिः । दवस्याग्निर्दवाग्निः ॥ १४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)………दवाग्निना वृष्ट्या विना अपि शेमे फलपुष्पवृद्ध्या विशेषया (अभूयत) ॥ १४ ॥

(सरलार्थः) तस्य प्राप्तमात्रेणैव तस्मिन् अरण्ये वनाग्निः जलवर्षणेन विनैव शान्तिमवाप, वल्लीवृक्षादयोऽपि प्रभूतया फलपुष्पलक्ष्म्या चकाशिरे, सबलो वन्यजन्तुः दुर्बलं न बाधते स्म, अहो अलौकिकस्तस्य प्रभावः ! ॥ १४ ॥

(भावार्थ) प्रजा की रक्षा करनेवाले उस राजा के वन में प्रवेश करने पर वृष्टि के विना ही वनाग्नि शान्त हुआ । फल फूल की शोभा [illegible]क हुई, जन्तुओं में सबल निर्बल को न सताता हुआ ॥ १४ ॥

सञ्चारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः ॥ १५ ॥

(अन्वयः) पल्लवरागताम्रा, पतङ्गस्य, प्रभा, मुनेः, धेनुः, च, दिगन्तराणि, सञ्चारपूतानि कृत्वा, दिनान्ते, निलयाय, गन्तुं, प्रचक्रमे ॥ १५ ॥

(टीका) पल्लवरागताम्रा = किसलयारक्तवर्णा "पल्लवोऽस्त्री किसलयम्" इत्यमरः, पतङ्गस्य = सूर्य्यस्य, "पतङ्गः पक्षिसूर्ययोः" इति विश्वः, प्रभा = कान्तिः, मुनेः = वशिष्ठर्षेः, धेनुश्च = नन्दिनी च, दिगन्तराणि, दिगवकाशानि, "अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये" इत्यमरः, सञ्चारपूतानि = भ्रमणेन पवित्राणि, कृत्वा = विधाय, दिनान्ते = सन्ध्यासमये, निलयाय = अस्तमयाय, इति सूर्यपक्षे, धेनुपक्षे-निजाश्रमाय, गन्तुं प्रचक्रमे = उपक्रान्तवती ॥ १५ ॥

(समासः) पल्लवस्य रागः पल्लवरागः स इव ताम्रा । प्रभा = प्रकर्षेण भातीति प्रभा । दिशामन्तराणीति दिगन्तराणि । सञ्चारेण पूतानि सञ्चारपूतानि । दिनस्यान्तो दिनान्तस्तस्मिन् ॥ १५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) पल्लवरागताम्रया पतङ्गस्य प्रभया मुनेः धेन्वा च दिगन्तराणि प्रचक्रमे ॥ १५ ॥

(सरलार्थः) अभिनवकिसलयरागरक्ता सूर्यकान्तिः तथा वसिष्टनन्दिनी सर्वं दिनं वने निखिलान्दिगन्तभागान् निजसंचरणेन पवित्रीकुर्वाणा सायङ्काले स्वस्वाश्रमाभिमुखी जाता ॥ १५ ॥

(भावार्थ) नवीन खिले हुए कोमल पल्लव की समान रंग वाली सूर्यकी प्रभा सायङ्काल अस्ताचलको और नन्दिनी तपोवन को लौटी ॥ १५ ॥

तां देवतापित्रतिथिक्रियार्थामन्वग्ययौ मध्यमलोकपालः ।
बभौ च सा तेन सतां मतेन श्रद्धेव साक्षाद्विधिनोपपन्ना ॥ १६ ॥

(अन्वयः) मध्यमलोकपालः देवतापित्रतिथिक्रियार्थां, तां, अन्वक्, ययौ, सतां, मतेन, तेन, उपपन्ना, सा, विधिना, साक्षात्, श्रद्धा, इव बभौ ॥ १६ ॥

(टीका) मध्यमलोकपालः = मर्त्यलोकाधिपः, देवतापित्रतिथिक्रियार्था = यागश्राद्धदानादिप्रयोजनहेतुका, तां = नन्दिनीं, अन्वक् = अनुगं, "अन्वगन्वक्षमनुगे" इत्यमरः, ययौ = जगाम, सतां मते सज्जनसम्मतेन, तेन = दिलीपेन, उपपन्ना = युक्ता, सा

रषु सन्तीति तानि शाद्वलानि, मृगैः अध्यासितानि शाद्वलानि येषु तानि । श्यामानीव आचरन्तीति श्यामायमानानि, ॥ १७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन .... वनानि पश्यता (सता) ययै ।

(सरलार्थः) दिलीपः, अल्पजलाशयेभ्यो निर्गच्छतो वनशूकरान्, निवासपादपं गन्तुम्प्रवृत्तान् मयूरान्, तृणेषु यथासुखम् उपविष्टान् मृगानवलोकयञ्जगाम ॥ १७ ॥

(भावार्थ) राजा दिलीप छोटे २ सरोवरों में से निकलते हुए जंगली सुअरोंके झुण्डवाले, अपने २ वृक्षोंकी ओर आते हुए मोरों वाले, हरे २ घास वाले श्यामवनों को देखता हुआ चला ॥१७॥

आपीनभारोद्वहनप्रयत्नाद्गृष्टिर्गुरुत्वाद्वपुषो नरेन्द्रः ।
उभावलञ्चक्रतुरञ्चिताभ्यां तपोवनावृत्तिपथं गताभ्याम् ॥१८॥

(अन्वयः) गृष्टिः, आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात्, नरेन्द्रः, वपुषः, गुरुत्वात्, उभौ, अञ्चिताभ्यां, गताभ्यां, तपोवनावृत्तिपथं, अलञ्चक्रतुः ॥ १८ ॥

(टीका) गृष्टिः = सकृत्प्रसूता वसिष्ठधेनुः, आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात्, ऊधोभारधारणायासात्, "ऊधस्तु क्लीबमापीनम्" इत्यमरः, नरेन्द्रः, वपुषः = शरीरस्य, गुरुत्वात् = स्थूलशरीरभारात्, उभौ = नन्दिनीनरेन्द्रौ, अञ्चिताभ्यां = मनोहराभ्यां, गताभ्यां, = गमनाभ्यां, तपोवनावृत्तिपथं = तपोवनपरावर्तनमार्गम्, अलञ्चक्रतुः = भूषयामासतुः ॥ १८ ॥

(समासः) आपीनस्य भारः आपीनभारस्तस्योद्वहनं तस्मिन् प्रयत्नस्तस्मादापीनभारोद्वहनप्रयत्नात् । नराणामिन्द्रो नरेन्द्रः, तपसो वनं तपोवनं, तस्मादावृत्तिस्तपोवनावृत्तिः तस्याः पन्थास्तम् ॥ १८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात्, गृष्ट्या, वपुषः गुरुत्वात् नरेन्द्रेण उभाभ्याम् अञ्चिताभ्यां गताभ्यां तपोवनवृत्तिपथः अलञ्चक्रे ॥ १८ ॥

(सरलार्थः) नन्दिनी स्थूलस्य ऊधसो भारात् दिलीपश्च शरीरस्य गौरवात् उभावप्येतौ नन्दिनीदिलीपौ मन्दं मन्दं गमनेन तपोवन-मार्गमलञ्चक्रतुः ॥ १८ ॥

(भावार्थ) पहली बार ब्याई हुई गाय ने थनका भार ...

के प्रयत्न से, राजा ने अपने देह को स्थूलता से दोनों ने ही अपनी र
मन्दगति से तपोवन के आवागमन मार्ग को सुशोभित किया ॥ १८ ॥

वसिष्ठधेनोरनुयायिनं तमावर्तमानं वनिता वनान्तात् ।
पपौ निमेषालसपक्ष्मपंक्तिरुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम् ॥१६॥

(अन्वयः) वनिता, निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिः 'सती' वसिष्ठधेनोः अनुयायिनं, वनान्तात्, आवर्तमानं, तम् उपोषिताभ्याम्, इव, लोचनाभ्यां, पपौ ॥ १६ ॥

(टीका) वनिता = दिलीपपत्नी सुदक्षिणा, निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिः = निमीलनमन्दाक्षिलोमपङ्क्तिः, सती, वसिष्ठधेनोः = वसिष्ठपिनन्दिन्याः, अनुयायिनम् = अनुगामिनं, वनान्तात् = वनप्रान्तभागात्, आवर्तमानं = परावर्तमानं, तं = दिलीपं, उपोषिताभ्यां=बुभुक्षिताभ्याम्, इव, लोचनाभ्यां=नयनाभ्यां, "लोचनं नयनं नेत्रम्" इत्यमरः पपौ=पीतवती, सा सोत्कण्ठंभृशम् अवलोकयामासेति भावः ॥१६॥

(समासः) निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिः, पक्ष्मणां पङ्क्तिः पक्ष्मपङ्क्तिः निमेषेषु अलसा निमेषालसा, निमेषालसा पक्ष्मपङ्क्तिर्यस्याः सा । वसिष्ठस्य धेनुः वसिष्ठधेनुस्तस्याः । अनुयातीत्यनुयायी तम् । वनस्यान्तो वनान्तस्तस्मात् । आवर्तते ऽसावावर्तमानस्तम् ॥ १६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) वनितया निमेषालसपक्ष्मपङ्क्त्या सत्या वसिष्ठधेनोः अनुयायी वनान्ताद् आवर्तमानः स·········पपे ॥ १६ ॥

(सरलार्थः) यथा कश्चन पिपासाकुलितः सरसं जलम्मुहुर्मुहुः पीत्वाऽपि तृप्तिं नाप्नोति तथैव प्राणाधीश्वरस्य चिरमनवलोकनेनाधीरायास्तस्याः प्रियतमवियोगतापितमाकर्णदीर्घं नयनं प्राणप्रियं त पुनः पुनर्दृष्ट्वाऽपि सन्तोषं न प्राप ॥ १६ ॥

(भावार्थ) होमधेनु के पीछे पीछे चलने वाले राजा दिलीप की रानी सुदक्षिणा ने प्यासे हुए की तरह भर आंख देखा ॥ १६ ॥

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥ २० ॥

(अन्वयः) वर्त्मनि, पार्थिवेन, पुरस्कृता, पार्थिवधर्मपत्न्या " प्रत्युद्गता, सा, धेनुः, तदन्तरे, दिनक्षपामध्यगता, सन्ध्या, इव विरराज ॥ २० ॥

(टीका) वर्त्मनि = मार्गे, पार्थिवेन = राज्ञा दिलीपेन, पुरस्कृता = अग्रे कृता, पार्थिवधर्मपत्न्या = दिलीपपत्न्या सुदक्षिणया, प्रत्युद्गता = आनेतुमभिगता, सा = धेनुः, तदन्तरे = सुदक्षिणादिलीपमध्ये, दिनक्षपामध्यगता = अहोरात्रान्तर्गता, सन्ध्या इव = सायं समय इव, विरराज = शुशुभे ॥ २० ॥

(समासः) पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवस्तेन । पुरः कृतेति पुरस्कृता । धर्मस्य पत्नी धर्मपत्नी, पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवस्तस्य धर्मपत्नी तया । तयोरन्तरन्तदन्तस्मिन् । दिनञ्च क्षपा च दिनक्षपे, तयोर्मध्यं गता इति दिनक्षपामध्यगता ॥ २० ॥

(सरलार्थः) सुदक्षिणा पथि धेनोरग्रतः राजा च तत्पृष्ठतः ययौ यथा दिननिशयोर्मध्ये स्थिता सन्ध्या शोभते तथैव तयोः सुदक्षिणादिलीपयोर्मध्येऽवस्थिता धेनुरपि शुशुभे ॥ २० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) वर्त्मनि पार्थिवेन पुरस्कृतया पार्थिवधर्मपत्न्या च प्रत्युद्गतया तया धेन्वा तदन्तरे दिनक्षपामध्यगतया सन्ध्यया इव विरेजे ॥ २० ॥

(भावार्थ) मार्ग में राजा दिलीप से आगे की गई और रानी सुदक्षिणा से आगे ली हुई (अगुवानी की गई) कामधेनु उन दोनों (राजा रानी) के बीच, दिन और रात के मध्य में सन्ध्या की सी शोभा को प्राप्त हुई ॥२०॥

प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता ।
प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः शृङ्गान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः ॥२१॥

(अन्वयः) साक्षतपात्रहस्ता, सुदक्षिणा, पयस्विनीं, तां, प्रद[क्षि]णीकृत्य, प्रणम्य, च, अस्याः विशालं शृङ्गान्तरं, अर्थसिद्धेः, द्वारम् इव, आनर्च ॥२१॥

(टीका) साक्षतपात्रहस्ता = सतण्डुलभाण्डकरा, सुदक्षिणा = दिलीपपत्नी, पयस्विनीं = प्रशस्तदुग्धां, तां = नन्दिनीं, प्रदक्षिणीकृ[त्य] = परिक्रम्य, प्रणम्य = प्रणामं कृत्वा च, अस्याः = धेनोः, विशालं पृथुलं, "विशङ्कटं पृथु बृहद्विशालं पृथुलं महत्" इत्यमरः, शृङ्गान्[तरं] = शृङ्गमध्यदेशं, ललाटपट्टमिति यावत्, अर्थसिद्धेः = कार्यसि[द्धेः] द्वारमिव = प्रवेशपथमिव, आनर्च = पूजयामास ॥२१॥

(समासः) अक्षतानाम्पात्रमक्षतपात्रं, तेन सह वर्तते हस्तो य[स्याः] सा । पयस्विनीं, प्रशस्तं पयो विद्यते यस्याः सा ताम् ।

अप्रदक्षिणां प्रदक्षिणां कृत्वेति प्रदक्षिणीकृत्य । शृङ्गान्तरं = शृङ्गयोरन्तरं शृङ्गान्तरम् । अर्थसिद्धेः, अर्थस्य सिद्धिरर्थसिद्धिस्तस्याः ॥२१।

(वाच्यपरिवर्तनम्) साक्षतपात्रहस्तया सुदक्षिणया तां पयस्विनीं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च ....आनर्चे ॥२१॥

(सरलार्थः) सतण्डुलभाजनकरा सुदक्षिणा नन्दिनीं परिक्रम्य प्रणम्य च स्वमनोरथसिद्धेः द्वारं मत्वा तस्या भालं पूजयामास ॥२१॥

(भावार्थ) नन्दिनी की प्रदक्षिणा कर पूजापात्र हाथ में ली हुई रानी सुदक्षिणा ने मनोरथ सिद्धि के द्वार की नाईं उसके चौड़े मस्तक की पूजा की ॥२१॥

वत्सोत्सुकाऽपि स्तिमिता सपर्य्यां प्रत्यग्रहीत्सेति ननन्दतुस्तौ ।
भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरः फलानि ॥२२॥

(अन्वयः) सा, 'धेनुः' वत्सोत्सुका, अपि स्तिमिता, 'सती' सपर्य्यां, प्रत्यग्रहीत्, इति, तौ, ननन्दतुः, हि, भक्त्या, उपपन्नेषु, तद्विधानां, प्रसादचिह्नानि, पुरःफलानि, (भवन्ति) ॥२२॥

(टीका) सा=धेनुः, वत्सोत्सुकापि = स्ववत्सदर्शनोत्कण्ठिताऽपि, स्तिमिता = निश्चला सती, सपर्य्यां = पूजां "पूजा नमस्याऽपचितिः सपर्य्याऽर्चार्हणाः समाः इत्यमर-" प्रत्यग्रहीत् = स्वीचकार, इति = हेतोः, "वत्सावलोकनौत्सुक्येऽपि निश्चलभावेन पूजा स्वीकाराद्धेतोरिति भावः" तौ = नन्दिनीनरेन्द्रौ, ननन्दतुः = आनदम्प्रापतुः, हि = यस्मात् कारणात्, भक्त्या = पूज्यानुरागतया, उपपन्नेषु = युक्तेषु, 'विषये' तद्विधानां = तादृशीनां, प्रसादचिह्नानि = प्रसन्नतालक्षणानि, पुरःफलानि = प्रत्यासन्नेष्टनिमित्तानि भवन्तीति शेषः ॥२२॥

(समासः) वत्से उत्सुका वत्सोत्सुका । तद्विधानां तस्या विधेव विधा येषां तेषाम् । प्रसादचिह्नानि, प्रसादस्य चिह्नानि प्रसादचिह्नानि । पुरःफलानि = पुरः फलानि येषान्तानि पुरःफलानि ॥२२॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तया वत्सोत्सुकया अपि स्तिमितया सत्या सपर्या प्रत्यग्राहि इति ताभ्यां ननन्दे, भक्त्या उपपन्नेषु तद्विधानां प्रसादचिन्हैः पुरःफलैः (भूयते) ॥२२॥

(सरलार्थः) धेनुः यद्यपि तस्मिन् समये स्ववत्सदर्शनाय भृशमधीरा आसीत् तथापि सा तस्याः पूजां निश्चलभावेन स्वीचकार, अतः सुदक्षिणादिलीपौ निर्भरमानन्दतुः । यतः महात्मनां प्रसाद अचिरेणैव भक्तानां मनोरथसाफल्यं प्रकटयति ॥२२॥

(भावार्थ) प्रातःकाल से बिछुड़े हुए अपने बछड़े के लिये अत्यन्त अधीर भी उस नन्दिनी ने स्थिर होकर उसकी पूजा ग्रहण की, इससे वे दोनों अधिक प्रसन्न हुए, भक्त के प्रति मनोरथ के देनेवाले महात्माओं की प्रसन्नता के चिन्ह निःसन्देह फल के हेतु आगे २ हुआ करते हैं ॥२२॥

गुरोः सदारस्य निपीड्य पादौ समाप्य सान्ध्यं च विधिं दिलीपः।
दोहावसाने पुनरेव दोग्ध्रीं भेजे भुजोच्छिन्नरिपुर्निषण्णाम् ॥२३॥

(अन्वयः) भुजोच्छिन्नरिपुः, दिलीपः, सदारस्य, गुरोः, पादौ, निपीड्य, सान्ध्यं, विधिञ्च, समाप्य, दोहावसाने, निषण्णां, दोग्ध्रीं पुनः, एव, भेजे ॥२३॥

(टीका) भुजोच्छिन्नरिपुः = बाहुविध्वंसितारिः, "भुजबाहू प्रवेष्टो दोः" इत्यमरः, दिलीपः = दिलीपनामा भूपः, सदारस्य = सभार्य्यस्य, "भार्य्या जायाऽथ पुंभूम्नि दाराः, इत्यमरः, गुरोः = वसिष्ठस्य, पादौ = चरणौ, निपीड्य = संवाह्य, मूर्ध्ना प्रणम्येति भावः, सान्ध्यं = सायङ्कालिकं, विधिम् = अनुष्ठानं, समाप्य = सम्पाद्य, दोहावसाने = दोहनान्ते, निषण्णां = उपविष्टां, दोग्ध्रीं = दोहनशीलां नन्दिनीं, पुनः = भूयः, एव, भेजे = सिषेवे ॥२३॥

(समासः) भुजोच्छिन्नरिपुः, भुजाभ्यामुच्छिन्नाः रिपवो येन सः। सदारस्य, दारैः सहितः सदारस्तस्य। सन्ध्यायां भवः सान्ध्यस्तम्। दोहावसाने, दोहस्यावसानं, तस्मिन् ॥ २३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) भुजोच्छिन्नरिपुणा दिलीपेन.............. निषण्णा दोग्ध्री पुनः एव भेजे ॥ २३ ॥

(सरलार्थः) वनादाश्रममागतो दिलीपः गुरुं गुरुपत्नीञ्च प्रणनाम। तत्र सायङ्कालिकमनुष्ठानम्परिसमाप्य दोहनानन्तरं सुखासीनां तां नन्दिनीं पुनः सिषेवे ॥ २३ ॥

(भावार्थ) अरुन्धती के सहित गुरु वशिष्ठ के चरणों को प्रणाम कर और सन्ध्या समय के अनुष्ठान को समाप्त कर राजा दिलीप ने दुहने के बाद बैठी हुई उस नन्दिनी की फिर से सेवा आरम्भ की ॥ २३ ॥

तामन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः।
क्रमेण सुप्तामनु संविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत् ॥ २४ ॥

(अन्वयः) गोप्ता, गृहिणीसहायः, 'सन्' अन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपां, ताम्, अन्वास्य, क्रमेण, सुप्ताम् अनु, संविवेश, प्रातः, सुप्तोत्थिताम्, ताम् अनु, उदतिष्ठत् ॥ २४ ॥

(टीका) गोप्ता = रक्षको दिलीपः, गृहिणीसहायः = पत्नीसहितः सन्, अन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपां = समीपस्थापितपूजोपकरणदीपां, तां = पूर्वोक्तां सुखासीनां नन्दिनीम्, अन्वास्य = अनूपविश्य, क्रमेण = क्रमशः, सुप्तां = निद्रिताम्, अनु = पश्चात्, संविवेश = सुष्वाप, प्रातः = प्रातःकाले, सुप्तोत्थितां = शयनोत्थिताम्, जागरितामित्यर्थः, ताम् अनु, उदतिष्ठत् = उत्थितवान् ॥ २४ ॥

(समासः) गोपायतीति गोप्ता । गृहिणीसहायः = सह अयते गच्छतीति सहायः, गृहिणी सहायः यस्यासौ । अन्तिके न्यस्ता अन्तिकन्यस्तः, अन्तिकन्यस्ता बलयः प्रदीपाश्च यस्याः सा तां । सुप्तोत्थितां, आदौ सुप्ता पश्चात् उत्थिता ताम् ॥२४॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) गोप्त्रा गृहिणीसहायेन सता .... अनु संविविशे । प्रातः सुप्तोत्थिताम् अनु उदस्थीयत ॥ २४ ॥

(सरलार्थः) दिलीपः तस्याः समीपे दीपसहितां पूजासामग्रीं, संस्थाप्य सुदक्षिणासहितस्तस्याः समीपे उपविवेश। ततः प्राप्तनिद्रायां तस्यां तावपि निद्रां जग्मतुः, प्रातरुत्थितायां तस्यां तावपि उदतिष्ठताम्।

(भावार्थ) नन्दिनी की सेवा करनेवाले स्त्रीसहित राजा दिलीप उसके सोने के बाद सोये जागनेके अनन्तर जागे ॥ २४ ॥

इत्थं व्रतं धारयतः प्रजार्थं समं महिष्या महनीयकीर्तेः ।
सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य ॥२५॥

(अन्वयः) इत्थं, प्रजार्थं, महिष्या, समं, व्रतं, धारयतः, महनीयकीर्तेः, दीनोद्धरणोचितस्य, तस्य, त्रिगुणानि, सप्त, दिनानि, व्यतीयुः ॥ २५ ॥

(टीका) इत्थं = अनेन प्रकारेण, प्रजार्थं = सन्तानार्थं, "प्रजा स्यात्सन्ततौ जने" इत्यमरः, महिष्या = पत्न्या सुदक्षिणया, समं = सह, [illegible] = गोसेवारूपं नियमं, धारयतः = अनुतिष्ठतः 'पालयत इत्यर्थः, [illegible]तेः = प्रशस्तयशसः, दीनोद्धरणोचितस्य = दीनजनरक्षणनिरतस्य, तस्य = दिलीपस्य, त्रिगुणानि = त्रिरावृत्तानि, सप्त दिनानि = एकविंशतिवासराणि, व्यतीयुः = व्यतिक्रान्तानि ॥ २५ ॥

(समासः) प्रजार्थं, प्रजायत इति प्रजा=सन्ततिः, सैवार्थः प्रयोजनं यस्य तत् । धारयतः—धारयतीति धारयन् तस्य । महनीयकीर्तेः, महनीया कीर्तिर्यस्य स तस्य । दीनोद्धरणोचितस्य, दीनानामुद्धरणं दीनोद्धरणं तस्मिन्नुचितस्तस्य । त्रिगुणानि, त्रयो गुणा आवृत्तयो येषां तानि ॥ २५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) इत्थं'''त्रिगुणैः सप्तभिः दिनैः व्यतीये ॥२५॥

(सरलार्थः) एवं सन्तानार्थकव्रतमाचरतः कीर्तिसम्पन्नस्य तस्यैकविंशतिदिनानि समतीतानि ॥ २५ ॥

(भावार्थः) इस प्रकार सन्तानके लिये स्त्री सहित व्रत करने वाले राजा दिलीपके २१ दिन व्यतीत हुए ॥ २५ ॥

अन्येद्युरात्माऽनुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः ।
गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश ॥ २६ ॥

(अन्वयः) अन्येद्युः, आत्माऽनुचरस्य, भावं, जिज्ञासमाना, 'सती' मुनिहोमधेनुः, गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं, गौरीगुरोः, गह्वरम्, आविवेश ॥ २३ ॥

(टीका) अन्येद्युः = अन्यस्मिन् दिने, द्वाविंशे दिने, आत्मानुचरस्य=स्वसेवकस्य राज्ञः, भावं = अभिप्रायं, भक्तिमित्यर्थः, जिज्ञासमाना = ज्ञातुमिच्छन्ती, 'सती' मुनिहोमधेनुः = मुनेः होमार्थघृतपयोदध्यादिसाधकनन्दिनी, गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पम् = जान्हवीपतनप्रदेशसमीपोत्पन्नबालतृणम्, "शष्पं बालतृणं घासः" इत्यमरः गौरीगुरोः = पार्वतीपितुः, "हिमाचलस्येत्यर्थः" गह्वरं = गुहाम्, आविवेश = प्रविवेश ॥ २६ ॥

(समासः) अन्यस्मिन् अहनि इति अन्येद्युः । आत्मानुचरस्य = अनुचरतीत्यनुचरः, आत्मनोऽनुचर आत्मानुचरस्तस्य । जिज्ञासमाना, जिज्ञासतेऽसौ जिज्ञासमाना । गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं, प्रपतत्यस्मिन्निति प्रपातः, गङ्गायाः प्रपातो गङ्गाप्रपातस्तस्यान्तस्तस्मिन् विरूढानि शष्पाणि यस्मिंस्तत् । गौरीगुरोः, गौर्याः गुरुः गौरीगुरुस्तस्य ॥२३॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अन्येद्युः मुनिहोमधेन्वा आत्मानुचर... भावं जिज्ञासमानया गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पः गौरीगुरोः ...आविविशे ॥ २६ ॥

(सरलार्थः) द्वाविंशे दिने नन्दिनी "किमयं स्वार्थसाधनानुरोधात् उत विशुद्धभक्तियोगात् मामेवं सेवते" इति मायाबलेन दिलीपस्य भावं ज्ञातुमिच्छन्ती हिमालयकन्दरमाविवेश ॥ २६ ॥

(भावार्थ) बाइसवें दिन अपने सेवक की परीक्षा करने की इच्छा से नन्दिनीने गंगाद्वार पर बढ़ी हुई तृणमय गुफा में प्रवेश किया ॥ २६ ॥

सा दुष्प्रधर्षा मनसाऽपि हिंस्रैरित्यद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन ।
अलक्षिताभ्युत्पतनो नृपेण प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष ॥२७॥

(अन्वयः) सा, हिंस्रैः, मनसा अपि, दुष्प्रधर्षा, 'अस्ति' इति अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन, नृपेण, अलक्षिताभ्युत्पतनः, सिंहः, प्रसह्य, तां, चकर्ष, किल ॥ २७ ॥

(टीका) सा = नन्दिनी, हिंस्रैः = घातुकैः, 'व्याघ्रादिभिरित्यर्थः', मनसाऽपि = अन्तःकरणेनाऽपि, दुष्प्रधर्षा = दुर्धर्षा, 'अनभिभवनीयेत्यर्थः' इति = हेतोः, अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन = पर्वतशोभावलोकनदत्तनयनेन, नृपेण = राजा दिलीपेन, अलक्षिताभ्युत्पतनः = अदृष्टाक्रमणः, सिंहः = मृगेन्द्रः, "सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यः" इत्यमरः, प्रसह्य = हठात्, "प्रसह्य तु हठार्थकम्" इत्यमरः, तां = नन्दिनीं, चकर्ष = आकृष्टवान् किल ॥ २७ ॥

(समासः) हिंस्रैः, हिंसन्तीति हिंस्रास्तैः। दुःखेन प्रधृष्यते ऽसाविति दुष्प्रधर्षा। अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन, अद्रेः शोभा अद्रिशोभा, तस्यां प्रहिते ईक्षणे येन सः तेन। अलक्षिताभ्युत्पतनः, न लक्षितमलक्षितं, अलक्षितमभ्युत्पतनं यस्यासावलक्षिताभ्युत्पतनः। नॄन् पातीति नृपस्तेन ॥ २७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तया हिंस्रैः मनसा अपि दुष्प्रधर्षया "भूयते" इ[illegible]......अलक्षिताभ्युत्पतनेन सिंहेन प्रसह्य चकृषे किल ॥ २७ ॥

(सरलार्थः) महाबलशालिनीं इमां कामधेनुं हिंसादयो मनसापि धर्षयितुं न शक्नुवन्ति इति निश्चित्य पर्वतशोभावलोकनदत्तदृष्टिना नृपेण अलक्षितः एव सिंहः अकस्मात् तामाक्रान्तवान् ॥ २७ ॥

(भावार्थ) व्याघ्रादि हिंसक पशु भी इसपर आक्रमण नहीं कर सकते इस विचार से नन्दिनी की ओर से निश्चिन्त राजा दिलीप

पहाड़ी दृश्य देखने लगा इधर मौका पाकर सिंह नन्दिनी पर झपटा ॥ २७ ॥

तदीयमाक्रन्दितमार्तसाधोर्गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम् ।
रश्मिष्विवादाय नगेन्द्रसक्तां निवर्तयामास नृपस्य दृष्टिम् ॥२८॥

(अन्वयः) गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घं, तदीयम् आक्रन्दितं, आर्तसाधोः, नृपस्य, नगेन्द्रसक्तां, दृष्टिं, रश्मिषु, आदाय, इव, निवर्तयामास ॥ २८ ॥

(टीका) गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घं = कन्दरप्रतिबद्धप्रतिध्वानायतं "दरी तु कन्दरो वाऽस्त्री देवखातबिले गुहा" तथा "दवीयश्च दविष्ठञ्च सुदूरं दीर्घमायतम्" इति चाप्यमरः, तदीयं = धेनुसम्बन्धि, आक्रन्दितम् = आक्रन्दनं, आर्तसाधोः = दीनरक्षणशीलस्य, नृपस्य = राज्ञो दिलीपस्य, नगेन्द्रसक्तां = पर्वतरामणीयकावलोकनप्रसितां, "तत्परे प्रसितासक्तौ" इत्यमरः, दृष्टिं = दर्शनं, रश्मिषु = प्रग्रहेषु, "किरणप्रग्रहौ रश्मी" इत्यमरः, आदाय इव = गृहीत्वेव, निवर्तयामास = पर्वतात् परावर्तयामास ॥२८॥

(समासः) गुहायां निबद्धः गुहानिबद्धः, गुहानिबद्धश्चासौ प्रतिशब्दश्च तेन दीर्घं । तस्या इदं तदीयं । आर्तसाधोः, साध्नोति परकार्य्यमिति साधुः, आर्तेषु साधुरार्तसाधुस्तस्य । नगेन्द्रसक्तां = नगेषु इन्द्रो नगेन्द्रस्तत्र सक्ता तां । दृष्टिः = दृश्यतेऽनया ताम् ॥२८॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घेण तदीयेन आक्रन्दितेन आर्तसाधोः नृपस्य नगेन्द्रसक्ता दृष्टिः निवर्त्तयाञ्चक्रे ॥२८॥

(सरलार्थः) यथा सारथिः धावन्तम् अश्वं रश्मिभिः आकृष्य निवर्त्तयति तथैव सिंहाक्रमणेन अतिदीर्घः तस्याः क्रन्दनशब्दः, राज्ञो दिलीपस्य पर्वतसक्तां दृष्टिं ततः परावर्तयामास ॥२८॥

(भावार्थ) उसके डकारने की ऊँची आवाज ने दुखियों के रक्षक राजा दिलीप की पर्वतमें लगी हुई दृष्टि लगाम के द्वारा घोड़े की तरह अपनी ओर झुकाई ॥२८॥

स पाटलायां गवि तस्थिवांसं धनुर्धरः केसरिणं ददर्श ।
अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम् ।

(अन्वयः) धनुर्धरः, सः, पाटलायां, गवि, तस्थिवांसं, केसरिणं, सानुमतः, धातुमय्यां, अधित्यकायां, प्रफुल्लं, लोध्रद्रुमम्, इव, ददर्श ॥२९॥

(टीका) धनुर्धरः = धनुष्मान्, "धन्वी धनुष्मान् धानुष्को निषङ्ग्यस्त्री धनुर्धरः" इत्यमरः, सः = दिलीपः, पाटलायां = ईषद् रक्तवर्णायां, "श्वेतरक्तस्तु पाटलः" इत्यमरः, गवि = कामधेनौ, तस्थिवांसं = स्थितं, केसरिणं = सिंहं, सानुमतः = अद्रेः, धातुमय्यां = गैरिकादिधातुप्रचुरायाम्, अधित्यकायाम् = ऊर्ध्वभूमौ, "भूमिरूर्ध्वमधित्यका" इत्यमरः, प्रफुल्लं = विकसितं, लोध्रद्रुमं = लोध्रनामानं वृक्षमिव, ददर्श = अवलोकयामास ॥२९॥

(समासः) धनुर्धरः = धरतीति धरः, धनुषो धर इति धनुर्धरः । केसरिणं = केसराः स्कन्धबालाः सन्त्यस्येति केसरी तं । सानुमतः सानूनि सन्त्यस्येति सानुमान् तस्य । धातुमय्यां, धातोर्विकारः धातुमयी तस्याम् । प्रफुल्लं, प्रकर्षेण फुल्लतीति प्रफुल्लस्तम् । लोध्रद्रुमं द्रुः शाखास्त्यस्येति द्रुमः, लोध्रस्य द्रुमो लोध्रद्रुमस्तम् ॥२९॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) धनुर्धरेण तेन पाटलायां गवि तस्थिवान् केसरी सानुमतः धातुमय्यां अधित्यकायां प्रफुल्लः लोध्रद्रुमः इव ददृशे ॥२९॥

(सरलार्थः) दिलीपः रक्तवर्णायां गवि स्थितं सिंहं गैरिकादिधातुरक्तवर्णायां पर्वतभूमौ विकसितं लोध्रपुष्पमिव अवलोकयामास ॥२९॥

(भावार्थ) धनुर्धारी राजा दिलीप ने फूले हुये लोध्र वृक्ष की समान लाल गाय पर बैठे हुए सिंह को देखा ॥ २९ ॥

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः ।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गादुद्धर्तुमैच्छत्प्रसभोद्धृतारिः ॥ ३० ॥

(अन्वयः) ततः, मृगेन्द्रगामी, शरण्यः, प्रसभोद्धृतारिः, नृपतिः, जाताभिषङ्गः सन्, वध्यस्य, मृगेन्द्रस्य, वधाय, निषङ्गात्, शरम्, उद्धर्तुम्, ऐच्छत् ॥ ३० ॥

(टीका) ततः = सिंहदर्शनानन्तरं, मृगेन्द्रगामी = सिंहगामी, शरण्यः = रक्षकः, "शरणं गृहरक्षित्रोः" इत्यमरः, प्रसभोद्धृतारिः = [illegible], नृपतिः = राजा दिलीपः, जाताभिषङ्गः = जात[illegible] सन्, "अभिषङ्गः पराभवे" इत्यमरः, वध्यस्य =

वधार्हस्य, मृगेन्द्रस्य = सिंहस्य, वधाय = मारणाय, निषङ्गात् = तूणीरात्, शरं = बाणम्, उद्धर्तुम् = निष्कासयितुम्, ऐच्छत् = अकामयत ॥ ३० ॥

(समासः) मृगाणामिन्द्रो मृगेन्द्रः, स इव गच्छतीति मृगेन्द्रगामी । प्रसभं उद्धृता अरयो येन सः । पातीति पतिः, नृणां पतिरिति नृपतिः । जातोऽभिषङ्गो यस्यासौ जाताभिषङ्गः । वध्यस्य = वधं (प्राणदण्डम्) अर्हतीति वध्यस्तस्य । शरणे साधुः शरण्यः ॥ ३० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) ततः मृगेन्द्रगामिना शरण्येन जाताभिषङ्गेन प्रसभोद्धृतारिणा नृपतिना वध्यस्य मृगेन्द्रस्य वधाय निषङ्गात् शरः उद्धर्तुम् ऐष्यत ॥ ३० ॥

(सरलार्थः) येन राज्ञा दिलीपेन सर्वे स्वशत्रवः समूलमुन्मूलितास्तथाविधोऽपि स दिलीपः स्वसमक्षं धेनौ सिंहस्याक्रमणं दृष्ट्वात्मनः पराभवममन्यत । अतस्तस्य वधं विधातुं निषङ्गात् शरमुद्धर्तुमैच्छत् ॥ ३० ॥

(भावार्थ) राजा दिलीप ने सिंह को मारने के लिये तरकस से बाण निकालने की इच्छा की ॥ ३० ॥

वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे ।
सक्ताङ्गुलिः सायकपुंख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे ॥३१॥

(अन्वयः) प्रहर्तुः, तस्य, वामेतरः, करः, नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे, सायकपुङ्खे, एव सक्ताङ्गुलिः 'सन्' चित्रार्पितारम्भः, इव, अवतस्थे ॥ ३१ ॥

(टीका) प्रहर्तुः = प्रहारकस्य, तस्य = दिलीपस्य, वामेतरः = दक्षिणः, करः = हस्तः, "बलिहस्तांशवः कराः" इत्यमरः, नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे,※ = नखकान्तिभूषितकङ्कपक्षिविशेषपत्रे, सायकपुङ्खे = शरमूलप्रदेशे, एव, 'शरे खड्गे च सायकः' इत्यमरः, सक्ताङ्गुलिः = आसक्तकरशाखः सन् "अङ्गुल्यः करशाखाः स्युः" इत्यमरः, चित्रार्पितारम्भः = चित्रगतशरोत्कर्षणोद्योग इव, अवतस्थे = स्थितः ॥ ३१ ॥

※ "कङ्क" नामप्रसिद्धपक्षिविशेषस्य पत्राणि बाणस्य गतिवेगसाधनार्थं ... निवेश्यन्ते, तत्सम्बन्धात् बाणः कङ्कपत्र इत्युच्यते ।

(सरलार्थः) भुजप्रतिरोधप्रवृद्धमन्युर्दिलीपः सम्मुखस्थितमपराधिनमाक्रमितुमसमर्थः, मंत्रेण औषध्या वा प्रतिरुद्धपराक्रमः सर्प इव हृदि अदह्यत ॥३२॥

(भावार्थ) हाथ के रुक जाने से बढ़े हुए क्रोधवाला राजा दिलीप सामने खड़े हुए दोषी को स्पर्श करने की शक्ति न रखने वाले तेजसे, मंत्रों वा जड़ी बूटियों से स्तम्भित पराक्रम वाले सर्प के समान भीतर ही भीतर जलने लगा ॥३२॥

तमार्यगृह्यं निगृहीतधेनुर्मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम् ।
विस्मापयन्विस्मितमात्मवृत्तौ सिंहोरुसत्वं निजगाद सिंहः ॥३३॥

(अन्वयः) निगृहीतधेनुः, सिंहः, आर्यगृह्यं, मनुवंशकेतुं, सिंहोरुसत्वम्, आत्मवृत्तौ, विस्मितं, तं, मनुष्यवाचा विस्मापयन्, निजगाद ॥३३॥

(टीका) निगृहीतधेनुः = आक्रान्तधेनुः, सिंहः = मृगेन्द्रः, "सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यः" इत्यमरः, आर्यगृह्यं = सत्पक्षपातिनं, मनुवंशकेतुं = मनुकुलकेतुभूतं, सिंहोरुसत्वं = मृगेन्द्रसदृशपराक्रमम्, आत्मवृत्तौ = बाहुप्रतिष्टम्भव्यापारे, विस्मितम् = आश्चर्ययुक्तं, तं = दिलीपं, मनुष्यवाचा = मनुजवाण्या, विस्मापयन् = आश्चर्यं प्रापयन्, निजगाद = उवाच ॥ ३३ ॥

(समासः) निगृहीता धेनुर्येन सः निगृहीतधेनुः। अर्तुं योग्यः * आर्यस्तैः गृह्यते आश्रयत्वेन सेव्यत इति आर्यगृह्यस्तम्। मनोर्वंशो मनुवंशस्तस्य केतुस्तं मनुवंशकेतुं। सिंहस्येव उरु सत्त्वं यस्य सः तम्। आत्मनो वृत्तिस्तस्मिन्नात्मवृत्तौ। मनुष्याणां वाक् मनुष्यवाक् तया। विस्मापयतीति विस्मापयन् ॥३३॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) निगृहीतधेनुना सिंहेन आर्यगृह्यः मनुवंशकेतुः आत्मवृत्तौ विस्मितः सिंहोरुसत्वः सः मनुष्यवाचा विस्मापयता निजगदे ॥ ३३ ॥

(व्या०) वि-स्मि + णिच् + शतृ "नित्यं स्मयतेः" इति आत्वं

---

* एतल्लक्षणञ्च यथा:—

कर्तव्यमाचरन् काममकर्तव्यमनाचरन् ।
तिष्ठति प्रकृताचारे स तु आर्य इति स्मृतः ॥

पुगागमः। यद्यपि मनुष्यवाचेति करणादेवात्र स्मयः, अत आ
न प्राप्नोति तथापि मनुष्यवाक् प्रयोज्यकर्त्री विस्मापयते त
सिंहो विस्मापयन्निति ण्यन्तान् णिजिति समाधेयम्, विस्मायय
न्त्येव पाठ इति सांप्रदायिकाः ॥ ३३ ॥

(सरलार्थः) दिलीपः पुरा कदापि न जातं निजं भुजस्तम्भ
व्यापारम् अवलोक्य विस्मयमाप। सिंहोऽपि विस्मयमापन्नं
दिलीपं मानवीं वाचमवलम्ब्य ततोऽप्यधिकमाश्चर्यमुत्पादयन्
सम्बोधयामास ॥ ३३ ॥

(भावार्थ) नन्दिनी पर आक्रमण किया हुआ सिंह, अपन
अवस्था पर चकित और बलवान् उस राजा दिलीप को मनुष्य की
बोली से और चकित कराता हुआ बोला ॥ ३३ ॥

अलं महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्।
न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥३४॥

(अन्वयः) हे महीपाल, तव, श्रमेण, अलं, इतः, "मयि" प्रयु
क्तम्, अपि, अस्त्रं, वृथा, स्यात् 'हि' पादपोन्मूलनशक्ति, मारुतस्य
रंहः, शिलोच्चये, न, मूर्च्छति ॥ ३४ ॥

(टीका) हे महीपाल! हे राजन्? तव = ते, श्रमेण = अस्त्र
मोचनप्रयासेन, अलं = साध्यन्नास्ति, 'कुतः' इतः = अस्मिन्मयि
प्रयुक्तमपि = निक्षिप्तमपि, अस्त्रम् = आयुधं, वृथा = व्यर्थमेव, स्यात् =
भवेत, हि = तथाहि, पादपोन्मूलनशक्ति = वृक्षोत्पाटनसमर्थं, "वृक्षो
महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः" इत्यमरः, मारुतस्य = वायोः
रंहः = वेगः, शिलोच्चये = अद्रौ, न मूर्च्छति = न प्रसरति ॥ ३४ ॥

(समासः) महात इति मही ताम्पालयतीति तत्सम्बुद्धौ
हे महीपाल!। पादपानामुन्मूलनं पादपोन्मूलनं तत्र शक्तिर्यस्य तत्
शिलाभिरुच्चीयत इति शिलोच्चयस्तस्मिन् ॥ ३४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) हे महीपाल! तव श्रमेण अलम् इतः प्रयुक्तेन
अपि अस्त्रेण वृथा भूयेत। पादपोन्मूलनशक्तिना मारुतस्य रंहसा
शिलोच्चये न मूर्च्छ्यते ॥ ३४ ॥

(सरलार्थः) हे राजन्! यथा वायुवेगः वृक्षानेव उन्मूलयितुं
शक्नोति न खलु पर्वतान्, तथैव भवानपि इतरान् विनाशयितुं शक्नोति

न खलु मादृशान् रुद्रानुचरान्, अतो मय्यस्त्रप्रक्षेपणे प्रयासो न विधेयः ॥ ३४ ॥

(भावार्थ) राजन् ! बस, बहुत परिश्रम न कर, मेरे ऊपर चलाया हुआ तेरा अस्त्र व्यर्थ ही होगा। केवल पेड़को उखाड़ने में समर्थ वायुका वेग पर्वत को नहीं उखाड़ सकता ॥ ३४ ॥

कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् ।
अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम् ॥३५॥

(अन्वयः) कैलासगौरं, वृषम्, आरुरुक्षोः, अष्टमूर्तेः, पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठं, निकुम्भमित्रं, कुम्भोदरं, नाम मां, किङ्करम् अवेहि ॥३५॥

(टीका) कैलासगौरं = कैलासवच्छुभ्रं, वृषं = वृषभं, "ऋषभो वृषभो वृषः" इत्यमरः, आरुरुक्षोः = आरोढुमिच्छोः, = ＊अष्टमूर्तेः = शिवस्य, पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठं = चरणन्यासपवित्रपृष्ठभागं, "पादः पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः, निकुम्भमित्रं = निकुम्भसखं, "अथ मित्रं सखा सुहृत्" इत्यमरः, कुम्भोदरं नाम = कुम्भोदरसंज्ञकं, मां, किङ्करं = परिचारकं, "नियोज्यकिङ्करप्रैष्यभुजिष्यपरिचारकाः" इत्यमरः, अवेहि = जानीहि ॥ ३५ ॥

(समासः) कैलास इव गौर इति तं कैलासगौरम् । आरोढुमिच्छुः आरुरुक्षुस्तस्य । अष्टौ मूर्तयो यस्यासौ अष्टमूर्तिस्तस्य । पद्यते आभ्यामिति पादौ, तयोरर्पणं तदेव अनुग्रहस्तेन पूतं पृष्ठं यस्य सः तं । निकुम्भस्य मित्रं निकुम्भमित्रम् ॥ ३५ ॥

(सरलार्थः) हे दिलीप ! मां सामान्यं वन्यं पशुं सिंहं न जानीहि किन्तु अहं शङ्करस्य प्रसिद्धगणयोः कुम्भोदरनिकुम्भाभिधयोरन्यतरः । शङ्करश्च यदा वृषभमारोढुमभिलषति तदा प्रथमं मम पृष्ठदेशे निजं पादं न्यस्यति ॥ ३५ ॥

(भावार्थ) कैलासपर्वत के तुल्य शुभ्र बैल पर चढ़ने वाले महादेवजीके चरण रखने की दया से पवित्र पीठवाला मैं कुम्भोदर नाम का शङ्करजीका सेवक हूँ ऐसा जानो ॥ ३५ ॥

＊ "पृथिवी सलिलं तेजो वायुराकाशमेव च । सूर्याचन्द्रमसौ सोमपा[?] चेत्यष्टमूर्तयः", इति यादवः ।

(समासः) द्राभ्यां पिबन्तीति द्विपाः, वनानां द्विपास्तेषां। विभर्तीति शूलभृत्तेन। अङ्कमागता अङ्कागताः, ते च ते सत्वाश्च गतसत्वाः, अङ्कागतसत्वा वृत्तिर्यस्मिंस्तदङ्कागतसत्ववृत्ति। सिंहभावः सिंहत्वं। अद्रेः कुक्षिरित्यद्रिकुक्षिस्तस्मिन्नद्रिकुक्षौ ॥ ३८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तदाप्रभृति ....शूल अस्मिन्............ मां व्यापारितवान् ॥ ३८ ॥

(सरलार्थः) ततः प्रभृति शिवेन वनवासिगजानां भयप्रदर्शं महमस्मिन् गह्वरे नियोजितः, अतोऽत्र मम समीपे ये जीवा आ च्छन्ति तान् भक्षयन् समयं नयामि ॥ ३८ ॥

(भावार्थ) उसी दिन से जंगली हाथियों को डराने के मुझे महादेवजीने * गोद में आये हुए पशु की वृत्तिवाली सिंहत कर यहाँ नियुक्त किया है ॥ ३८ ॥

तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै प्रदिष्टकाला परमेश्वरेण।
उपस्थिता शोणितपारणा मे सुरद्विषश्चान्द्रमसी सुधेव ॥ ३९ ॥

(अन्वयः) परमेश्वरेण, प्रदिष्टकाला, उपस्थिता, एषा, शोणितपारणा, सुरद्विषः, चान्द्रमसी, सुधा, इव, क्षुधितस्य, तस्य तृप्त्यै, अलम्, 'अस्ति' ॥३९॥

(टीका) परमेश्वरेण, = भगवता शङ्करेण, प्रदिष्टकाला = निर्दि समया, उपस्थिता = प्राप्ता, एषा = इयं गोरूपा, शोणितपारणा = रु रूपं व्रतान्तभोजनम्, सुरद्विषः = राहोः, चान्द्रमसी = चन्द्रस न्धिनी, सुधा = अमृतं इव, "पीयूषममृतं सुधा" इत्यमरः, क्षुधितस्य = बुभुक्षितस्य, तस्य = अङ्कागतसत्ववृत्तेः, मे = मम शिवा ङ्करस्य कुम्भोदरस्य, तृप्त्यै = प्रीणनाय, अलं = पर्याप्ता, "अलं भूष पर्याप्तशक्तिवारणवाचकम्" इत्यमरः, अस्ति ॥ ३९ ॥

(समासः) ईशितुं शीलमस्येतीश्वरः, परमश्चासावीश्वरः परमेश्वरस्तेन। प्रदिष्टः कालो यस्याः सा प्रदिष्टकाला। शोणितस्य पारणा इति शोणितपारणा। सुरान् द्वेष्टीति सुरद्विट् तस्य। चन्द्रमस इयं चान्द्रमसी। सुखेन धीयत इति सुधा। क्षुधा सञ्जाताऽस्यास क्षुधितस्तस्य ॥ ३९ ॥

* गोद में आये हुए पशु की वृत्ति से यह तात्पर्य है कि जो पशु अप आप आजाय उसको भक्षण करना उसे ढूँढने के लिये कहीं न जाना।

(वाच्यपरिवर्तनम्) परमेश्वरेण प्रदिष्टकालया उपस्थितया शोणितपारणया एतया, चान्द्रमस्या सुधया सुरद्विपः इव,......... अलं (भूयते) ॥ ३९ ॥

(सरलार्थः) कृतोपवासा व्रतिनः व्रतान्ते यथा पारणं कुर्वन्ति तथैव चिरम् आहारालाभेन कृतोपवासस्य मम पारणार्थम् अस्मत्प्रभुणा शङ्करेणेयं धेनुरिह प्रेषिता। यथा इन्दुमण्डलसंस्थितम् अमृतमास्वाद्य राहुः परां तृप्तिम् अधिगच्छति तथैवाहमपि अनया परां तृप्तिमधिगमिष्यामि ॥ ३९ ॥

(भावार्थ) उसी मुझ भूखे की तृप्ति के लिये राहू के तृप्ति के निमित्त चान्द्रमसी सुधा के समान यह काल को बाँधी हुई लोहू की पारणा परमेश्वर ने भेजी है ॥३९॥

स त्वं निवर्तस्व विहाय लज्जां गुरोर्भवान्दर्शितशिष्यभक्तिः।
शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति ॥४०॥

(अन्वयः) सः, त्वं लज्जां, विहाय, निवर्तस्व, भवान्, गुरोः, दर्शितशिष्यभक्तिः 'अस्ति' यत्, रक्ष्यं शस्त्रेण, अशक्यरक्षं, तत्, शस्त्रभृतां, यशः, न, क्षिणोति ॥ ४० ॥

(टीका) सः = उपायशून्यः, त्वं, लज्जां = त्रपां, विहाय = त्यक्त्वा, निवर्तस्व = गोरक्षणप्रयासाद् विरतो भव, भवान् = त्वं, गुरोः = वसिष्ठस्य, दर्शितशिष्यभक्तिः, = प्रकटितच्छात्रभक्तिः, अस्ति = विद्यते; यत्, रक्ष्यं = रक्षणीयं वस्तु, शस्त्रेण = आयुधेन, अशक्यरक्षं = रक्षितुमशक्यं, तत् = रक्ष्यं, वस्तु, शस्त्रभृतां = आयुधधारिणां, यशः = कीर्तिं "यशः कीर्तिः समज्ञा च" इत्यमरः, न क्षिणोति = न हिनस्ति ॥ ४० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन त्वया लज्जां विहाय निवृत्यताम्। भवता गुरोः दर्शितशिष्यभक्तिना (भूयते) येन रक्ष्येण शस्त्रेण अशक्यरक्षेण (भूयते) तेन न क्षीयते ॥ ४० ॥

(समासः) गृणात्युपदिशतीति गुरुस्तस्य। दर्शिता शिष्यभक्तिर्येन सः। शस्यतेऽनेनेति शस्त्रं, तेन। न शक्या (असाध्या) रक्षा यस्य तद्। शस्त्राणि बिभर्तीति शस्त्रभृतस्तेषां। रक्षितुम् योग्यं रक्ष्यम् ॥ ४० ॥

(सरलार्थः) हे दिलीप! स्वशक्त्यनुसारं त्वया अस्या रक्षं
बहु प्रयतितं, तेन च स्वीया गुरुभक्तिरपि सम्यक् प्रदर्शिता। यद्
वस्तु शस्त्रेण रक्षितुं न शक्यते तत्र त्वया न लज्जितव्यम्। अस्य
विनाशो जगदीश्वरेणैव विहित इति मत्वा गृहं गन्तव्यम् ॥ ४० ॥

(भावार्थ) इसलिये गुरु में भक्ति दिखानेवाला तूँ लज्जा छोड़ क
मकान चला जा। जो वस्तु शस्त्रों से रक्षित न हो सके उसके ना
होने से शस्त्रधारियों का यश क्षीण नहीं होता है ॥ ४० ॥

इति प्रगल्भं पुरुषाधिराजो मृगाधिराजस्य वचो निशम्य।
प्रत्याहतास्त्रो गिरिशप्रभावादात्मन्यवज्ञां शिथिलीचकार ॥ ४१ ॥

(अन्वयः) पुरुषाधिराजः, मृगाधिराजस्य, इति, प्रगल्भं, वच
निशम्य, "अहं" गिरिशप्रभावात्, प्रत्याहतास्त्रः, (अस्मि, इति मत्व
आत्मनि, अवज्ञां, शिथिलीचकार ॥ ४१ ॥

(टीका) पुरुषाधिराजः = नराधिपः, मृगाधिराजस्य = सिंहस
इति = इत्थं, प्रगल्भं = धृष्टं, वचः = वचनं, निशम्य = आकर्ण्य; 'अ
गिरिशप्रभावात् = शिवसामर्थ्यात्, प्रत्याहतास्त्रः = कुण्ठितास्
"अस्मीति विचार्य्य" आत्मनि = चित्ते "आत्मा कलेवरे य
स्वभावे परमात्मनि। चित्ते धृतौ च बुद्धौ च परव्यावर्तनेऽपि ज
इति धरणिः, अवज्ञां = अपमानं, शिथिलीचकार = तत्याज ॥ ४१ ॥

(समासः) अधिराजत इत्यधिराजः, पुरुषाणामधिरा
पुरुषाधिराजः। मृगाणामधिराजस्तस्य। प्रगल्भत इति प्रगल्
गिरिराश्रयत्वेनास्यास्तीति गिरिशस्तस्य प्रभावस्तस्मात्। प्रत्याहत
अस्त्रं यस्य सः प्रत्याहतास्त्रः ॥ ४१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) पुरुषाधिराजेण मृगा..............प्रत्या
तास्त्रेण (भूयते) आत्मनि अवज्ञा शिथिलीचक्रे ॥ ४१ ॥

(व्याकरण) गिरौ शेत इति वाक्ये "गिरौ डश्छन्दसि" इ
डप्रत्ययान्तो गिरिशशब्दश्छान्दस इत्यवगन्तव्यम् ॥ ४१ ॥

(सरलार्थः) यदा दिलीपेनैतत्सर्वं वृत्तं श्रुतं तदा शिवप्रभा
देव एवं पराभूतोऽस्मीति निर्वेदं न प्राप। यतः क्षत्रियाणां सम
न्यभिमानो न परमेश्वरम्प्रति ॥ ४१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)..........वितथप्रयत्नेन तेन एषः ...
च्यत। जडीकृतेन वज्रं मुमुक्षता वज्रपाणिना इव तस्थे ॥ ४२ ॥

(सरलार्थः) अयं प्रथम एवावसरः, यद् दिलीपो गां ...
उद्यतं शत्रुभूतं सिंहं हन्तुं धनुषि वाणं सन्धातुं नाशकत्।
अङ्के स्थितं बालरूपिणं शङ्करं हन्तुं प्रवृत्त इन्द्रो यां दशां ...
नुभूतवान् सैव दशा दिलीपस्यापि तदानीं जाता ॥ ४२ ॥

(भावार्थ) महादेवजी के देखने से ही रुद्धशक्ति होकर व...
प्रहार करने की इच्छा करने वाले इन्द्र के समान स्थित होकर ...
दिलीप इससे बोला ॥ ४२ ॥

संरुद्धचेष्टस्य मृगेन्द्र! कामं हास्यं वचस्तद्यदहं विवक्षुः।
अन्तर्गतं प्राणभृतां हि वेद सर्वं भवान्भावमतोऽभिधास्ये ॥ ४३ ॥

(अन्वयः) हे मृगेन्द्र! यत्, 'वचः' अहं विवक्षुः, 'अस्मि
संरुद्धचेष्टस्य, मे, तत्, वचः, कामं, हास्यं, 'वर्तते' हि, भवान्
प्राणभृताम्, अन्तर्गतं, सर्वं, भावं, वेद, अतः 'कारणात्' ...
अभिधास्ये ॥ ४३ ॥

(टीका) हे मृगेन्द्र! = हे सिंह! "सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यः"
इत्यमरः, यत् "वचः" अहं, विवक्षुः = वक्तुमिच्छुः, "अस्मि"
संरुद्धचेष्टस्य = प्रतिरुद्धव्यापारस्य, मे = मम तत् = वक्ष्यमाणं वचः
= वाक्यं, कामं = यथेष्टं, हास्यं = परिहासयोग्यं, हि = ...
णात्, भवान्, प्राणभृतां = प्राणिनाम्, अन्तर्गतं = हृद्गतं, सर्वम्
अखिलं, भावम् = अभिप्रायं, वेद = जानाति, अतः = अस्मात्कारणात्
अभिधास्ये = वक्ष्यामि ॥ ४३ ॥

(समासः) इन्दतीतीन्द्रः, मृगाणामिन्द्रो मृगेन्द्रस्तत्सम्बुद्धौ
हे मृगेन्द्र! वक्तुमिच्छुर्विवक्षुः। सम्यक् रुद्धा चेष्टा यस्य तस्य।
हसितुं योग्यं हास्यं। प्राणन्ति जीवन्त्येभिरिति प्राणास्तान्... त...
तेषां। अन्तः गतमित्यन्तर्गतम् ॥ ४३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) मृगेन्द्र! यत् "वचः" मया विवक्षुणा
"भूयते" संरुद्धचेष्टस्य, मे तेन वचसा कामं हास्येन "भूयते"।
भवता प्राणभृतां अन्तर्गतः सर्वः भावः विद्यते अतः "मया
अभिधास्यते ॥ ४३ ॥

(सरलार्थः) हे हरे ! यः किमपि कर्तुं न प्रभुः तस्य वचसि कस्यापि आदरो न जायते, तथा तद्वचः श्रुत्वा "असमर्थोऽप्ययं वीर इव प्रगल्भते" इति लोका हसन्ति । इदानीमहमपि तथैव जातोऽस्मि परं भवान् महादेवस्य सेवकः अतस्तेषां प्रभावात्प्राणिनामन्तर्गतं सर्वं भावं जानात्येव ततस्तव समीपे कथने न कश्चिद्दोषः ॥ ४३ ॥

(भावार्थ) हे सिंह, मेरा वचन यद्यपि अत्यन्त हंसी के योग्य है तौ भी आप प्राणियों के हृदय के सब भाव जानते ही हैं इसलिये उसे कहता हूँ ॥ ४३ ॥

मान्यः स मे स्थावरजङ्गमानां सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः ।
गुरोरपीदं धनमाहिताग्नेर्नश्यत्पुरस्तादनुपेक्षणीयम् ॥ ४४ ॥

(अन्वयः) स्थावरजङ्गमानां, सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः, सः, 'वृषभध्वजः' मे, मान्यः 'अस्ति' आहिताग्नेः, गुरोः, अपि, इदं, 'गोरूपं' धनं, पुरस्तात्, नश्यत्, अनुपेक्षणीयम् ॥ ४४ ॥

(टीका) स्थावरजंगमानां = तरुशैलमनुष्यादीनां, सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः = उत्पत्तिस्थितिविनाशकारणं, सः = भगवान् भूतेशः, मे = मम, मान्यः = पूज्यः, 'अस्ति' "तथापि" आहिताग्नेः = स्थापिताग्नेः, गुरोः = वसिष्ठस्यापि, इदं = गोरूपं, धनं, पुरस्तात् = अदणोरग्रे, नश्यत् = नाशं प्राप्नुवत्, अनुपेक्षणीयं = उपेक्षितुमयोग्यम् ॥ ४४ ॥

(समासः) स्थातुं शीलमेषां ते स्थावराः, जङ्गम्यन्ते भृशं गच्छन्तीति जङ्गमाः, ते च जंगमाश्च स्थावरजंगमास्तेषां । सर्गश्च स्थितिश्च प्रत्यवहारश्च तेषां हेतुः । आहितोऽग्निर्येन सः तस्य ॥४४॥

(वाक्यपरिवर्तनम्) स्थावरजङ्गमानां सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुना तेन मे मान्येन "भूयते" आहिताग्नेः अनेन धनेन पुरस्तात् नश्यता अनुपेक्षणीयेन "भूयते" ॥ ४४ ॥

(सरलार्थः) अस्य देवदारोः समीपमागताः प्राणिनस्त्वदा भक्षणीयाः एनं देवदारुं परित्यज्य आहारार्थं नान्यत्र गन्तव्यमिति भगवतः शङ्करस्य आदेशो मयापि शिरसैव धार्यते परं पुरस्तात् नश्यद् इदं गोरूपं गुरोर्धनमुपेक्षितुमशक्तोऽस्मि ॥ ४४ ॥

(भावार्थ) उत्पत्ति, पालन और नाश के करने वाले शिव मेरे

(टीका) अथ = दिलीपोक्त्यनन्तरं, भूतेश्वरपार्श्ववर्ती = महादेवानुचरः, सः = सिंहः, दंष्ट्रामयूखैः = दन्तकिरणैः, गिरिगह्वराणां = पर्वतकन्दराणां, अन्धकारं = ध्वान्तं, "अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तम्" इत्यमरः, शकलानि = खण्डानि, "भित्तं शकलखण्डे वा" इत्यमरः, कुर्वन् = सम्पादयन्, किञ्चित् = ईषत्, विहस्य = हसित्वा, भूयः = पुनः, अर्थपतिं = धनाधिपं राजानं, बभाषे = उक्तवान् ॥ ४६ ॥

(समासः) ईशितुं शीलमस्येतीश्वरः, भूतानामीश्वरो भूतेश्वरस्तस्य पार्श्ववर्तीति । दंष्ट्राणां मयूखैः । गिरेर्गह्वराणि गिरिगह्वराणि तेषां । पातीति पतिः; अर्थानाम्पतिरित्यर्थपतिस्तम् ॥ ४६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अथ अनेन भूतेश्वरपार्श्ववर्तिना दंष्ट्रामयूखैः कुर्वता अर्थपतिः ॥ ४६ ॥

(सरलार्थः) ततः सिंहः राज्ञो वचनं श्रुत्वा किञ्चिद् विजहास, अनन्तरं राजानमुवाच ॥ ४६ ॥

(भावार्थ) इसके उपरान्त महादेवजी के समीप रहनेवाला वह सिंह अपने डाढ़ों की कान्ति से पहाड़ की कन्दरा के अन्धकार को टुकड़े २ करता हुआ हँस कर बोला ॥ ४६ ॥

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च ।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् ॥४७॥

(अन्वयः) एकातपत्रं, जगतः, प्रभुत्वं, नवं, वयः, इदं, कान्तं, वपुश्च, बहु, 'एतत्सर्वं' अल्पस्य, हेतोः, 'धेन्वर्थं' हातुम्; इच्छन्, त्वं, मे, विचारमूढः, प्रतिभासि ॥ ४७ ॥

(टीका) एकातपत्रं = एकच्छत्रं, जगतः = भुवनस्य मर्त्यलोकस्य, प्रभुत्वं = स्वामित्वं, नवं = नूतनं, "प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः" इत्यमरः, वयः = यौवनम्, इदम् = एतत्, कान्त = सुन्दरं, वपुः = शरीरं, च, 'एतत्सर्व' बहु = बहुलं, "अदभ्रं बहुलं बहु" इत्यमरः, अल्पस्य = तुच्छस्य "स्तोकं क्षुल्लं तुच्छमल्पम्" इत्यभिधानचिन्तामणिः, गोरक्षामात्रस्येत्यर्थः, हेतोः = कारणात्, हातुं = त्यक्तुं, इच्छन् = कामयमानः, त्वं, मे = मम, विचारमूढः = कार्याकार्यविवेकशून्यः, प्रतिभासि = लक्ष्यसे ॥४७॥

(समासः) आतपात्त्रायत इत्यातपत्रं, एकम्, आतपत्रं यस्मिंस्तत् । इच्छतीतीच्छन्, विचारे मूढो विचारमूढः ॥ ४७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) एकातपत्रं··········हातुं इच्छता त्वया विचारमूढेन प्रतिभायते ॥ ४७ ॥

(सरलार्थः) हे राजन् यतस्त्वम् एकच्छत्रं पृथिवीराज्यं, न यौवनं, मनोहरमिदं वपुश्च इति सर्वम् अल्पस्य एकस्य गोहेतोस्त्य क्तुमिच्छसि, अतः एतत् सत्यं दृश्यते किंकर्त ः क व्यमि विवेक्तुं त्वं न जानासि ॥ ४७ ॥

(भावार्थ) हे राजन् ! चक्रवर्तित्व, जगत की प्रभुताई, ... का आनन्द और सुन्दर शरीर यह सब एक पशु के निमित्त छोड़ की इच्छा करने वाला तू मुझे मूर्ख मालूम पड़ता है ॥ ४७ ॥

भूतानुकम्पा तव चेदियं गौरेका भवेत्स्वस्तिमती त्वदन्ते ।
जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि ॥४८

(अन्वयः) तव, चेत् भूतानुकम्पा, (अस्ति तदा) त्वदन्ते एक (एव) इयं, गौः, स्वस्तिमती, भवेत्, हे प्रजानाथ ! पुनः, (पक्षान्तरे (त्वं) जीवन्, (सन्) शश्वत्, पिता, इव, उपप्लवेभ्यः, प्रजाः, पासि ॥४८

(टीका) तव = भवतः, चेत् = यदि, भूतानुकम्पा = प्राणिद "तर्हि" त्वदन्ते = त्वद्विनाशे, एका = एकाकिनी, 'एव' इयं = मद् प्राप्ता, गौः = धेनुः, स्वस्तिमती = कल्याणवती, भवेत् = स्या 'किन्तु' हे प्रजानाथ ! = हे जनपते !, "प्रजा" स्यात्संततौ जने इत्यमरः, 'त्वं' पुनः = भूयः, जीवन् 'सन्' = प्राणान्धारयन्, सन् शश्वत् = निरन्तरं, पिता इव = जनक इव, उपप्लवेभ्यः = उपद्रवेभ्य प्रजाः = लोकान्, पासि = रक्षसि ॥ ४८ ॥

(समासः) भूतेषु अनुकम्पा भूतानुकम्पा । तव अन्तस्त्वदन्त स्तस्मिन् । स्वस्ति (क्षेमम्) अस्याः अस्तीति । प्रकर्षेण जायन्त इति प्रजास्तासां नाथस्तत्सम्बुद्धौ ॥ ४८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तव चेद् भूतानुकम्पया "भूयते" त्वदन्ते एकया अनया गवा स्वस्तिमत्या भूयते । हे प्रजानाथ ! पुनः जीवता त्वया शश्वत् पित्रा इव उपप्लवेभ्यः प्रजाः पाल्यन्ते ॥ ४८ ॥

(सरलार्थः) हे दिलीप ! यत् त्वम् आत्मानम् अभिहन्तुं मन्य मानः स्वशरीरं मरणस्य अर्पयित्वा धेनुमिमां रक्षितुम् अभिलषसि तर्हि ... । एतत्, तव विनाशे इयमेव केवलम्

एका गौः स्वस्तिमती भवेत् किन्तु यदि त्वं जीविष्यसि तदा सुचिरम् अलङ्घ्याः प्रजाः रक्षिष्यसि ॥ ४८ ॥

(भावार्थ) जो तेरी प्राणियों पर दया ही है तो यह समझ रख कि तेरे नाश होने पर केवल यही एक गौ सुखी होगी, और यदि तू जीता रहा तो पिता के समान चिरकाल तक विघ्नों से प्रजा की रक्षा कर सकेगा ॥ ४८ ॥

अथैकधेनोरपराधचण्डाद् गुरोः कृशानुप्रतिमाद्बिभेषि ।
शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुं गाः कोटिशः स्पर्शयता घटोध्नीः ४९

(अन्वयः) अथ, एकधेनोः, अपराधचण्डात्, कृशानुप्रतिमात्, गुरोः, (त्वं) बिभेषि (तर्हि) घटोध्नीः, कोटिशः गाः, स्पर्शयता, भवता, अस्य, (गुरोः) मन्युः, विनेतुं, शक्यः ॥ ४९ ॥

(टीका) अथ = यदि, एकधेनोः = केवलं नन्दिन्याः "इते" अपराधचण्डात् = अपराधात्यन्तकोपनात् "चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः" इत्यमरः, कृशानुप्रतिमात् = अग्निकल्पात्, गुरोः = वसिष्ठात्, [illegible] बिभेषि = भयं प्राप्नोषि, तर्हि, कोटिशः = बहुकोटिसं[illegible] गाः = धेनूः, स्पर्शयता = प्रतिपादयता, भवता = त्वया, [illegible] = गुरोर्वसिष्ठस्य, मन्युः = क्रोधः, विनेतुम् = अपनेतुं, [illegible] = पारणीयः ॥ ४९ ॥

(समासः) एकैव धेनुर्यस्य सः तस्य । अपराधेन [illegible] राधचण्डस्तस्मात् । कृश्यति = तनूकरोतीति कृशानुः [illegible] यस्य सः तस्मात् । घटा इव ऊधांसि यासान्ताः ॥ ४९ ॥

(वाच्यान्तरम्) अथ एकधे०.........."त्वया" [illegible] ....स्पर्शयन् भवान् अस्य मन्युं विनेतुं शक्नु[illegible]

(सरलार्थः) धेनोर्विनाशेन मे गुरुरधिकं [illegible] चेतसि भवञ्चेत् तदपि निर्मूलमेव । एक[illegible] गुणिताः बहुक्षीरा गावः दातुं प्रभवसि । [illegible] अनेका लब्ध्वा प्रसन्नो भविष्यति ॥ ४९ ॥

(भावार्थ) यदि इस धेनु के [illegible] साक्षादग्निस्वरूप गुरु वसिष्ठ से [illegible] वाली करोड़ों गायें देकर तू उनका [illegible]

तद्रक्ष कल्याणपरम्पराणां भोक्तारमूर्जस्वलमात्मदेहम् ।
महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नमृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः ॥ ५० ॥

(अन्वयः) तत्, कल्याणपरम्पराणां, भोक्तारम् ऊ... आत्मदेहं, (त्वं) रक्ष, ऋद्धं, राज्यं, महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नं ऐन्द्रं, पदम्, आहुः ॥ ५० ॥

(टीका) तत् = तस्मात्कारणात्, कल्याणपरम्पराणां = म... सन्ततीनां, भोक्तारम् = उपभोक्तारम्, ऊर्जस्वलं = महाबलम्, आत्म देहं, स्वशरीरं, त्वं, रक्ष = गोपाय, हि = यस्मात्कारणात्, ऋद्धं = समृद्धं, राज्यं, महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नं = भूतलसम्बन्धमात्रभिन्नं ऐन्द्रं = इन्द्रसम्बन्धि, पदं = स्थानं "पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्मा ङ्घ्रिवस्तुषु" इत्यमरः, आहुः = प्राहुः, लोका वदन्तीति शेषः ॥ ५०॥

(समासः) कल्याणानां परम्परास्तासां। ऊर्जो बलमस्य अस्तीति तथाभूतम् । आत्मनो देहमात्मदेहं । मह्यास्तलं महीतलं, महीतल स्पर्शनमेव महीतलस्पर्शनमात्रं तेन भिन्नमिति । इन्द्रस्येदमैन्द्रम् ॥५०॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तत् कल्याणपरम्पराणां भोक्ता ऊर्जस्वल आत्मदेहः "त्वया" रक्ष्यताम्, हि... ......"नरैः" उच्यते ।

(सरलार्थः) अतः हे राजन् ! सुखसन्ततेः उपभोगक्षमं स्वशरीरम् अवश्यं त्वया रक्षणीयम् । गोविनाशे स्वर्गहानिर्नाशङ्क्या। समृद्धं तव राज्यं इन्द्रपदादन्यूनं वर्तते । तत्र च केवलमियानेव भेदः, यद् इन्द्रः भूतलं न स्पृशति त्वञ्च स्पृशसि ॥ ५० ॥

(भावार्थ) इस हेतु तू अपने बलवान् शरीर की रक्षा कर, समृद्धिशाली तेरा राज्य इन्द्रपद के समान है, केवल पृथ्वी का सम्बन्ध होने के कारण उससे भिन्न है ॥ ५० ॥

एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे प्रतिस्वनेनास्य गुहागतेन ।
शिलोच्चयोऽपि क्षितिपालमुच्चैः प्रीत्या तमेवार्थमभाषतेव ॥५१॥

(अन्वयः) एतावद्, उक्त्वा, मृगेन्द्रे, विरते, (सति) शिलोच्चयः, अपि, अस्य, (सिंहस्य) गुहागतेन, प्रतिस्वनेन, प्रीत्या क्षितिपालं तम्, एव, अर्थम्, उच्चैः, अभाषत, इव ॥ ५१ ॥

(टीका) एतावत् = एतावत्पर्यन्तं, उक्त्वा = कथयित्वा, मृगेन्द्रे = सिंहे "सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यः" इत्यमरः, विरते = मौनीभूते

ति, शिलोच्चयः = शैलोऽपि, अस्य = पुरोवर्तिनः सिंहस्य, गुहा-तेन = कन्दरगतेन, प्रतिस्वनेन = प्रतिध्वनिना, उच्चैः = उच्चस्वरेण, क्षितिपालं = भूमिपं दिलीपं, प्रीत्या = प्रेम्णा, तमेव अर्थं = सिंहोक्तवाक्यम्, अभाषत इव = अवोचतेव ॥ ५१ ॥

(समासः) मृगाणामिन्द्रो मृगेन्द्रस्तस्मिन्। गुहां गतो गुहागततेन। क्षितिम्पालयतीति तं। शिलाभिरुच्चीयत इति शिलोच्चयः ॥५१॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) एतावत्......शिलोच्चयेन अपि......क्षितिपालः......तम् अर्थम् अभाष्यत इव ॥ ५१ ॥

(सरलार्थः) इत्युक्त्वा सिंहो यदा विरराम तदा स एव तस्य शब्दः पर्वतकन्दरायामपि प्रतिध्वनितो बभूव। पर्वतोऽपि प्रीत्या तमेवार्थमन्ववदन्निव ॥ ५१ ॥

(भावार्थ) इतना कह कर मृगेन्द्र के चुप होने पर पर्वत ने भी कन्दरा में उठे हुए प्रतिशब्दसे प्रीतिपूर्वक मानो राजासे यही बात कही ॥ ५१ ॥

निशम्य देवानुचरस्य वाचं मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच।
धेन्वा तदध्यासितकातराक्ष्या निरीक्ष्यमाणः सुतरां दयालुः ॥५२॥

(अन्वयः) मनुष्यदेवः, देवानुचरस्य, वाचं, निशम्य, तदध्यासितकातराक्ष्या, धेन्वा, निरीक्ष्यमाणः, (अतः) सुतरां, दयालुः, पुनः, अपि, उवाच ॥ ५२ ॥

(टीका) मनुष्यदेवः = राजा दिलीपः, देवानुचरस्य = शम्भुकिङ्करस्य सिंहस्य, वाचं = वाणीं "गीर्वाग्वाणी सरस्वती" इत्यमरः, निशम्य = श्रुत्वा, तदध्यासितकातराक्ष्या = सिंहाक्रमणभयचकितदृष्ट्या, धेन्वा = नन्दिन्या, निरीक्ष्यमाणः = अवलोक्यमानः, दिलीपः, सुतरां = अत्यन्तं, दयालुः = कृपालुः 'सन्' पुनरपि = भूयोऽपि, उवाच = जगाद ॥ ५२ ॥

(समासः) मनुष्याणां देवो मनुष्यदेवः। अनुचरतीत्यनुचरः, देवस्यानुचरो देवानुचरस्तस्य। तेनाध्यासितं तदध्यासितं तेन कातरे अक्षिणी यस्याः सा तया। दयाशीलो दयालुः ॥ ५२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) मनुष्यदेवेन.........निरीक्ष्यमाणेन.........दयालुना पुनः अपि ऊचे ॥ ५२ ॥

(सरलार्थः) सिंहस्य वचनमाकर्ण्य सा धेनुः "अयं ... परित्यज्य गमिष्यति उत मोचयिष्यति" इति कातरनयनाभ्यां ... सादरम् अवलोकयामास, सोऽपि सिंहं पुनरब्रवीत् ॥ ५२ ॥

(भावार्थ) राजा दिलीप महादेवजीके सेवक का यह ... सुनकर उसके आक्रमण से डरे हुए आँखोंवाली नन्दिनी को ... हुआ फिर भी बोला ॥ ५२ ॥

क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः ।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा ॥५३॥

(अन्वयः) क्षतात्, त्रायते, इति उदग्रः, क्षत्रस्य, शब्दः भुवनेषु, रूढः, (अस्ति) तद्विपरीतवृत्तेः, (क्षत्रस्य मम) ... किं, वा, उपक्रोशमलीमसैः, प्राणैः, 'किम्' (अस्ति) किल ॥ ५३ ॥

(टीका) क्षतात् = नाशात्, त्रायते = रक्षति, इति = व्युत्पत्त्या उदग्रः = उन्नतः, क्षत्रस्य = क्षत्रियवर्णस्य, शब्दः = वाचकः क्षत्रियवर्ण वाचक क्षत्रशब्द इति यावत् "शास्त्रे शब्दस्तु वाचकः" इत्यमरः भुवनेषु = लोकेषु, रूढः = प्रसिद्धः, 'अस्ति', तद्विपरीतवृत्तेः = ... शब्दविरुद्धव्यापारस्य क्षतात् त्राणमकुर्वतः 'क्षत्रस्य मम,' राज्येन, किं, अस्ति = राज्येन मम किमपि प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः, वा = अथवा, उपक्रोशमलीमसैः = निन्दामलिनैः "उपक्रोशो जुगुप्सा च कुत्सा निन्दा च गर्हणे" इत्यमरः, प्राणैः = असुभिः, किम् = निन्दितस्य जीवनमपि व्यर्थमेवेत्यर्थः ॥ ५३ ॥

(समासः) तस्माद् विपरीता तद्विपरीता, तद्विपरीता वृत्तिर्यस्य सः तस्य । उपक्रोशेन मलीमसाः उपक्रोशमलीमसास्तैः ॥ ५३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) क्षतात्..............इति उदग्रेण क्षत्रस्य शब्देन..........रूढेन.................अभूयत ॥ ५३ ॥

(सरलार्थः) हे सिंह ! स एव पुरुषो लोकप्रशंसाम् अर्हति यः स्वकर्तव्यमाचरन् आत्मानमुत्कर्षं नयति । वयञ्च लोके "क्षत्राः" इति व्यवह्रियामहे, क्षताद् नाशात् प्राणिनो रक्षणमेवास्माकं स्वकं कर्म्म । तद्यदि प्रत्यक्षं हन्यमानेयं धेनुर्मयेदानीं न रक्ष्यते तर्हि लोको मां किं वदिष्यन्ति, कियती च मे निन्दा लोके भविष्यति तथा च सति मे जीवनं राज्यञ्च व्यर्थमेव भवेत् ॥ ५३ ॥

(भावार्थ) क्षत्रिय शब्द का शब्दार्थ "आपत्ति से रक्षा करने वाला" ऐसा संसार में प्रसिद्ध है, इसलिये क्षत्रिय होकर मैं इसके विरुद्ध आचरण करता हुआ अपने सामने गौ का मारा जाना नहीं सह सकता, ऐसा यदि हो जाय तो इस राज्य से अथवा लोकनिन्दा से मलिन हुए प्राणों से भी कोई लाभ नहीं समझता ॥ ५३ ॥

कथं नु शक्योऽनुनयो महर्षेर्विश्राणनाच्चान्यपयस्विनीनाम् ।
इमामनूनां सुरभेरवेहि रुद्रौजसा तु प्रहृतं त्वयास्याम् ॥५४॥

(अन्वयः) अन्यपयस्विनीनां विश्राणनात्, च, महर्षेः, अनुनयः, कथं, नु, शक्यः, (अस्ति) (हि) इमां, (धेनुं) सुरभेः, अनूनाम्, अवेहि, त्वया, तु, अस्यां रुद्रौजसा, प्रहृतम् ॥ ५४ ॥

(टीका) अन्यपयस्विनीनां = अन्यधेनूनां, विश्राणनात् = दानात्, महर्षेः = वसिष्ठस्य, अनुनयः = क्रोधापनयः, कथं नु = केन प्रकारेण वा, शक्यः = पारणीयः, 'अस्ति' 'यतः' इमां = नन्दिनीं, सुरभेः = कामधेनोः, अनूनां = अन्यूनाम्, अवेहि = विद्धि, त्वया = भवता, "तु" अस्यां = धेनौ, रुद्रौजसा = महेश्वरतेजसा, "ओजो दीप्तौ बले स्रोते इन्द्रिये निम्नगान्तरे । तेजः प्रभावदीप्तौ च" इत्यमरः, प्रहृतं = प्रहारः कृतः, न तु स्वतेजसा ॥ ५४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अन्य०............अनुनयेन कथं शक्येन "भूयेत" प्रहृतेन अभूयत ॥ ५४ ॥

(सरलार्थः) यच्च त्वयोक्तम् "अथैकधेनोः" इत्यादि तदपि न युक्तम् । अन्यासां गवां प्रदानेन महर्षेस्तदैव कोपोऽपनेतुं शक्यते यदा अन्या अपि एतादृश्य एव भवेयुः । इयञ्च न केवलं दुग्धमेव ददाति परं ऋषिर्यद्यद् इच्छति तत्सर्वमेवैषा सततं वितरति । अतो नास्याः स्थानेऽन्या दातुं शक्यते । त्वया चास्या उपरि रुद्रप्रभावेणैव प्रहारः कृतः ॥५४॥

(समासः) अन्याः पयस्विन्यः अन्यपयस्विन्यस्तासाम् । रुद्रस्य ओजः रुद्रौजाः तेन ॥ ५४ ॥

(भावार्थ) यह नन्दिनी कामधेनु के समान है इसलिये अन्य गौओं के देनेसे मुनि वसिष्ठ का क्रोध किस प्रकार शान्त हो सका है? इस पर तेरा आक्रमण शिवजी केही प्रताप से हुआ है ॥ ५४ ॥

सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण न्याय्या मया मोचयितुं भवत्तः ।
न पारणा स्याद्विहता तवैवं भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियार्थः ॥५५॥

(अन्वयः) मया, स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण, सा, इयं, (गौः) भवतः मोचयितुं, न्याय्या, (अस्ति) एवं, तव, पारणा, विहता, न स्यात् मुनेः, क्रियार्थः, च, अलुप्तः, भवेत् ॥५५॥

(टीका) मया, स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण = स्वशरीरसमर्पणमूल्येन सा = पूर्वोक्ता, इयं = पुरोवर्तिनी गौः, भवतः = त्वत्तः मोचयितुं = त्याजयितुं, न्याय्या = उचिता, अस्ति, एवम् = मया स्वदेहे तुभ्यमुपहारीकृते सति, तव = ते, पारणा = व्रतान्तभोजनं, विहता = नष्टा, न स्यात् = न भवेत्, मुनेः = वसिष्ठस्य, क्रियार्थः = होमादिप्रयोजनं, न अलुप्तः = अप्रतिहतः, भवेत् ॥ ५५ ॥

(समासः) निष्क्रीयते = प्रत्याह्रियतेऽनेनेति निष्क्रयः, स्वस्य देहः स्वदेहस्तस्यार्पणं स्वदेहार्पणं, तदेव निष्क्रयस्तेन । न्यायादनपेता न्याय्या । क्रियैवार्थः क्रियार्थः । न लुप्त इत्यलुप्तः ॥ ५५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) ...मया अनया न्याय्यया "भूयते" एवं तव पारणया विहतया न भूयेत मुनेः क्रियार्थेन च अलुप्तेन भूयेत ॥५५॥

(सरलार्थः) अतः हे सिंह ! एतस्याः गोः स्थाने तुभ्यमिदं शरीरमुपहरामि । स्वप्राणव्ययेनापीयं गौर्मयावश्यं रक्षणीया । एवं कृते तव व्रतान्तभोजनं विहतं न भवेत् । गुरोर्वसिष्ठस्यापि अग्निहोत्रादिक्रिया विहता न स्यात् ॥ ५५ ॥

(भावार्थ) हे सिंह ! अपने शरीर को देकर इस नन्दिनी को आप से रक्षा करना हमें उचित है ऐसा करने से आपका व्रतान्त भोजन (पारण) और मुनि वसिष्ठ का अग्निहोत्रादि कर्म ये दोनों ही लुप्त नहीं हो सकेंगे ॥ ५५ ॥

भवानपीदं परवानवैति महान् हि यत्नस्तव देवदारौ ।
स्थातुं नियोक्तुर्नहि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन ॥५६॥

(अन्वयः) परवान् भवान्, अपि, इदम्, अवैति, हि, देवदारौ तव महान्, यत्नः, रक्ष्यं, विनाश्य, स्वयं, अक्षतेन (सता) नियोक्तुः, अग्रे, स्थातुं, न, शक्यम् ॥ ५६ ॥

(टीका) परवान् = पराधीनः, "परतन्त्रः पराधीनः परवान्नाथवानपि" इत्यमरः, भवानपि, इदं = वक्ष्यमाणं वचनम्, अवैति = जानाति, हि = यस्मात्कारणात्, देवदारौ = देवदारुरक्षणे, तव = ते

महान् = अधिकः, यत्नः = प्रयत्नः, 'अस्मात्कारणात्' रक्ष्यं = रक्षणीयं वस्तु, विनाश्य = विनाशं प्रापय्य, स्वयम्, अक्षतेन = अव्रणेन 'सता' नियोक्तुः = नियोजकस्य स्वामिनः, अग्रे = सम्मुखे, स्थातुं = स्थितिं कर्तुं, नहि शक्यम् = पारणीयं नहि ॥ ५६ ॥

(समासः) परः अस्य नियोक्तृत्वेनास्तीति परवान् । रक्षितुं योग्यं रक्ष्यं । नियोजयतीति नियोक्ता ॥ ५६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) महता यत्नेन "भूयते" परवता भवता अवेयते, स्वयम् अक्षतः (कश्चिदपि न स्थातुं शक्नोति) ॥ ५६ ॥

(सरलार्थः) किमन्यत्, स्वाम्यधीनो भवानपीदं जानात्येव, यत् सेवकः स्वकं शरीरं सम्यगभिरक्ष्य स्वीयां काञ्चन हानिम् असोढ्वा स्वामिनो वस्तु नाशयेच्चेत्तर्हि स लज्जया दण्डभयेन च स्वामिनोऽग्रे स्थातुं न शक्नोति । यद्येवं नोचेत् तर्हि त्वमपि एतस्य देवदारोः रक्षायां एतावान् प्रयत्नवान् नाभविष्यः ॥५६॥

(भावार्थ) सेवक को अपने, शरीर की रक्षाकर मालिक की वस्तु, नष्ट कर मालिक के सामने उपस्थित होना अत्यन्त अनुचित है ॥५६॥

किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं यशःशरीरे भव मे दयालुः ।
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु ॥५७॥

(अन्वयः) किम्, अपि, अहं, चेत्, तव अहिंस्यः, मतः, (अस्मि), (तर्हि) (त्वं) मे, यशःशरीरे, दयालुः, भव, (यतः) एकान्तविध्वंसिषु, भौतिकेषु, पिण्डेषु, मद्विधानाम्, अनास्था, खलु, ॥

(टीका) किमपि = किंवा, अहं, चेत् = यदि, तव = ते, अहिंस्यः = अवध्यः, मतः = ईप्सितः 'अस्मि' तर्हि, त्वं, मे = मम, यशःशरीरे = कीर्तिरूपवपुषि, दयालुः = कृपालुः, भव, 'यतः' एकान्तविध्वंसिषु = अवश्यविनाशिषु, भौतिकेषु = पृथिव्यादिपञ्चभूतविकारेषु, पिण्डेषु = शरीरेषु, मद्विधानाम् = मादृशानाम्, अनास्था = अनपेक्षा (अस्ति) खलु ॥५७॥

(समासः) हिंसितुं योग्यो हिंस्यः, न हिंस्योऽहिंस्यः । यशः एव शरीरं यशःशरीरं, तस्मिन् । एकान्तं विध्वंसिन एकान्तविध्वंसिनस्तेषु ॥५७॥

"भूयते" "[illegible]" मे [illegible] [illegible] [illegible] ....
[illegible] भूयते ॥५७॥

(सरलार्थः) यदि नाम [illegible] हेतुना [illegible] [illegible]
तदा त्वं मे [illegible] [illegible] [illegible], मे यशो [illegible] ॥५७॥

(भावार्थ) यदि तू मुझे [illegible] [illegible] हो तो इस शरीर
[illegible] । एक दिन इस शरीर का विनाश होनेही वाला है ॥

सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्वृत्तः स नौ संगतयोर्वनान्ते ।
तद्भूतनाथानुग ! नार्हसि त्वं सम्बन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम् ॥५८

(अन्वयः) (जनाः) आभाषणपूर्वं, सम्बन्धम्, आहुः
(सम्बन्धः) वनान्ते, संगतयोः, नौ, (आवयोः) वृत्तः,
हे भूतनाथानुग, त्वं, सम्बन्धिनः, मे, प्रणयं विहन्तुं, न, अर्हसि ॥

(टीका) (जनाः) सम्बन्धं = सख्यं, आभाषणपूर्वं = [illegible]
कारणम्, आहुः = कथयामासुः, सः = सम्बन्धः, वनान्ते = [illegible]
सङ्गतयोः = मिलितयोः, नौ = आवयोः, वृत्तः = सञ्जातः, तत् = त[illegible]
त्कारणात्, हे भूतनाथानुग ! हे शिवानुचर, त्वं, मे = मम, स[illegible]
न्धिनः = प्रणयिनः, प्रणयं = याञ्चां, विहन्तुं = नाशयितुं, नार्हसि =
योग्योऽसि ॥५८॥

(समासः) आभाषणं पूर्वं यस्य सः तं । वनस्य अन्तः [illegible]
न्तस्तस्मिन् । भूतनाथमनुगच्छतीति भूतनाथानुगस्तत्सम्बुद्धौ ॥५८

(वाच्यपरिवर्तनम्) आभाषणपूर्वः सम्बन्धः जनैः उच्यते [illegible]
......वृत्तम्, तत् हे भूतनाथानुग ! त्वया मे सम्बन्धिनः प्रण[illegible]
विहन्तुं न अर्ह्यते ॥५८॥

(सरलार्थः) मैत्रीकरणे प्रथमम् आलाप एव हेतुः, सच आला[illegible]
आवयोर्वनमध्ये जात एव, अधुना च आवां सुहृदौ भवावः । अत[illegible]
सुहृदो मे प्रार्थना त्वया न विफलीकर्तव्या ॥५८॥

(भावार्थ) सम्बन्ध बातचीत के द्वारा ही हुआ करता है, व[illegible]
हम दोनों का वन में हो चुका है इसलिए आपको मुझ सम्बन्धी क[illegible]
प्रार्थना उल्लंघन करना उचित नहीं है ॥५८॥

तथेति गामुक्तवते दिलीपः सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः ।
सन्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत्पिण्डमिवामिषस्य ॥५९॥

(अन्वयः) सद्यः, प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः, सः दिलीपः, तथा इति, गाम्, उक्तवते, हरये, न्यस्तशस्त्रः, (सन्) आमिषस्य, पिण्डम्, इव, स्वदेहम्, उपानयत् ॥५९॥

(टीका) सद्यः = तत्क्षणे, प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः = प्रतिबन्धमुक्तभुजः, "भुजबाहू प्रवेष्टो दोः" इत्यमरः, सः = पूर्वोक्तः, दिलीपः = दिलीपनामको भूमिपः, तथा इति = एवमस्त्विति 'अङ्गीकारसूचिकां" गां = वाणीं, उक्तवते, = कथितवते, हरये = सिंहाय, न्यस्तशस्त्रः = त्यक्तायुधः, 'सन्' "आयुधं तु प्रहरणं शस्त्रमस्त्रमथास्त्रियौ" इत्यमरः, आमिषस्य = मांसस्य, "पिशितं तरसं मांसं पललं क्रव्यमामिषम्" इत्यमरः, पिण्डमिव = ग्रासमिव, स्वदेहं = निजशरीरम्, उपानयत् = उपहाररूपेण समर्पितवान् ॥५९॥

(समासः) प्रतिष्टम्भाद् विमुक्तो बाहुर्यस्य सः। न्यस्तानि शस्त्राणि येन सः। स्वस्यात्मनो देहः स्वदेहस्तम् ॥५९॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुना तेन दिलीपेन "तथा इति" गाम् उक्तवते हरये न्यस्तशस्त्रेण "सता" आमिषस्य पिण्डः इव स्वदेहः उपानीयत ॥ ५९ ॥

(सरलार्थः) दिलीपस्य एतावता वादेन पराजितः सिंहः तथास्त्विति दिलीपप्रार्थनामङ्गीचकार। तत्क्षण एव तस्य बाहुः प्रतिबन्धरहितो जातः। दिलीपोऽपि स्वीयां प्रतिज्ञाम् अनुस्मरन् शस्त्रादिकमेकतः परित्यज्य स्वीयं शरीरं सिंहस्याग्रे न्यपातयद् ॥५९॥

(भावार्थ) ऐसाही हो इस प्रकार वचन कहते हुए सिंह के निमित्त, बन्धन से खुली बाँहवाले और शस्त्र त्यागे हुए राजा दिलीप ने अपना शरीर उसी समय मांस के पिण्ड के समान अर्पण कर दिया ॥ ५९ ॥

तस्मिन्क्षणे पालयितुः प्रजानामुत्पश्यतः सिंहनिपातमुग्रम् ।
अवाङ्मुखस्योपरि पुष्पवृष्टिः पपात विद्याधरहस्तमुक्ता ॥ ६० ॥

(अन्वयः) तस्मिन्, क्षणे, उग्रं, सिंहनिपातम्, उत्पश्यतः, अवाङ्मुखस्य, प्रजानाम्, पालयितुः, उपरि, विद्याधरहस्तमुक्ता पुष्पवृष्टिः, पपात ॥६०॥

(टीका) तस्मिन् क्षणे = सिंहाक्रमणसमये, उग्रं =

(सरलार्थः) अथ राजा दिलीपः "हे पुत्र ! उत्तिष्ठ" इति सुधासममधुरां वाणीमाकर्ण्य उदतिष्ठत् । उत्थाय च पुरतः दुग्धं स्रवन्तीं मातरमिव नन्दिनीम् अवलोकयत् ॥ ६१ ॥

(भावार्थः) हे पुत्र उठो ऐसा अमृतमय वचन सुनकर उठते ही राजा दिलीप ने नन्दिनी को देखा सिंह को नहीं देखा ॥ ६१ ॥

तं विस्मितं धेनुरुवाच साधो मायां मयोद्भाव्य परीक्षितोऽसि ।
ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः ॥६२॥

(अन्वयः) धेनुः, विस्मितं, तम्, उवाच, साधो !, मया, मायाम्, उद्भाव्य, (त्वं) परीक्षितः, असि, ऋषिप्रभावात्, मयि, अन्तकः, अपि, प्रहर्तुं, प्रभुः, न, (अस्ति) अन्यहिंस्राः, किमुत, (स्युः) ॥६२॥

(टीका) धेनुः = नन्दिनी, विस्मितं = आश्चर्यम् अधिगतं, तं = दिलीपं, उवाच = उक्तवती, साधो ! मया, मायां = शाम्बरीं, "कपटमित्यर्थः" (इन्द्रजाल) "स्यान्माया शाम्बरी, मायाकारस्तु प्रतिहारकः" इत्यमरः, उद्भाव्य = रचयित्वा, "उत्पाद्य" त्वं, परीक्षितोऽसि = कृतपरीक्षोऽसि, ऋषिप्रभावात् = वसिष्ठर्षिसामर्थ्यात्, मयि = ममोपरि, अन्तकोऽपि = यमराजोऽपि, प्रहर्तुं = प्रहारं कर्तुं, प्रभुः = समर्थः, नास्ति, अन्यहिंस्राः = अन्यघातुकाः सिंहादयः, किमुत = कथं समर्थाः स्युः ॥ ६२ ॥

(समासः) ऋषेः प्रभावस्तस्मात् । अन्ये च ते हिंस्राश्च ॥ ६२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) धेन्वा विस्मितः सः ऊचे, हे साधो ! अहं त्वां परीक्षितवती ···· अन्तकेनापि प्रभुणा न "भूयते" ।

(सरलार्थः) सहसा देहोपरि पुष्पवृष्ट्या, सिंहस्य चानवलोकनेन परं विस्मयमापन्नं दिलीपं सा धेनुरुवाच । हे परोपकारिन् ! मयैव मायया कपटसिंहमुत्पाद्य तव भक्तेः परीक्षा कृता, तव गुरोः प्रभावाद् यमोऽपि मयि प्रहर्तुं न समर्थः। अन्येषां हिंस्रजन्तूनां तु कथैव का॥६२॥

(भावार्थः) आश्चर्य में आये हुये राजा को नन्दिनी ने कहा "हे साधो ! मैंनेही माया रचकर तेरी परीक्षा ली है। मुनि के प्रताप से मुझमें प्रहार करने को यम भी समर्थ नहीं है फिर और हिंसकों की क्या शक्ति है, कि वे आक्रमण करें ॥ ६२ ॥

भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीतास्मि ते पुत्र ! वरं वृणीष्व ।
न केवलानां पयसां प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम् ॥६२

(अन्वयः) हे पुत्र ! गुरौ, भक्त्या, मयि, अनुकम्पया, च (अहम्) ते, प्रीता, अस्मि, (त्वम्) वरं, वृणीष्व, (त्वम्) मां केवलानां, पयसां, प्रसूतिं, न, अवेहि, (किन्तु) प्रसन्नां (मां कामदुघां, (अवेहि) ॥ ६२ ॥

(टीका) हे पुत्र = सुत ! गुरौ = गुरुविषये, भक्त्या = अनुरागेण, मयि = मद्विषये, अनुकम्पया = कृपया, च, "कृपा दयानुकम्पा स्यात्" इत्यमरः, अहं, ते = तवोपरि, प्रीतास्मि = प्रसन्नाऽस्मि त्वं, वरं = वरणीयमर्थं, "पुत्ररूपमित्यर्थः" वृणीष्व = याचस्व "गोः पयोदाने सामर्थ्यं न तु वरदान इत्याशङ्क्याह" मां, केवलानां पयसां = दुग्धानां, प्रसूतिं = उत्पादयित्रीं, नावेहि = न जानीहि, किन्तु प्रसन्नां = सन्तुष्टां, मां, कामदुघां = मनोरथपूरयित्रीम् अवेहीति शेषः ॥ ६२ ॥

(समासः) कामान् दोग्धीति कामदुघा तां कामदुघाम् ॥ ६२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) हे पुत्र !······प्रीतया "भूयते" त्वया वरः व्रियतां "त्वया" अहं केवलानां पयसां प्रसूतिः न अवेयै किन्तु प्रसन्ना अहं कामदुघा अवेयै ॥ ६२ ॥

(सरलार्थः) पुत्र ! गुरौ तव दृढां भक्तिम् अवलोक्य अहं परं प्रीताऽस्मि अतस्त्वं मत्तः वरणीयमर्थं वृणीष्व, वरं देवा एव ददति नतु गावस्तेषां केवलं पयोदान एव सामर्थ्यमिति न शङ्कनीयम् अहं सन्तुष्टा भक्तानां सकलं मनोरथमपि पूरयितुं शक्नोमि ॥ ६२ ॥

(भावार्थ) गुरु में भक्ति देखकर और मेरे ऊपर दया करने से मैं तुझपर प्रसन्न हूँ, इसलिए हे पुत्र ! तू वर माँग, मुझे निरी दूध देनेवाली न समझ, किन्तु प्रसन्न होने पर मैं मनोरथ को भी पूरा करने वाली हूँ ॥ ६२ ॥

ततः समानीय स मानितार्थी हस्तौ स्वहस्तार्जितवीरशब्दः ।
वंशस्य कर्तारमनन्तकीर्तिं सुदक्षिणायां तनयं ययाचे ॥ ६४ ॥

(अन्वयः) ततः, मानितार्थी, स्वहस्तार्जितवीरशब्दः, सः,

(राजा) हस्तौ, समानीय, वंशस्य, कर्तारम्, अनन्तकीर्त्तिं, तनयं, सुदक्षिणायां ययाचे ॥ ६४ ॥

(टीका) ततः = "वरं वृणीष्व" इति वचनानन्तरं, मानितार्थी = सत्कृतयाचकः, स्वहस्तार्जितवीरशब्दः = निजभुजबलोपार्जितवीरख्यातिः, सः = दिलीपः, हस्तौ = करौ, "बलिहस्तांशवः कराः" इत्यमरः, समानीय = संयोज्य, "अञ्जलिं बद्ध्वा", वंशस्य = कुलस्य, "वंशोऽन्ववायः सन्तानः" इत्यमरः, † कर्तारम् = प्रवर्तयितारम्, अनन्तकीर्त्तिं = विपुलयशसं, तनयं = पुत्रं, सुदक्षिणायां = सुदक्षिणाभिधायां निजाङ्गनायां, ययाचे = प्रार्थयामास ॥ ६४ ॥

(समासः) मानिता अर्थिनो येन सः। स्वस्य हस्ताभ्याम् अर्जितो वीर इति शब्दो येन सः। न अन्तो यस्याः सा अनन्ता, अनन्ता कीर्तिर्यस्य सः तमनन्तकीर्तिम् ॥ ६४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) ततः मानितार्थिना स्वहस्तार्जितवीरशब्देन तेन हस्तौ समानीय वंशस्य कर्ता अनन्तकीर्तिः तनयः सुदक्षिणायां ययाचे ॥ ६४ ॥

(सरलार्थः) ततः नन्दिन्या वरग्रहणार्थम् अभिप्रेरितो दिलीपः कुलप्रवर्तकं कीर्तिमन्तं पुत्रं वरत्वेन प्रार्थितवान् ॥ ६४ ॥

(भावार्थ) तब राजा दिलीप ने वंश चलाने वाला अनन्तकीर्ति पुत्र माँगा ॥ ६४ ॥

संतानकामाय तथेति कामं राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा।
दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं पुत्रोपभुङ्क्ष्वेति तमादिदेश ॥ ६५ ॥

(अन्वयः) सा, पयस्विनी, (गौः) सन्तानकामाय, राज्ञे, कामं, तथा, इति, प्रतिश्रुत्य, हे पुत्र ! मदीयं, पयः, पत्रपुटे, दुग्ध्वा, (त्वम्) उपभुङ्क्ष्व, इति, तं, (दिलीपम्) आदिदेश ॥ ६५ ॥

(टीका) सा = पूर्वोक्ता, पयस्विनी = नन्दिनी, सन्तानकामाय = पुत्रकामाय, राज्ञे = भूपाय दिलीपाय, कामं = वरं, तथा इति = एवमस्त्विति, प्रतिश्रुत्य = प्रतिज्ञाय, हे पुत्र ! मदीयं = मत्सम्बन्धि, पयः =

† यस्य नाम्ना दिलीपस्य वंशः प्रचलिष्यति। अतएव दिलीपपुत्रस्य रघोः नाम्ना सकल एव सूर्यवंश इति जगति विश्रूयते, काव्यञ्च इदं रघुवंशम्, ...

दुग्धं, पत्रपुटे = पलाशनिर्मिते द्रोणे, दुग्ध्वा, उपभुङ्क्ष्व = पिब, इति = एवं, तं = दिलीपं, आदिदेश = आज्ञापयामास ॥ ६५ ॥

(समासः) पयो विद्यते यस्याः सा । सन्तानमकामयत इति सन्तानकामस्तस्मै । काम्यत इति कामस्तं । मम इदं मदीयम् ॥ ६५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तया पयस्विन्या "त्वया उपभुज्यताम्" इति सः आदिदिशे ॥ ६५ ॥

(सरलार्थः) सा नन्दिनी पुत्राभिलाषिणे राज्ञे दिलीपाय एवमस्त्विति वरं दत्तवती तदुपायभूतं स्वीयं पयः पलाशपुटके दुग्ध्वा पातुम् आदिदेश ॥ ६५ ॥

(भावार्थ) पुत्र को चाहने वाले राजा दिलीप को "वरदान" देकर " हे पुत्र मेरे दूध को पत्ते के दोने में दुहकर पीलो " ऐसी आज्ञा उस नन्दिनी ने उसको दी ॥ ६५ ॥

वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेषमृषेरनुज्ञामधिगम्य मातः ।
औधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः ॥६६॥

(अन्वयः) मातः, वत्सस्य, होमार्थविधेः, च, शेषम्, तव, औधस्यम्, ऋषेः, अनुज्ञाम्, अधिगम्य, रक्षितायाः, उर्व्याः, षष्ठांशम्, इव, उपभोक्तुम्, इच्छामि ॥ ६६ ॥

(टीका) हे मातः !, वत्सस्य = वत्सपानस्य, होमार्थविधेः = अग्निहोत्रानुष्ठानस्य, च, शेषम् = एतद्द्वयकार्यसम्पादनानन्तरम् अवशिष्टं, तव = ते, औधस्यं, क्षीरं, "दुग्धमिति यावत्" रक्षितायाः = परिपालितायाः, उर्व्याः = वसुन्धरायाः, षष्ठांशं = षष्ठभागम्, इव = यथा, "राजा हि फलमाप्नोति रक्षितायाः क्षितेरपि" इति मनुस्मरणात्, ऋषेः = वसिष्ठस्य, अनुज्ञाम् = आज्ञाम्, "आदेशमिति यावत्" अधिगम्य = प्राप्य, उपभोक्तुं = पातुं, इच्छामि = वाञ्छामि ॥ ६६ ॥

(समासः) होम एवार्थो होमार्थस्तस्य विधिस्तस्य । ऊधसि भवमौधस्यम् ॥ ६६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) हे मातः "मया"......इष्यते ॥ ६६ ॥

(सरलार्थः) राजा च ताम्प्रत्यवदत्—हे मातः ! यथाहं पृथिवीं पालयन् उचितं षष्ठांशमेव करं स्वोपभोगार्थम् आददामि तथैव वत्सपानाद् गुरोरग्निहोत्राच्च अवशिष्टं तव दुग्धं गुरोराज्ञां गृहीत्वैव पास्यामि ॥ ६६ ॥

(भावार्थ) हे माँ ! मैं रक्षा किये हुए पृथ्वी के छठे भाग के समान बछड़े से और हवनक्रिया से बचे तेरे दूध को ऋषि की आज्ञा लेकर ग्रहण करना चाहता हूँ ॥ ६६ ॥

इत्थं क्षितीशेन वसिष्ठधेनुर्विज्ञापिता प्रीततरा बभूव ।
तदन्विता हैमवताच्च कुक्षेः प्रत्याययावाश्रममश्रमेण ॥ ६७ ॥

(अन्वयः) क्षितीशेन इत्थं विज्ञापिता, वसिष्ठधेनुः, प्रीततरा बभूव, तदन्विता, (सती) हैमवतात्, कुक्षेः, अश्रमेण, आश्रमं, च, प्रत्याययौ ॥ ६७ ॥

(टीका) क्षितीशेन = भूमिपालेन, इत्थं = पूर्वोक्तप्रकारेण, विज्ञापिता = निवेदिता, वसिष्ठधेनुः = वसिष्ठनन्दिनी, प्रीततरा = अतिसन्तुष्टा, बभूव = जाता, तदन्विता = दिलीपयुक्ता, 'सती' हैमवतात् = हिमवत्सम्बन्धिनः, कुक्षेः = कन्दरात्, अश्रमेण = अनायासेन, आश्रमं = निवासस्थानं, च प्रत्याययौ = आजगाम ॥६७॥

(समासः) क्षियन्ति (निवसन्ति) अस्याम् इति क्षितिः, तस्याः ईशः क्षितीशस्तेन । वसिष्ठस्य धेनुरिति वसिष्ठधेनुः । तेन अन्विता तदन्विता । हिमवतोऽयं हैमवतस्तस्मात् । न श्रमोऽश्रमस्तेन ॥६७॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) क्षितीशेन इत्थं विज्ञापितया वसिष्ठधेन्वा प्रीततरया बभूवे, तदन्वितया हैमवतात् कुक्षेः अश्रमेण आश्रमः प्रत्यायये ॥६७॥

(सरलार्थः) इति राज्ञा दिलीपेन सविनयम् आवेदिता नन्दिनी पूर्वापेक्षयाधिकं सन्तुष्टा बभूव । पश्चाच्च हिमालयकन्दरातः सुखेन तेन साकं निजाश्रममाजगाम ॥६७॥

(भावार्थ) इस प्रकार राजा की प्रार्थना से अति प्रसन्न मुनि वसिष्ठ की धेनु दिलीप के साथ ही हिमालय की कन्दरा से आश्रम के प्रति लौटी ॥६७॥

तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य ।
प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव ॥६८॥

(अन्वयः) प्रसन्नेन्दुमुखः, नृपाणां, गुरुः, प्रहर्षचिह्नानुमितं, तस्याः, प्रसादं, पुनरुक्तया, इव, वाचा, निवेद्य, प्रियायै, शशंस ॥६८॥

(टीका) प्रसन्नेन्दुमुखः = निर्मलचन्द्राननः, नृपाणां = राज्ञां,

गुरुः = शासकः दिलीपः, प्रहर्षचिह्नानुमितं = [illegible],
तस्याः = नन्दिन्याः, प्रसादं = वरप्रदानरूपम् अनुग्रहं, पुनरुक्तयेव =
भूयः कथितयेव, वाचा = वाण्या, गुरवे = गुरवे वसिष्ठाय, निवेद्य =
विज्ञाप्य, "[illegible]" प्रियायै = सुदक्षिणायै, शशंस = कथयामास ॥६८॥

(समासः) प्रसन्नश्चासाविन्दुश्च प्रसन्नेन्दुः, स इव मुखं यस्य
सः । प्रकृष्टः हर्षः प्रहर्षः, तस्य चिह्नानि प्रहर्षचिह्नानि तैरनुमितस्तम् [illegible]
भीगतीति प्रिया तस्यै ॥६८॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) प्रसन्नेन्दुमुखेन नृपाणां गुरुणा.............
शशंसे ॥६८॥

(सरलार्थः) स्वमनोरथलाभात् शरच्चन्द्र इव सुन्दरास्यः
दिलीपः वसिष्ठसमीपमागत्य धेनोः सकाशात्प्राप्तं वरं प्रथमं गुरुं
तत्पश्चात् सुदक्षिणां च कथयामास सुदक्षिणावसिष्ठौ तु राज्ञः
कथनात्प्राक् तस्य प्रसन्नमाननमवलोक्यैव सर्वम् अनुमेनाम् ॥६८॥

(भावार्थ) राजा दिलीप ने हर्ष के चिन्हों से अनुमान होनेवाले
नन्दिनी से प्राप्त वर को गुरु वसिष्ठ को निवेदन कर अपनी प्रिया से
कहा ॥६८॥

स नन्दिनीस्तन्यमनिन्दितात्मा सद्वत्सलो वत्सहुतावशेषम् ।
पपौ वसिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः शुभ्रं यशो मूर्तमिवातितृष्णः ॥६९॥

(अन्वयः) अनिन्दितात्मा, सद्वत्सलः, सः (भूपतिः), वसिष्ठेन
कृताभ्यनुज्ञः, अतितृष्णः (इव) वत्सहुतावशेषम्, नन्दिनीस्तन्यं
मूर्तं, शुभ्रं, यशः, इव, पपौ ॥६९॥

(टीका) अनिन्दितात्मा = अगर्हितात्मा, अतिपरिपूतस्वभाव
इत्यर्थः, सद्वत्सलः = साधुप्रेमी, वसिष्ठेन = गुरुणा, कृताभ्यनुज्ञः =
विहिताज्ञः, सः दिलीपः, अतितृष्ण इव = अतिपिपासु इव, "तृष्णे
स्पृहापिपासे द्वे" इत्यमरः, वत्सहुतावशेषं = वत्सपानहवनावशिष्टं
नन्दिनीस्तन्यं = धेनुक्षीरं, मूर्तं = मूर्तिमत्, शुभ्रं = धवलं, यश इव =
कीर्तिरिव, पपौ = पीतवान् ॥६९॥

(समासः) न निन्दितोऽनिन्दितः, अनिन्दितः दोषस्पर्शशून्य
आत्मा यस्य सः अनिन्दितात्मा । सत्सु वत्सलः सद्वत्सलः । कृत
अभ्यनुज्ञा यस्मै सः । वत्सश्च हुतञ्च वत्सहुते, तयोः अवशेषं वत्स
हुतावशेषम् । स्तने भवं स्तन्यं, नन्दिन्याः स्तन्यं नन्दिनीस्तन्यम् ।
अतिशयिता तृष्णा = यस्य सः ॥६९॥

व्रत समाप्त करने के अनन्तर राजा को समस्त मंगलमय आशीर्वाद देकर राजा और रानी को राजधानी की ओर भेजा ॥ ७० ॥

प्रदक्षिणीकृत्य हुतं हुताशमनन्तरं भर्तुररुन्धतीं च ।
धेनुं सवत्सां च नृपः प्रतस्थे सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः ॥७१॥

(अन्वयः) नृपः, हुतं, हुताशं, भर्तुः, अनन्तरम्, अरुन्धतीं, सवत्सां, धेनुं च, प्रदक्षिणीकृत्य, सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः, सन् प्रतस्थे ॥ ७१ ॥

(टीका) नृपः = राजा दिलीपः, हुतं = दत्ताहुतिं, हुताशम् = अग्निं, भर्तुः = स्वामिनो मुनेः, अनन्तरम्, अरुन्धतीं = गुरुपत्नीं, सवत्सां = वत्ससहितां, धेनुञ्च = नन्दिनीञ्च, प्रदक्षिणीकृत्य = दक्षिणं परिक्रम्य, सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः = उत्तममङ्गलाचारादिप्रवर्द्धमान-तेजाः 'सन्' प्रतस्थे = प्रस्थितः ॥ ७१ ॥

(समासः) हुतमश्नातीति हुताशस्तं । भरतीति भर्ता तस्य। वत्सेन सहवर्तमाना सवत्सा तां। प्रगतो दक्षिणं प्रदक्षिणम्। अप्रदक्षिणं प्रदक्षिणं सम्पद्यमानं कृत्वेति प्रदक्षिणीकृत्य। सन्ति च तानि मङ्गलानि सन्मङ्गलानि, तैः उदग्रतरः प्रभावो यस्य तथाभूतः ॥७१॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) नृपेण..........सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावेण "सता" प्रतस्थे ॥ ७१ ॥

(सरलार्थः) राजादिलीपोऽपि यथाक्रमम् अग्निं, गुरुं वसिष्ठं, तत्पत्नीम् अरुन्धतीं सवत्सां धेनुञ्च प्रदक्षिणं परिक्रम्य स्वां पुरीम्प्रति प्रस्थानमकरोत्। पूज्यानाम् एतेषां परिक्रमणेन गुरोः स्वस्तिवाचनादिना च राज्ञ उत्कृष्टं तेजः प्रादुरभूत् ॥ ७१ ॥

(भावार्थ) राजा दिलीप आहुति दिये हुए अग्नि, गुरुवसिष्ठ, तथा उनकी पत्नी अरुन्धती और सवत्सा नन्दिनी को प्रदक्षिणा कर प्रस्थान करता हुआ ॥ ७१ ॥

श्रोत्राभिरामध्वनिना रथेन स धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुः ।
ययावनुद्घातसुखेन मार्गं स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन ॥७२॥

(अन्वयः) धर्मपत्नीसहितः, सहिष्णुः, सः, (भूमिपः) श्रोत्राभिरामध्वनिना, अनुद्घातसुखेन, रथेन, स्वेन, पूर्णेन, मनोरथेन, इव, ययौ ।७२॥

(टीका) धर्मपत्नीसहितः = सुदक्षिणासमन्वितः, सहिष्णुः = सहनशीलः, सः=राजा दिलीपः, श्रोत्राभिरामध्वनिना = श्रवणाह्लादकरशब्देन, अनुद्घातसुखेन = पाषाणकण्टकादिप्रतिघातरहितत्वात् सुखकरेण, रथेन = स्यन्दनेन, स्वेन = स्वकीयेन, पूर्णेन रथपक्षे :— मार्गापेक्षितसमस्तवस्तुपरिपूर्णेन, मनोरथपक्षेः—सफलताम् अधिगतेन । मनोरथेन इव = अभीप्सितेन इव, मार्गम् , = अयोध्यापुरपथं, ययौ = यातः ॥७२॥

(समासः) धर्मपत्न्या सहितः धर्मपत्नीसहितः । अभिरम्यतेऽस्मिन्निति अभिरामः, श्रोत्रयोरभिरामः, श्रोत्राभिरामः, ध्वनिर्यस्य सः तेन । उद्हन्यते इत्युद्घातः, न-उद्घातः इत्यनुद्घातः, अनुद्घातः अत एव सुखयतीति सुखस्तेन ॥७२॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) धर्मपत्नीसहितेन सहिष्णुना तेन............ मार्गः यये ॥ ७२ ॥

(सरलार्थः) सुदक्षिणया सह रथमारुह्य अयोध्याम्प्रति प्रस्थितवतो दिलीपस्य रथः मनोरथश्च समान एवासीत् । गमनमार्गे नृत्पापाणादीनां गर्तादेरभावाद् रथस्य शब्दः श्रोत्रयोः सुखदः, पुत्रप्राप्तिमनोरथस्यापि श्रवणं श्रोत्रसुखदं, स रथः महाप्रभावस्य राज्ञो दिलीपस्य इति केनापि न कुत्रचित् प्रतिहन्यतेस्म, मनोरथोऽपि साम्प्रतं वसिष्ठर्षेः प्रभावात् प्रतिबन्धरहितो जातः, रथः सामग्र्यापूर्णः, मनोरथोऽपि परिपूर्ण एव ॥ ७२ ॥

(भावार्थ) व्रतादिदुःखों को सहन करनेवाला राजा दिलीप रानी सुदक्षिणा के सहित रथ पर पूर्ण मनोरथ प्राप्त किये हुए की तरह चला ॥ ७२ ॥

तमाहितौत्सुक्यमदर्शनेन प्रजाः प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गम् ।
नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम्॥७३॥

(अन्वयः) प्रजाः, अदर्शनेन, आहितौत्सुक्यं, प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गं, नवोदयम् , तं, तृप्तिम् , अनाप्नुवद्भिः, नेत्रैः, ओषधीनां, नाथम्, इव, पपुः ॥ ७३ ॥

(टीका) प्रजाः—नागरिकाः जनाः, अदर्शनेन = प्रवासहेतुकानवलोकनेन, आहितौत्सुक्यं = जनितौत्कण्ठ्यं, प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गं = सन्तानार्थव्रतपालनेन कृशीकृतशरीरं, नवोदयं = नवाभ्युदयं,

ओषधीनां = सोमलतादीनां, नाथं = पतिञ्चन्द्रमिव स्थितं, तं = राजानं दिलीपं, तृप्तिं = सन्तोषम्, अनाप्नुवद्भिः = अप्राप्नुवद्भिः, नेत्रैः = नयनैः, पपुः = पीतवत्यः ॥ ७३ ॥

(समासः) उत्सुकस्य भावः औत्सुक्यं, आहितमौत्सुक्यं येन सः तम् । प्रजायै इति प्रजार्थं, प्रजार्थं व्रतं प्रजार्थव्रतं तेन, कर्षितमङ्गं यस्य सः तं । न आप्नुवन्ति तैः । नव उदयो यस्य सः तम् ॥ ७३ ॥

(सरलार्थः) चिराद् राज्ञोऽदर्शनेन तं द्रष्टुं नितान्तमुत्कण्ठिताः प्रजाः पुत्रप्राप्तिवराधिगमरूपं नवम् अभ्युदयम् अधिगम्य समागतं दिलीपं महता आदरेण ददृशुः । यथा स्वाः कला देवेभ्यः समर्प्य क्षीणोऽपि द्वितीयाया नवोदितश्चन्द्रः लोकानाम् आनन्दवर्धनो भवति तथैव सन्तानार्थं कृतेन व्रतेन कृशोऽपि दिलीपस्तदानीम् अशोभत एव ॥

(भावार्थ) चिरकाल के अनन्तर देखने के कारण उत्कण्ठा युक्त प्रजाजनों ने सन्तान के लिये व्रत करने से दुर्बल शरीरवाले राजा दिलीप को नवीन उदय हुए चन्द्रमा की समान बड़े आदर से अवलोकन किया ॥ ७३ ॥

पुरन्दरश्रीः पुरमुत्पताकं प्रविश्य पौरैरभिनन्द्यमानः ।
भुजे भुजङ्गेन्द्रसमानसारे भूयः स भूमेर्धुरमाससञ्ज ॥७४॥

(अन्वयः) पुरन्दरश्रीः, सः, पौरैः, अभिनन्द्यमानः, "सन्" उत्पताकं, पुरं, प्रविश्य, भुजङ्गेन्द्रसमानसारे, भुजे, भूयः, भूमेः, धुरं, आससञ्ज ॥ ७४ ॥

(टीका) पुरन्दरश्रीः = इन्द्रतुल्यलक्ष्मीकः, सः = नृपः, पौरैः = पुरवासिभिर्लोकैः, अभिनन्द्यमानः = क्रियमाणस्वागतः सन्, उत्पताकम् = उच्छ्रितध्वजं, पुरं = नगरं, प्रविश्य = प्रवेशङ्कृत्वा, भुजङ्गेन्द्रसमानसारे = सर्पराजतुल्यबले, भुजे = बाहौ, भूमेः = क्षितेः, धुरं = भारं, राज्यशासनसूत्रमित्यर्थः, भूयः = पुनः, आससञ्ज = स्थापितवान् ॥७४॥

(समासः) पुराणि दारयतीति पुरन्दरस्तस्य श्रीरिव श्रीर्यस्य सः । पुरे भवाः पौरास्तैः । अभिनन्द्यतेऽसावभिनन्द्यमानः । उद् (ऊर्ध्वीभूता) पताका यस्मिन् तत् उत्पताकं तत् । भुजाभ्यां गच्छन्तीति भुजङ्गास्तेषामिन्द्रो भुजङ्गेन्द्रस्तेन समानः सारो यस्य तस्मिन् ॥७४॥

(सरलार्थः) अथ नगरवासिभिरभिनन्द्यमानो दिलीपः राष्ट्रियपताकातोरणस्रगादिभिः सुसज्जितानि पुरवासिनां भवनान्यवलोकयन् पुरं प्रविवेश तथा मन्त्रिणां हस्ते पूर्वं समर्पितं राज्यप्रबन्धं पुनः स्वीचकार ॥ ७४ ॥

(भावार्थ) इन्द्र के समान ऐश्वर्यवाला राजा दिलीप नगरनिवासियों से सत्कृत हो नगर में प्रवेश कर सर्पराज के समान बल वाली भुजाओं पर फिर से पृथ्वी का भार धारण करता हुआ ॥७४॥

अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः
सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम्।
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी
गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावैः ॥ ७५ ॥

(अन्वयः) अथ, अत्रेः, नयनसमुत्थं, ज्योतिः, द्यौः इव, वह्निनिष्ठ्यूतम्, ऐशम्, तेजः, सुरसरित्, इव, राज्ञी, नरपतिकुलभूत्यै, गुरुभिः, लोकपालानुभावैः, अभिनिविष्टं, गर्भम्, आधत्त ॥ ७५ ॥

(टीका) अथ = राजा राज्यभारग्रहणानन्तरं, *अत्रेः = अत्रि-

*पिता सोमस्य भो विप्रा जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः।
ब्रह्मणो मानसात्पूर्वं प्रजासर्गं विधित्सतः ॥ १ ॥
अनुत्तरं नाम तपो येन तप्तं महत्पुरा।
त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम् ॥ २ ॥
ऊर्ध्वमाचक्रमे रेतस्ततः सोमत्वमीयिवत्।
नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयन्दिशः ॥ ३ ॥
तं गर्भं विधिना हृष्टा दश देव्यो दधुस्ततः।
समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन् ॥ ४ ॥
यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिशः।
ततस्ताभिः सहैवाशु निपपात वसुन्धराम् ॥ ५ ॥
पतितं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः।
रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया ॥ ६ ॥
तस्मिन्निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि।
तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसा मुनिसत्तमाः ॥ ७ ॥
तस्य संस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः।
आप्यायनाय लोकानां भावयामास सर्वतः ॥ ८ ॥

मुनेः, नयनसमुत्थं = नेत्रोत्पन्नं, ज्योतिः = चन्द्रमित्यर्थः, द्यौरिव = आकाशमिव, वह्निनिष्ठ्यूतं = अग्निप्रक्षिप्तं, ऐशं = महेशसम्बन्धि, तेजः = वीर्यं स्कन्दरूपं, सुरसरिदिव = मन्दाकिनीव, गर्भं = सुदक्षिणा नरपतिकुलभूत्यै = दिलीपकुलप्रतिष्ठार्थं, गुरुभिः = महद्भिः, लोकपालानुभावैः = इन्द्रवरुणयमकुबेरादिलोकपालतेजोभिः, मात्राभिरेव अभिनिविष्टम् = अनुप्रविष्टं, गर्भम्, आधत्त = धृतवती, "इन्द्रादमुत्वं तपनात्प्रतापं क्रोधं यमाद्वैश्रवणाच्च वित्तम्। आदाय सत्त्वञ्च निर्यान्नि नाथादादाय राज्ञः क्रियते शरीरम्" इति स्मरणात् ॥ ७४ ॥

(समासः) नयति घटपटादिकं प्रापयतीति नयनं तयोः समुत्थं। वह्निना निष्ठ्यूतं। ईशस्येदमैशं। नराणाम्पतिरिति नरपतिस्तस्य कुलं नरपतिकुलं, तस्य भूत्यै। लोकान् पालयन्तीति लोकपालास्तेषामनुभावैरिति ॥ ७५ ॥

(सरलार्थः) यथा अत्रिमहर्षेर्नेत्रोत्पन्नं चन्द्ररूपं तेजः द्युलोक

स तेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुन्धराम्।
त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणाम् ॥ ९ ॥
तस्य यत्स्रवितं तेजः पृथिवी समपद्यत।
ओषध्यस्ताः समुद्भूता याभिः सन्धार्यते जगत् ॥ १० ॥
सलब्धतेजा भगवान् संस्तवैस्तैश्च कर्मभिः।
तपस्तेपे महाभागः पद्मानां दशतीर्दश ॥ ११ ॥
ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
बीजौषधीनां विप्राणामपाञ्च मुनिसत्तमाः ॥ १२ ॥
स तत्प्राप्य महाराज्यं सोमः सौम्यवतां वरः।
समाजह्रे राजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥ १३ ॥
दक्षिणामददात्सोमस्त्रीँल्लोकानिति नः श्रुतम्।
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भो द्विजाः ॥ १४ ॥
हिरण्यगर्भो ब्रह्माऽत्रिर्भृगुश्च ऋत्विजोऽभवन्।
सदस्योऽभूद्धरिस्तत्र मुनिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ १५ ॥
सिनीवाली कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभावसुः।
कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे ॥ १६ ॥
प्राप्यावभृथमव्यग्रः सर्वदेवर्षिपूजितः।
विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन्दिशः ॥ १७ ॥

(सरलार्थः) गर्भधारणानन्तरं सुदक्षिणा अस्तङ्गन्तुमुन्मुखस्य सूर्यवंशस्य समुद्धारकं दिलीपस्य अभिलाषरूपं गर्भचिन्हं दधार। तदानीं तस्याः सख्यः चन्द्रिकाम् इव पूर्णगर्भां ताम् अवलोक्य निर्भरम् आनन्दम् अवापुः ॥ १ ॥

(भावार्थ) रानी सुदक्षिणा ने इक्ष्वाकुवंश की संतति के आदि कारण गर्भचिह्न को धारण किया ॥ १ ॥

शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन साऽलक्ष्यत लोध्रपाण्डुना ।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ॥ २ ॥

(अन्वयः) (जनैः) शरीरसादात् असमग्रभूषणा, लोध्रपाण्डुना मुखेन, "उपलक्षिता" सा (सुदक्षिणा) तनुप्रकाशेन, शशिना, विचेयतारका, प्रभातकल्पा, शर्वरी, इव, अलक्ष्यत ॥ २ ॥

(टीका) शरीरसादात् = देहकार्श्यात्, असमग्रभूषणा = परिमितालङ्कारा, "अलङ्कारस्त्वाभरणं परिष्कारो विभूषणम्" इत्यमरः, लोध्रपाण्डुना = लोध्रकुसुमसमानपाण्डुवर्णेन, मुखेन = आननेन, "वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्" इत्यमरः, "उपलक्षिता", सा = सुदक्षिणा, तनुप्रकाशेन = क्षीणकान्तिना शशिना = चन्द्रेण, "उपलक्षिता" विचेयतारका = मृग्यतारका, प्रभातकल्पा = ईषदसमाप्तप्रभाता, शर्वरीव = रात्रिरिव, अलक्ष्यत = अदृश्यत ॥२॥

(समासः) शृणाति शीर्यते वा शरीरं तस्य सादः [illegible] समग्राण्यसमग्राणि, असमग्राणि भूषणानि यस्याः सा। [illegible] लोध्रपाण्डु, तेन। प्रकाशते प्रकाशनं वा प्रकाशः, [illegible] सः तेन। विचेयास्तारकाः यस्यां सा। प्रभात[illegible] कल्पा। २॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) जनाः, [illegible] असमग्र[illegible] विचेयतारकां शर्वरीम् इव अपश्यन् ॥ २ ॥

(सरलार्थः) यथा शरीरसादात् [illegible] इयमी परिमितालङ्कारा [illegible] शरीरकार्श्यात् परिमितभूषणा [illegible]

(अन्वयः) हि, (यस्मात्) दिगन्तविश्रान्तरथः, तत्सुतः, मरुत्वान्, दिवम्, इव, भुवं, भोक्ष्यते अतः, सा, (सुदक्षिणा) अन्यरसान्, विलङ्घ्य, प्रथमं, तथाविधे, अभिलाषे, मनः, बबन्ध ॥ ४ ॥

(टीका) हि = यस्मात् कारणात्, दिगन्तविश्रान्तरथः = सर्वदिग्गतरथः, तत्सुतः = सुदक्षिणापुत्रः, मरुत्वान् = इन्द्रः, दिवमिव = स्वर्गमिव, भुवं = पृथिवीं, भोक्ष्यते = उपभोक्ष्यते, अतः = अस्मात् कारणात्, 'एव' सा = सुदक्षिणा, * अन्यरसान् = मधुराद्यन्यरसकभक्ष्याणि, विलङ्घ्य = विहाय, प्रथमं = आदौ, तथाविधे = मृद्भक्षणरूपे, अभिलाषे = इच्छायां, मनः = मानसं, "स्वान्तं हृन्मानसं मनः" इत्यमरः, बबन्ध = चकार ॥ ४ ॥

(समासः) दिशामन्ता दिगन्तास्तेषु विश्रान्तः रथो यस्य सः । तस्याः सुतस्तत्सुतः । मरुतो देवताः सन्त्यस्येति तथाभूतः । अन्ये च ते रसाश्चान्यरसास्तान् ॥ ४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) दिगन्तविश्रान्तरथेन तत्सुतेन मरुत्वता द्यौः इव भूः भोक्ष्यते, अतः तया ......बबन्धे ॥ ४ ॥

(सरलार्थः) इन्द्रो यथा स्वर्गं भुनक्ति तथैव ममापि पुत्रः सर्वासु दिक्षु अप्रतिहतरथगतिः सन् सकलां भुवं भुनक्तु इति मनसि विचार्य सुदक्षिणा गर्भावस्थायामेव गर्भस्थजन्तोः भूमिभोगरूपम् अभ्यासं कारयितुम् अन्यान् उत्तमोत्तमान् रसान् परित्यज्य मृदमेव भक्षयतिस्म ॥ ४ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे इन्द्र स्वर्ग को भोगता है वैसे ही सुदक्षिणा का पुत्र भी सम्पूर्ण पृथिवी को भोगेगा इसी कारण मानों रानी सुदक्षिणा और २ रसों को छोड़कर प्रथम मट्टीखाने की ही अभिलाषा में मन देती हुई ॥ ४ ॥

न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितं स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी ।
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृतः प्रियासखीरुत्तरकोशलेश्वरः ॥ ५ ॥

(अन्वयः) मागधी, ह्रिया, मे, किञ्चित्, (अपि) ईप्सितं, न, शंसति, (सा) केषु, वस्तुषु, स्पृहावती, (अस्ति) इति, उत्तरकोशलेश्वरः, आदृतः, (सन्) अनुवेलं, प्रियासखीः, पृच्छतिस्म ॥ ५ ॥

(टीका) मागधी = सुदक्षिणा, ह्रिया = लज्जया, "मन्दाक्षं

* मधुरादन्यरसकभक्ष्याणीत्यपि पाठान्तरम् ।

ह्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा सापत्रपान्यतः" इत्यमरः, मे = मह्यं, किं
दपि = ईषदपि, "किञ्चिदीषन्मनागल्पे" इत्यमरः, ईप्सितं = ...
न शंसति = न कथयति 'सा' केषु = किम्भूतेषु, वस्तुषु = पदा
स्पृहावती = इच्छावती, 'अस्ति', इति = इत्थं, उत्तरकोशलेश्वर
= उत्तरकोशलाधिपो दिलीपः, आदृतः 'सन्' = आदरयुक्तः सन्
अनुवेलं = प्रतिक्षणं, प्रियासखीः = सुदक्षिणासहचरीः, पृच्छति स्म
पप्रच्छ ॥ ५ ॥

(समासः) मगधस्यापत्यं स्त्री मागधी । स्पृहा विद्यते यस्
सा । ईशितुं शीलमस्येतीश्वरः, उत्तरकोशलानामीश्वरः । वेल
वेलायामित्यनुवेलं । प्रीणातीति प्रिया, तस्याः सख्यः ताः ॥ ५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) मागध्या ह्रया मे किञ्चित् न ...
"तया" केषु वस्तुषु स्पृहावत्या "भूयते" इति उत्तरको शलेश्वर
आदृतेन "सता" अनुवेलं प्रियासख्यः पृच्छयन्तेस्म ॥ ५ ॥

(सरलार्थः) गर्भिण्य अधिकं लज्जन्ते, सुदक्षिणापि सा
तथैवासीत् । गर्भावस्थायां स्त्रियः विविधानि वस्तूनि ... लषन्ति
इति राजा प्रत्यहम् अनेकवारं तस्या निकटे समागत्य तां ...ति
परं सा लज्जया किमपि न कथयति स्मेति दिलीपः प्रतिमुहूर्तं त
सखीः तदर्थं तदन्ते प्रेषयतिस्म ॥ ५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) रानी सुदक्षिणा लज्जा के कारण ...
कुछ भी नहीं कहती, वह किन वस्तुओं को चाहती है यह जान
लिये राजा दिलीप उसके सखियों को प्रतिक्षण उसके पास
करता था ॥ ५ ॥

उपेत्य सा दोहददुःखशीलतां यदेव वव्रे तदपश्यदाहृतम् ।
न हीष्टमस्य त्रिदिवेऽपि भूपतेरभूदनासाद्यमधिज्यधन्वनः ॥

(अन्वयः) सा, (सुदक्षिणा) दोहददुःखशीलताम्, उ
यद् एव, वव्रे, तत्, (एव) आहृतम्, अपश्यत्, हि (य
अधिज्यधन्वनः, अस्य, भूपतेः, त्रिदिवे, अपि, इष्टं (वस्तु) अनार
न, अभूत् ॥ ६ ॥

(टीका) सा = सुदक्षिणा, * दोहददुःखशीलतां = गर्भिणी

* दोहदशब्दो इच्छामात्रवाच्यपि विशेषेण गर्भिणीच्छायां प्रयुज्यते" ...
गर्भलक्षणे अभिलाषे तथा गर्भे" इति हैमः,

रथदुःखस्वभावतां, उपेत्य = प्राप्य, यदेव = यत्किञ्चिदपि, वव्रे = आचकाङ्क्ष, तदेव = तत्सर्वमपि, आहृतं = आनीतं, अपश्यत् = अवलोकितवती, हि = यस्मात्कारणात्, अधिज्यधन्वनः = आरोपितकार्मु-

गर्भिण्यास्तत्तदिच्छायां विशेषेण प्रयुज्यते,
सुश्रुतस्तु गर्भिण्याः दौहृदमुद्दिश्य स्वसंहितायामित्थमाह—
"इन्द्रियार्थांस्तु यान् यान् सा भोक्तुमिच्छति गर्भिणी ।
गर्भाबाधभयात्तांस्तान् भिषगाहृत्य दापयेत् ॥

सा प्राप्तदौर्हृदा पुत्रं जनयेत गुणान्वितम् ।
अलब्धदौर्हृदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयम् ॥
येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दौर्हृदे वै विमानना ।
प्रजायेत सुतस्यार्तिस्तस्मिंस्तस्मिंस्तथेन्द्रिये ॥
राजसन्दर्शने यस्या दौर्हृदं जायते स्त्रियाः ।
अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥
दुकूलपट्टकौशेयभूषणादिषु दौर्हृदात् ।
अलङ्कारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥
आश्रमे संयतात्मानं धर्मशीलं प्रसूयते ।
देवताप्रतिमायां तु प्रसूते पार्षदोपमम् ॥
दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते ।
गोधामांसाशने पुत्रं सुषुप्सुं धारणात्मकम् ॥
गवां मांसे तु बलिनं सर्वक्लेशसहं तथा ।
माहिषे दौर्हृदाच्छूरं रक्ताक्षं लोमसंयुतम् ॥
वाराहमांसात् स्वप्नालुं शूरं सञ्जनयेत्सुतम् ।
मार्गाद्विक्रान्तजङ्घालं सदा वनचरं सुतम् ॥
सृमराद्विग्नमनसं नित्यभीतं च तैत्तिरात् ।
अतोऽनुक्तेषु या नारी समभिध्याति दौर्हृदम् ।
शरीराचारशीलैः सा समानं जनयिष्यति ।"
[illegible] दोषः । तथा च—
दौर्हृदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् ।
[illegible] ।
[illegible] गर्भस्य [illegible] च ।

[illegible]

दमाना अवयवा अस्याः सा । पुराणानि च तानि पत्राणि पुराणपत्राणि तेषामपगमस्तस्मात् । सजङ्गानि मनोज्ञानि पल्लवानि यस्याः सा सजङ्गमनोज्ञपल्लवा ॥ ७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तया………प्रचीयमानावयवया "सत्या" ………पल्लवया लतया इव रेजे ॥ ७ ॥

(सरलार्थः) यथा वसन्तसमये लता पक्वपर्णानि विहाय नवपल्लवैः शोभते तथैव राज्ञी सुदक्षिणाऽपि क्रमशः कष्टकरीं तां गर्भावस्थामतिक्रम्य विशिष्टां पुष्टिं लभमानैः अवयवैः दिदीपे ॥ ७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) पुराने पत्तों के गिर जाने पर नवीन पर्णवाली सुन्दर लता के समान रानी सुदक्षिणा भी गर्भ दुःख को बिताकर अपने पुष्ट अङ्गों से सुशोभित हुई ॥ ७ ॥

दिनेषु गच्छत्सु नितान्तपीवरं तदीयमानीलमुखं स्तनद्वयम् ।
तिरश्चकार भ्रमराभिलीनयोः सुजातयोः पङ्कजकोशयोः श्रियम् ॥८॥

(अन्वयः) दिनेषु गच्छत्सु, नितान्तपीवरम्, आनीलमुखं, तदीयं स्तनद्वयं, भ्रमराभिलीनयोः, सुजातयोः, पङ्कजकोशयोः, श्रियं तिरश्चकार ॥ ८ ॥

(टीका) दिनेषु = दिवसेषु, गच्छत्सु = व्यतिक्रामत्सु, "सत्सु" नितान्तपीवरं = अत्यन्तस्थूलं "वड्रोरुविपुलं पीनपीव्नी तु स्थूलपीवरे" इत्यमरः, आनीलमुखं = कृष्णवर्णचूचुकं, "कुचाग्रमित्यर्थः" तदीयं = सुदक्षिणासम्बन्धि, स्तनद्वयं = कुचद्वयं, "पिचण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दं स्तनौ कुचौ" इत्यमरः, भ्रमराभिलीनयोः, = भृङ्गाभिव्याप्तयोः, "द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालयाः" इत्यमरः, सुजातयोः = मनोहरयोः, पङ्कजकोशयोः = कमलमुकुलयोः, श्रियं = शोभां, तिरश्चकार = तत्याज ॥ ८ ॥

(समासः) नितान्तं पीवरमिति नितान्तपीवरम् । आसमन्तान्नीलं मुखं यस्य तदानीलमुखं । तस्या इदं तदीयम् । स्तनयोः द्वयमिति स्तनद्वयम् । भ्रमरैरभिलीनौ भ्रमराभिलीनौ तयोः भ्रमराभिलीनयोः । पङ्कजस्य कोशौ पङ्कजकोशौ तयोः ॥ ८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)……नितान्तपीवरेण आनीलमुखेन तदीयेन स्तनद्वयेन………श्रीः तिरश्चक्रे ॥ ८ ॥

(सरलार्थः) मनोहरे कमलमुकुलमुखे भ्रमरसंयोगात् यादृशी शोभा जायते तादृशी एवास्याः सुदक्षिणायाः पीनयोस्तनयोः कृष्णचूचुकोदयादनिर्वचनीया शोभा ऽजायत ॥ ८ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) कुछ दिन व्यतीत होने पर उसके पुष्ट और नीले मुखवाले दोनों स्तन, काले काले नीले भौरों से व्याप्त कमल की कलियों की शोभा को लज्जित करते हुए ॥ ८ ॥

निधानगर्भामिव सागराम्बरां शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम् ।
नदीमिवान्तःसलिलां सरस्वतीं नृपः ससत्त्वां महिषीममन्यत ॥९॥

(अन्वयः) नृपः, निधानगर्भां, सागराम्बराम्, इव, अभ्यन्तरलीनपावकां, शमीम्, इव, अन्तःसलिलां, सरस्वतीं, नदीम्, इव, महिषीं, ससत्त्वाम्, अमन्यत ॥ ९ ॥

(टीका) नृपः = राजा दिलीपः, निधानगर्भां = निधिगर्भां, सागराम्बरां = समुद्रवसनां, इव, "पृथ्वीमित्यर्थः" अभ्यन्तरलीनपावकां = अन्तःप्रलीनवह्निं, शमीमिव = शमीवृक्षमिव, अन्तःसलिलां = अन्तस्थितजलां सरस्वतीं = सरस्वतीनाम्नीं नदीमिव, महिषीं = कृताभिषेकां सुदक्षिणां, ससत्त्वां = जीवरत्नसहितां, अमन्यत = मन्यते स्म ॥ ९ ॥

(समासः) निधानं गर्भे यस्याः सा तां । सागर एवाम्बरं यस्याः सा तां सागराम्बराम् । अभ्यन्तरे लीनः पावको यस्याः सा ताम् । अन्तः सलिलं यस्याः सा तां । सत्त्वेन सहिता ससत्त्वा तां ससत्त्वाम् ॥ ९ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) निधानगर्भा सागराम्बरा इव, अभ्यन्तरलीनपावका शमी इव, अन्तःसलिला सरस्वती नदी इव, महिषी नृपेण ससत्त्वा अमन्यत ॥ ९ ॥

(सरलार्थः) यथा पृथिव्या गर्भे निधिः तिष्ठति, शमीवृक्षाभ्यन्तरेऽग्निर्वर्तते, सरस्वतीनद्या अभ्यन्तरे जलं वर्तते तथैव अस्याः सुदक्षिणाया अपि गर्भे पुत्रो वर्तत इति राजा अमन्यत ॥ ९ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) गर्भ में रत्न रखनेवाली पृथ्वीके समान, भीतर अग्नि और जल रखनेवाले शमीवृक्ष एवं सरस्वती नदी के समान, राजा दिलीप रानी को पुत्ररत्न गर्भवाली मानता हुआ ॥ ९ ॥

प्रियानुरागस्य मनःसमुन्नतेर्भुजार्जितानां च दिगन्तसम्पदाम् ।
यथाक्रमं पुंसवनादिकाः क्रिया धृतेश्च धीरः सदृशीर्व्यधत्त सः ॥१०॥

(अन्वयः) धीरः सः, (प्रजेश्वरः) प्रियानुरागस्य, मनःसमुन्नतेः, भुजार्जितानां, दिगन्तसम्पदां, च, धृतेः, च, सदृशीः, पुंसवनादिकाः, क्रियाः, यथाक्रमम्, व्यधत्त ॥ १० ॥

(टीका) धीरः = पण्डितः, "धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः" इत्यमरः, सः = राजा दिलीपः, प्रियानुरागस्य = सुदक्षिणास्नेहस्य, मनःसमुन्नतेः = मनस औदार्य्यस्य, भुजार्जितानां = भुजबलसम्पादितानां, दिगन्तसम्पदां = दिगन्तव्याप्यैश्वर्याणां, च, धृतेः = पुत्रो मे भविष्यतीति सन्तोषस्य च, सदृशीः = अनुरूपाः, *पुंसवनादिकाः = पुंसवनप्रभृतीः, क्रियाः = संस्कारान्, यथाक्रमं = अनुक्रमेण, व्यधत्त = कृतवान् ॥ १० ॥

(समासः) प्रीणातीति प्रिया तस्यामनुरागस्तस्य । मनसः समुन्नतिरिति मनःसमुन्नतिस्तस्याः । भुजाभ्याम् अर्जिता भुजार्जिताः तासाम् । दिशामन्ता दिगन्ताः, तेषु ताः सम्पदः दिगन्तसम्पदस्तासां । पुमान् सूयतेऽनेनेति पुंसवनं, तदादिर्यासान्ताः पुंसवनादिकाः । क्रममनतिक्रम्येति यथाक्रमम् ॥ १० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) धीरेण तेन ………… सदृश्यः ………… व्यधीयन्त ॥ १० ॥

(सरलार्थः) दिलीपस्य सुदक्षिणायां यावान् स्नेहः, मनसश्च यावदौदार्य्यं, दिग्विजयप्राप्तैश्वर्य्याणां यावत्प्राचुर्य्यमियता कालेन पुत्रमुखं पश्यामीत्याशया यावानानन्दश्च आसीत् तावतैव प्रेम्णा, औदार्य्येण, विभवेनानन्देन च दिलीपः वित्तशाठ्यरहितः सन् तस्याः पुंसवनादिगर्भसंस्कारान् सम्पादयामास ॥ १० ॥

(सरलार्थ हिन्दी) राजा दिलीप का सुदक्षिणा में जितना प्रेम था, उसमें जितनी उदारता थी, अपने बाहुबल से जितनी सम्पत्ति प्राप्त की थी, उन सभों के अनुसार बड़े धूमधाम से पुंसवनादि संस्कार करता हुआ ॥ १० ॥

* "व्यक्ते गर्भे तृतीये तु मासे पुंसवनं भवेत् । गर्भेऽव्यक्ते तृतीये चेच्चतुर्थे मासि वा भवेत्" इति शौनकः ॥

सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवात् प्रयत्नमुक्तासनया गृहागतः ।
तयोपचाराञ्जलिखिन्नहस्तया ननन्द पारिप्लवनेत्रया नृपः ॥११॥

(टीका) गृहागतः, नृपः, सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवात्, प्रयत्नमुक्तासनया, उपचाराञ्जलिखिन्नहस्तया, पारिप्लवनेत्रया, तया, (सुदक्षिणया) ननन्द ॥ ११ ॥

(टीका) गृहागतः = गेहंप्राप्तः, "गृहं गेहोदवसितं" इत्यमरः, नृपः = राजा दिलीपः, *सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवात् = लोकपालांशानुप्रविष्टगर्भभारात्, प्रयत्नमुक्तासनया = प्रयासत्यक्तासनया, उपचाराञ्जलिखिन्नहस्तया = अभिवादनाञ्जलिशिथिलकरया, पारिप्लवनेत्रया = चञ्चलनयनया, "चञ्चलं तरलं चैव पारिप्लवपरिप्लवे" इति नामरः, तया = सुदक्षिया, ननन्द = आनन्दम्प्राप ॥ ११ ॥

(समासः) गृहमागत इति गृहागतः । सुराणामिन्द्राः सुरेन्द्रास्तेषां मात्राभिराश्रित इति सुरेन्द्रमात्राश्रितः, स चासौ गर्भश्च सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भस्तस्य गौरवं तस्मात् । प्रयत्नेन मुक्तं आसनं यया सा तया । उपचारार्थः योऽञ्जलिस्तस्मिन् खिन्नौ हस्तौ यस्याः सा तया । पारिप्लवे नेत्रे यस्याः सा ॥ ११ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) गृहागतेन नृपेण ·········· ननन्दे ॥ ११ ॥

(सरलार्थः) यः तस्या गर्भः क्रमशस्तथा भारवाञ्जातः, यथा गृहागतस्य राज्ञो दिलीपस्य स्वागतार्थं शय्यातः उत्थानेऽपि सा कष्टमपि अनुभवत्। तत्प्रणामार्थमञ्जलिबन्धनेऽपि तस्या हस्तौ शिथिलौ अभूताम्, तादृशं तस्या भावं दृष्ट्वा दिलीपः परमां मुदं प्राप ॥ ११ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) गर्भ के भार से स्वागत करने के निमित्त बड़े यत्न से आसन छोड़ती हुई तथा प्रणाम करने के लिये अञ्जलि

* [illegible] लोकपालानां [illegible] निर्मितो भवति अतएव ग[illegible] [illegible] —

अष्टाभिर्लोकपालानां मात्राभिर्निर्मितो नृपः ।

[illegible] कुमारं कुमारा[illegible] न दोषाय । कुमार[illegible] [illegible]
[illegible] ।

(अन्वयः) दिशः प्रसेदुः, सुखाः, मरुतः, ववुः, अग्निः, प्रदक्षिणार्चिः, (सन्) हविः, आददे, (इत्थम्) सर्वं, तत्क्षणं, शुभशंसि बभूव, हि (यतः) तादृशां, भवः, लोकाभ्युदयाय भवति ॥ १४ ॥

(टीका) दिशः,=आशाः, प्रसेदुः=प्रसन्ना बभूवुः, सुखाः=सुखकराः, मरुतः=वाताः, ववुः=वान्तिस्म, अग्निः=वन्हिः, प्रदक्षिणार्चिः=प्रदक्षिणज्वालः, "सन्" हविः=हवनीयम्, आददे=स्वीचकार, इत्थम्=अनेन प्रकारेण, सर्वम्=अखिलं, तत्क्षणं=तस्मिन् क्षणे "जन्मसमय इत्यर्थः" शुभशंसि=शुभसूचकं, बभूव=अभूत्, हि=यस्मात्कारणात्, तादृशां=रघुसदृशानां, भवः=जन्म, लोकाभ्युदयाय=लोकमङ्गलाय भवतीति शेषः ॥ १४ ॥

(समासः) सुखयन्तीति सुखाः। प्रदक्षिणा अर्चिर्यस्य सः। शुभानि शंसत इति शुभशंसि। लोकानामभ्युदयो लोकाभ्युदयस्तस्मै ॥ १४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) दिग्भिः प्रसेदे, मरुद्भिः सुखैः ववे, अग्निना प्रदक्षिणार्चिषा (सता) हविः आददे, सर्वेण तत्क्षणं शुभशंसिना बभूवे, हि तादृशां भवेन लोकाभ्युदयाय "भूयते" । १४ ॥

(सरलार्थः) तदा सर्वा अपि दिशः प्रसन्नाः सञ्जाताः, आनन्दजनकाः वायवः ववुः, हवनाग्निः प्रदक्षिणज्वालः सन् घृताहुतिं स्वीचकार, तस्मिन् काले जगत् मङ्गललक्षणलक्षितं प्रबभूव किमन्यद् एवंविधा महापुरुषा जगदानन्दायैव प्रादुर्भवन्ति ॥ १४ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) पुत्र प्रसवके समय सम्पूर्ण दिशायें निर्मल हुईं, मन्द २ पवन चलने लगी, उस समय सभी बातें शुभसूचक हुईं, क्योंकि ऐसोंका जन्म जगत के मङ्गल के लिये ही होता है ॥ १४ ॥

अरिष्टशय्यां परितो विसारिणा सुजन्मनस्तस्य निजेन तेजसा।
निशीथदीपाः सहसा हतत्विषो बभूवुरालेख्यसमर्पिता इव ॥१५॥

(अन्वयः) सुजन्मनः, तस्य, (बालकस्य) अरिष्टशय्यां, परितः, विसारिणा, निजेन, तेजसा, सहसा, निशीथदीपाः, हतत्विषः, (सन्तः) आलेख्यसमर्पिताः, इव, बभूवुः ॥ १५ ॥

(टीका) सुजन्मनः=शोभनजन्मनः, तस्य=कुमारस्य रघोः, अरिष्टशय्यां=सूतिकागृहतल्पं, "अरिष्टं सूतिकागृहम्" इत्यमरः -

परितः = समन्ततः; " समन्ततस्तु परितः सर्वतो विश्वगित्यपि" इत्यमरः, विसारिणा = प्रसारिणा, "विसृत्वरो विसृमरः प्रसारी च विसारिणि" इत्यमरः, निजेन = स्वीयेन, तेजसा = दीप्त्या, सहसा झटिति, निशीथदीपाः = अर्द्धरात्रप्रदीपाः, "अर्द्धरात्रनिशीथौ द्वौ" इत्यमरः, हतत्विषः = नष्टकान्तयः, "सन्तः" आलेख्यसमर्पिता इव = चित्रलिखिता इव, बभूवुः = आसन् ॥ १५ ॥

(समासः) शोभनं जन्म यस्य सः सुजन्मा तस्य । अरिष्टे शय्या अरिष्टशय्या तां । विशेषेण सरतीति विसारि तेन । निशीथे दीपा इति निशीथदीपाः । हता त्विट् येषां ते । आलेख्ये समर्पिताः ॥ १५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) सुजन्मनः......निशीथदीपैः हतत्विड्भिः "सद्भिः" आलेख्यसमर्पितैः इव, बभूवे ॥ १५ ॥

(सरलार्थः) तस्मिन् क्षणे उत्पन्नस्य तस्य बालकस्य दीप्तिमता शरीरकान्तिमण्डलेन सूतिकागृहसंस्थिताः प्रदीपाः, निष्प्रभाः सन्तः चित्रलिखिता इव जाताः ॥ १५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) उस समय सुन्दर जन्मवाले उस बालक के तेज से सूतिका गृह के चहुँओर रक्खे हुए अर्द्धरात्रि के प्रदीप चित्र में रक्खे हुए की समान मन्द प्रकाश हो गये ॥ १५ ॥

जनाय शुद्धान्तचराय शंसते कुमारजन्मामृतसंमिताक्षरम् ।
अदेयमासीत्त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे ॥ १६ ॥

(अन्वयः) अमृतसंमिताक्षरं, कुमारजन्म, शंसते, शुद्धान्तचराय, जनाय, भूपतेः, त्रयम्, एव, अदेयम्, आसीत्, शशिप्रभं, छत्रं, (अदेयमासीत्) उभे, चामरे, च ॥ १६ ॥

(टीका) अमृतसम्मिताक्षरं, = सुधासमानाक्षरं, कुमारजन्म = कुमारजननं, "जनुर्जननजन्मानि" इत्यमरः, शंसते = कथयते, शुद्धान्तचराय = अन्तःपुरपरिचारकाय, "स्त्र्यगारं भूभुजामन्तःपुरं स्यादवरोधनम् । शुद्धान्तश्चावरोधश्च" इत्यमरः । जनाय = मनुष्याय भूपतेः = राज्ञो दिलीपस्य, त्रयं = त्रिसंख्याकमेव वस्तु, अदेयं = दातुमनर्हम्, आसीत = अभूत्, शशिप्रभं = चन्द्रधवलं, छत्रम् = आतपत्रं, "हैमं छत्रन्त्वातपत्रम्" इत्यमरः, उभे = द्वे, चामरे=बालव्यजने च ॥ १६ ॥

(समासः) कुमारस्य जन्म इति कुमारजन्म । अमृतेन सम्मि

तान्यक्षराणि, यस्मिंस्तत् । शुद्धाः कामोपरता रक्षका अन्ते यस्य स शुद्धान्तः, चरतीति चरः, शुद्धान्ते चरः शुद्धान्तचरस्तस्मै । पातीति पतिः, भुवः पतिरिति भूपतिस्तस्य । दातुं योग्यं देयं, न देयमित्यदेयं । शशिनः प्रभेव प्रभा यस्य तत् । छादयतीति च्छत्रम् ॥ १६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) कुमारजन्म............त्रयेण एव अदेयेन अभूयत, शशिप्रभेण छत्रेण उभाभ्यां चामराभ्याञ्च ॥ १६ ॥

(सरलार्थः) यदा अन्तःपुरचारिणा परिजनेन राज्ञः समीपमागत्य सुधासमानाक्षरा कुमारजन्मवार्ता श्राविता तदा राजा अमृतरसपूरितमिव तद्वचनमाकर्ण्य अत्युज्ज्वलं चन्द्रप्रभाभासुरं राजच्छत्रं चामरद्वयञ्च वर्जयित्वा तत्कालोपस्थितं वसनभूषणादिकं सर्वमेव तस्मै प्रादात् ॥ १६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जिस समय राजा दिलीप के समीप आकर विश्वासपात्र राजदूत ने "कुमारका जन्म हुआ" ऐसे अमृत के अक्षर सुनाये उस समय राजा तीन वस्तुओं को अर्थात् चन्द्रमा की समान कान्तिवाला छत्र (राजच्छत्र) तथा दोनों चामरों को छोड़कर अपने शरीर पर धारण किये हुए सभी आभूषणों को देता हुआ ॥ १६ ॥

निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा नृपस्य कान्तं पिबतः सुताननम् ।
महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनाद्गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि ॥१७॥

(अन्वयः) निवातपद्मस्तिमितेन, चक्षुषा, कान्तं, सुताननं, पिबतः, नृपस्य, गुरुः, प्रहर्षः, इन्दुदर्शनात्, महोदधेः, पूरः, इव, आत्मनि, न प्रबभूव ॥ १७ ॥

(टीका) निवातपद्मस्तिमितेन=निर्वातस्थानस्थितकमलवन्निश्चलेन, चक्षुषा = नयनेन, कान्तं = मनोरमं, "कान्तं मनोरमं रुच्यम्" इत्यमरः, सुताननं = पुत्रमुखं, पिबतः = अवलोकयतः, नृपस्य = राज्ञो दिलीपस्य, गुरुः = महान्, प्रहर्षः = आनन्दः, इन्दुदर्शनात् = चन्द्रावलोकनात्, महोदधेः = महासागरस्य, पूरः = जलौघः, इव = यथा, आत्मनि = देहे, न प्रबभूव = न मातिस्म ॥ १७ ॥

(समासः) निर्गतः वातः यस्मात् सः निवातः, निवाते पद्मं निवातपद्मं, तद्वत्स्तिमितं तेन । सुतस्याननमिति सुताननं । दिव-

इत्यमरः, मणिः = हीरकादिमणिः, इव = यथा, अधिकं = अत्यन्तं, बभौ = शुशुभे ॥ १८ ॥

(समासः) दिलीपस्य सूनुरिति दिलीपसूनुः। तपनं तप्यते वा तपः तदस्यास्तीति तपस्वी, तेन। पुरोऽग्रे धीयते पूज्यत्वेनेति पुरोधाः तेन। तपसो वनं तपोवनं तस्मात्। जातस्य कर्म्म इति जातकर्म्म तस्मिन्। प्रयुक्तः संस्कारो यस्य सः। आकरादुद्भवो यस्य सः ॥१८॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन दिलीपसूनुना.................आकरोद्भवेन प्रयुक्तसंस्कारेण मणिना इव, अधिकं बभे ॥ १८ ॥

(सरलार्थः) यथा आकरात् निष्कासितो हीरकमणिः शाणशोधितः सन् अतितरां कान्तिं लभते तथा स्वभावसुन्दरः स राजपुत्रः पुरोहितेन वसिष्ठेन जातकर्मनामसंस्काराभ्यां संस्कृतः सन् सौन्दर्यातिशयम् अलभत् ॥ १८

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे खान से निकाला हुआ मणि (हीरा आदि) सान पर चढ़ाकर साफ करने से अधिक शोभा को प्राप्त होता है उसी प्रकार वह राजकुमार भी तपोवन से आये हुए पुरोहित वसिष्ठजी से संस्कार किये जाने पर अत्यन्त अधिक शोभा (सौन्दर्य) को प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥

सुखश्रवा मङ्गलतूर्यनिस्वनाः प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम्।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ॥१९॥

(अन्वयः) सुखश्रवाः, मङ्गलतूर्यनिस्वनाः, वारयोषितां, प्रमोदनृत्यैः, सह, केवलं, मागधीपतेः, (दिलीपस्य) सद्मनि, न (किन्तु) दिवौकसाम् अपि, पथि, व्यजृम्भन्त ॥ १९ ॥

(टीका) सुखश्रवाः = श्रवणसुखकराः, मङ्गलतूर्यनिस्वनाः = मङ्गलवाद्यध्वनयः, वारयोषितां = गणिकानां, "वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवा" इत्यमरः, प्रमोदनृत्यैः = हर्षनर्तनैः, सह, मागधीपतेः = सुदक्षिणाभर्तुः, (दिलीपस्य) सद्मनि = गृहे, एव, केवलं, न व्यजृम्भन्त = न विस्तारमलभन्त, किन्तु दिवौकसाम् = देवानां, पथि = आकाशेऽपि, व्यजृम्भन्त = व्यलसन् ॥ १९ ॥

(समासः) सुखः श्रवो येषान्ते सुखश्रवाः। मङ्गलार्थानि तूर्याणि मङ्गलतूर्याणि तेषां निस्वनाः। वारस्य योषितः वारयोषितस्तासां।

प्रमोदस्य नृत्यानि (चतुःप्रकारस्य *अभिनयस्य आविष्करणा
तैः । मगधस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री मागधी तस्याः पतिः तस्य । दिवि
येषान्ते दिवौकसः तेषाम् 'पृषोदरादित्वात्साधुः' ॥ १९ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) सुरप्रवैः मङ्गलतूर्यनिस्वनैः व्यजृम्भत ॥

(सरलार्थः) तस्य जन्ममहोत्सवप्रसङ्गे न केवलं राजभवने
नृत्यगीतवाद्यानि समभूवन् किन्तु आकाशेऽपि गन्धर्वा वादि
वादयन्तिस्म अप्सरसश्च आनन्दातिशयेन नृत्यन्तिस्म ॥ १९ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) कुमार के जन्ममहोत्सव में केवल
दिलीप के राजभवन में ही नाचना गाना बजाना आदि आनन्द
स्रोत नहीं उमड़ा हुआ था किन्तु स्वर्ग में भी अप्सराओं का
एक अपूर्व आनन्दमें मग्न हुआ था ॥ १९ ॥

न संयतस्तस्य बभूव रक्षितुर्विसर्जयेद्यं सुतजन्महर्षितः ।
ऋणाभिधानात्स्वयमेव केवलं तदा पितॄणां मुमुचे स बन्धनात् ॥ २०

(अन्वयः) रक्षितुः, तस्य (दिलीपस्य) संयतः, न,
यं, सुतजन्महर्षितः (सन्) (सः) विसर्जयेत्, केवलं, सः, स्वयम्
एव, पितॄणां, ऋणाभिधानात्, बन्धनात्, तदा, मुमुचे ॥ २० ॥

(टीका) रक्षितुः = पालकस्य, तस्य = दिलीपस्य, संयतः = बद्ध
कारागारे निरुद्ध इत्यर्थः "कश्चन" न बभूव = नासीत्, सुतजन्म
हर्षितः = पुत्रोत्पत्तिमहृष्टः, 'सन्' (सः) यं = बन्दीकृतजनं, विसर्ज
येत् = †मोचयेत्, "किन्तु" केवलं, सः = राजा दिलीपः, स्वयमे
पितॄणां = पूर्वपुरुषाणां, ‡ऋणाभिधानात्, = ऋणनामधेयाद् बन्ध
नात्, तदा = तस्मिन् काले, मुमुचे = मुक्तोबभूव ॥ २० ॥

(समासः) रक्षतीति रक्षिता, तस्य । सुतस्य जन्म सुतज

* अभिनयस्य चतुष्प्रकारकत्वं च "आङ्गिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्वि
स्तथा" इत्यादिनोक्तम् ।

† "युवराजाभिषेके च परचक्रावमर्दने । पुत्रजन्मनि वा मोक्षो बद्ध
हि विधीयते ।

‡ "जाते पुत्रे तु जनकः पितॄणां मुच्यते ऋणात्" इत्यागमः "एष
अनृणो यः पुत्री" इति श्रुतिः ।

नेन वर्जितः । अभिधीयतेऽनेन इत्यभिधानं ऋणमभिधानं यस्य तद् ऋणाभिधानं, तस्मात् ॥ २० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) जन्तुः तस्य संयतेन न बभूवे (येन) सुतजन्महर्षितेन "सता" विमुच्येत, तेन……॥ २० ॥

(सरलार्थः) तद्देशे चौराभावात् न कश्चिदपि कारागारे बद्ध आसीद् यमसौ दिलीपः पुत्रजन्मना अतिप्रसन्नः सन् मोचयेत् परन्तु स आत्मानमेव पितृणाद् ऋणरूपाद्बन्धनान्मोचयामास ॥ २० ॥

(सरलार्थ हिन्दी) राजा के उत्तम प्रबन्ध से राज्य में चोरों के तथा अन्य दुष्टों के न रहने के कारण कोई कैदी न था, जिसे पुत्र जन्म के महोत्सव में छोड़ता ऐसी दशा में राजा दिलीप ही स्वयं अपने पितृऋण के बन्धन से मुक्त हुआ ॥ २० ॥

श्रुतस्य यायादयमन्तमर्भकस्तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः ।
अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थविच्चकार नाम्ना रघुमात्मसंभवम् ॥२१॥

(अन्वयः) अयम्, अर्भकः, श्रुतस्य, अन्तं, यायात्, तथा, युधि, परेषां च, (अन्तं यायात्) इति, अर्थवित्, पार्थिवः, धातोः, गमनार्थम्, अवेक्ष्य, आत्मसम्भवं, नाम्ना, रघुं, चकार ॥ २१ ॥

(टीका) अयम् = एषः, अर्भकः = शिशुः, "पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः" इत्यमरः, श्रुतस्य = शास्त्रस्य, अन्तं = पारं, यायाद् = गच्छेत्, तथा, युधि = रणे, परेषां = शत्रूणां, च, "अन्तं यायात्" इति = हेतोः, अर्थवित् = अर्थज्ञः, पार्थिवः = भूमिपः, धातोः = लघिधातोः, गमनार्थं = गमनरूपमर्थम्, अवेक्ष्य = आलोच्य, आत्मसंभवं = आत्मजं सुतं, नाम्ना = अभिधया, रघुं, चकार = रघुरिति नाम्नाऽऽख्यातवान् ॥ २१ ॥

(व्याकरण) रुकि वकि……रघि लघि गत्यर्था इति लघि धातोरिदित्वान् नुमि "लंघिवंह्योर्नलोपश्च" इति कुप्रत्ययो नलोपश्च बालमूललघ्वलमङ्गुलीनां वा लोरत्वमापद्यते" लस्थाने रः ॥ २१ ॥

(समासः) अर्थं वेत्तीत्यर्थवित् । गमनमेवार्थस्तम् । सम्भवतीति सम्भवः आत्मनः सम्भव आत्मसम्भवस्तम् ॥ २१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अनेन अर्भकेण श्रुतस्य अन्तः यायेत, तथा युधि परेषां च "अन्तः यायेत" इति अर्थविदा पार्थिवेन………… आत्मसम्भवः नाम्ना रघुः चक्रे ॥ २१ ॥

(सरलार्थः) अयं मे पुनः समस्तशास्त्रसागरस्य पारं ... ष्यति सकलसपत्नसैन्यसमुद्रस्यान्तं च क्षिप्रा निर्गमिष्यति, ... तस्य गमनशीलत्वं निर्णीय राजा दिलीपः तस्य रघुरिति ... धेयञ्चकार ॥ २१ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) यह मेरा पुत्र सम्पूर्ण शास्त्र को पार ... (अशेष शास्त्र पढ़ेगा) और रण में शत्रुओं के अन्त को प्राप्त ... (शत्रुओं का नाश करेगा) ऐसा समझ कर रविधातु को ... जानकर उसका "रघु" ऐसा नामकरण किया ॥ २१ ॥

पितुः प्रयत्नात्स समग्रसम्पदः शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने ।
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः ॥ २२ ॥

(अन्वयः) सः, (रघुः) समग्रसम्पदः, पितुः, प्रयत्नात्, हरि... श्वदीधितेः, अनुप्रवेशात्, बालचन्द्रमाः, इव, शुभैः शरीरावय... दिने, दिने, वृद्धिं, पुपोष ॥ २२ ॥

(टीका) सः = रघुः, समग्रसंपदः = पूर्णलक्ष्मीकस्य, पितुः ... दिलीपस्य, प्रयत्नात् = पालनादिनियमात्, हरिदश्वदीधितेः = सू... किरणस्य "भास्वद्विवस्वत्सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मयः" इति त... "किरणोस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः । भानुः करो मरीचि... स्त्रीपुंसयोर्दीधितिः स्त्रियाम्" इत्यमरः, अनुप्रवेशात् = अन्तःप्रवेशा... 'बालचन्द्रमा इव = बालेन्दुरिव, शुभैः = मनोहरैः, शरीरावयवैः ... अङ्गोपाङ्गैः, दिने दिने = प्रतिदिनम्, "नित्यवीप्सयोः, इति द्विर्वचन... वृद्धिं पुपोष = ववृधे ॥ २२ ॥

(समासः) समग्राः सम्पदो यस्य स तस्य । हरिताः अश्व... यस्य सः हरिदश्वः, तस्य दीधितिः तस्या हरिदश्वदीधितेः ॥ २२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन ....बालचन्द्रमसा इव,...... वृद्धिः पुपुपे ॥ २२ ॥

(सरलार्थः) यथा प्रतिपच्चन्द्रः शुक्लपक्षे सूर्यस्य किरणसम्पर्क... प्रतिदिनं कलाभिः वर्द्धते तथैव सः कुमारोऽपि पितुः प्रयत्नेन मनो... रमैरङ्गैः, प्रतिदिनं ववृधे ॥ २२ ॥

* सूर्य्यस्य सुखनाम्नी अमा नाम कला तस्याः प्रवेशात् । चन्द्र... किल सूर्य्यरश्मिना रश्मिमान् सन् वर्द्धते ।

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे बालचन्द्र सूर्य की किरण के प्रवेश करने से शुक्ल पक्ष में प्रति दिवस एक एक कला बढ़ता है उसी प्रकार राजकुमार रघु भी पिता के उचित प्रयत्नों से प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त करने लगा ॥ २२ ॥

उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ ॥२३॥

(अन्वयः) यथा, शरजन्मना, उमावृषाङ्कौ, "ननन्दतुः" यथा जयन्तेन, शचीपुरन्दरौ, "ननन्दतुः" तथा, तत्सदृशेन सुतेन, तत्समौ, नृपः, मागधी, च, "एतावुभावपि" ननन्दतुः ॥ २३ ॥

(टीका) यथा = येनप्रकारेण, *शरजन्मना = कार्तिकेयेन, "कार्तिकेयो महासेनः शरजन्मा षडाननः" इत्यमरः, उमावृषाङ्कौ = पार्वतीपरमेश्वरौ "ननन्दतुः" यथा = येन प्रकारेण, "च" जयन्तेन = जयन्तनामकसुतेन, शचीपुरन्दरौ इन्द्राणीन्द्रौ, ननन्दतुः = आनन्दम्प्रापतुः, तथा = तेन प्रकारेण, तत्सदृशेन = कार्तिकेयजयन्ततुल्येन, सुतेन = पुत्रेण रघुणा, तत्समौ = उमामहेश्वरशचीपुरन्दरसमानौ, नृपः = राजा दिलीपः, सा मागधी च, "एतौ उभावपि" ननन्दतुः ॥ २३ ॥

(समासः) शरेषु जन्मास्येति शरजन्मा, तेन। शची च पुरन्दरश्च शचीपुरन्दरौ। तयोः समानो दृश्यते इति तत्सदृशस्तेन तत्सदृशेन। तैः समाविति तत्समौ ॥ २३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) यथा शरजन्मना उमावृषाङ्काभ्यां, यथा

---

* पुरा पार्वत्या सार्द्धं केलिभवनमाश्रितवति भगवति चन्द्रमौलीश्वरे, तारकासुरेण वित्रासितो देवगणस्तद्विनाशनार्थं तत्रोपाजगाम। केलिभवने महेश्वर इति तत्रस्थैरवधुत्य कालक्षेपमसहमाना देवा अग्निं कपोतरूपं आदिश्य तत्र प्रेषयामासुः। तं तथाविधमवलोक्य कस्त्वं कपटरूपोऽसि, गृहाणेमं मे शुक्रमित्युक्त्वा भगवान् शङ्करस्तस्मै वीर्यं ददौ। स च कपोतरूपोऽग्निश्चञ्चुपुटे वीर्यमादाय बहिर्निर्गतः। तद्धर्तुमसमर्थतया गङ्गायां निक्षिप्तवान् सापि परमात्मतेजःस्वरूपं सोढुमसमर्था शरस्तम्बे निचिक्षेप। तस्मात् स बालो व्यजायत।

इति तस्य शरभवपाण्डरजन्मेत्यभिधाननिर्दिष्टिरवगन्तव्या।

जयन्तेन शचीपुरन्दराभ्यां ननन्दे तथा तत्सदृशेन सुतेन नृपेण तथा मागध्या च (उभाभ्यां ननन्दे) ॥ २३ ॥

(सरलार्थः) यथा कार्तिकेयपुत्रप्राप्त्या पार्वतीपरमेश्वरौ न्दमापतुः, जयन्तसुतलाभेन इन्द्राणीन्द्रौ च परमाननन्दतुः रघुं सुतं लब्ध्वा सुदक्षिणादिलीपावपि परं हर्षमाजग्मतुः ॥ २३ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे स्वामीकार्तिक के जन्म से महादेव पार्वती तथा जयन्त के जन्म से पुलोमजा और इन्द्र प्रसन्न हुए उसी प्रकार राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा भी उन दोनों पुत्रों समान पुत्र (रघु) को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुईं ॥ २३ ॥

रथाङ्गनाम्नोरिव भावबन्धनं बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम् ।
विभक्तमप्येकसुतेन तत्तयोः परस्परस्योपरि पर्यचीयत ॥ २४ ॥

(अन्वयः) तयोः (सुदक्षिणादिलीपयोः) रथाङ्गनाम्नोः इव भावबन्धनं, परस्पराश्रयं, यत्, प्रेम, बभूव, तत्, तयोः, एकसुतेन विभक्तमपि, परस्परस्य, उपरि, पर्यचीयत ॥ २४ ॥

(टीका) तयोः = सुदक्षिणादिलीपयोः, रथाङ्गनाम्नोरिव = चक्रवाकयोरिव, भावबन्धनं = चेतोवृत्तिगुम्फनं, परस्पराश्रयं = अन्योन्यविषयकं, यत्प्रेम = स्नेहः, "प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेमस्नेहोऽथ दोहदम्" इत्यमरः, बभूव = आसीत्, तत् = प्रेम, एकेन = अद्वितीयेन सुतेन = पुत्रेण, विभक्तमपि = कृतविभागमपि, परस्परस्योपरि = अन्योन्यस्योपरि, पर्यचीयत = अवर्धत ॥ २४ ॥

(समासः) रथाङ्गनाम्नी च रथाङ्गनामा च रथाङ्गनामानौ तयोः। भावस्य बन्धनं भावबन्धनं। परस्परः आश्रयो यस्य तत् परस्पराश्रयम् ॥ २४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)·········भावबन्धनेन परस्पराश्रयेण प्रेम्णा बभूवे, तेन·········विभक्तेन अपि ॥ २४ ॥

(सरलार्थः) चक्रवाकपक्षिणोरिव तयोः सुदक्षिणादिलीपयोः परस्परमखण्डितं यत्प्रेम आसीत् तदेकेन पुत्रेण रघुणा कृतविभागमपि न हीयते स्म प्रत्युत परिवर्द्धतेस्म ॥ २४ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) चकवा चकई के समान चित्त के व्यापार को बाँधने वाला, रानी सुदक्षिणा और राजा दिलीप का जो परस्पर

प्रेम था वह एक पुत्र रघु के बँट जाने पर भी परस्पर एक का दूसरे के ऊपर बढ़ता ही गया ॥ २४ ॥

उवाच धात्र्या प्रथमोदितं वचो ययौ तदीयामवलम्ब्य चाङ्गुलिम् ।
अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः ॥२५॥

(अन्वयः) सः, अर्भकः, धात्र्या, प्रथमोदितं, वचः, उवाच, तदीयाम्, अङ्गुलिं, च, अवलम्ब्य, ययौ, प्रणिपातशिक्षया, च, नम्रः, अभूत्, तेन, पितुः, मुदं, ततान ॥ २५ ॥

(टीका) सः = पूर्वोक्तः, अर्भकः = शिशुः, धात्र्या = उपमात्रा, प्रथमोदितं = प्रथमोपदिष्टं, वचः = वचनम्, उवाच = जगाद, "तथा" तदीयां = धात्रीसम्बन्धिनीम्, अङ्गुलिं = करशाखां, "अंगुल्यः करशाखाः स्युः" इत्यमरः, च, अवलम्ब्य = धृत्वा, ययौ = जगाम, प्रणिपातशिक्षया = नमस्कारशिक्षणेन, नम्रः = नमनशीलः, अभूत् = बभूव, तेन = पूर्वोक्तप्रकारेण, पितुः = जनकस्य, मुदं = हर्षं "मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः" इत्यमरः, ततान = विस्तारयति स्म ॥ २५ ॥

(समासः) प्रथमम् उदितमिति प्रथमोदितं । तस्या इयं तदीया तां । प्रकर्षेण निपातः प्रणिपातस्तस्य शिक्षा तया ॥ २५ ॥

(सरलार्थः) सः कुमारः उपमात्रा उपदिष्टं "पितः" इति वचनम् अवोचत् । तस्याः अङ्गुलिम् अवलम्ब्य चलितुं प्रारब्धवान् । प्रणामशिक्षणेन च प्रणाममकरोत् इति तस्य सर्वाणि शैशवचेष्टितानि अवलोक्य दिलीपो नितरां सुखं समाससाद ॥ २५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) राजकुमार उपमाता से सिखाया हुआ " पिता " ऐसा वचन बोला और उसकी (उपमाता की) अङ्गुली पकड़ कर चलने लगा, बड़ों को देख कर नम्र होना प्रणाम करना आदि शिक्षा से अति विनीत वह राजा दिलीप के आनन्द को बढ़ाता हुआ ॥ २५ ॥

तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि ।
उपान्तसम्मीलितलोचनो नृपश्चिरात्सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ ॥२६॥

(अन्वयः) शरीरयोगजैः, सुखैः, त्वचि, अमृतं, निषिञ्चन्तम्, इव, तं (सुतम्) अङ्कम्, आरोप्य, उपान्तसम्मीलितलोचनः नृपः, चिरात्, सुतस्पर्शरसज्ञतां, ययौ ॥ २६ ॥

(टीका) शरीरयोगजैः = अङ्गसङ्गजनितैः, "अङ्गं प्रतीकोऽवयवोऽपघनोऽथ कलेवरम् । गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः" इत्यमरः, सुखैः = आनन्दैः, त्वचि = त्वगिन्द्रिये, अमृतं = सुधां, "पीयूषममृतं सुधा" इत्यमरः, निषिञ्चन्तमिव = सिञ्चन्तमिव, "वर्षन्तमित्यर्थः" तं = रघुं, अङ्कम् = उत्सङ्गम्, आरोप्य = स्थापयित्वा, उपान्तसम्मीलितलोचनः = प्रान्तप्रमुद्रितनयनः, नृपः = दिलीपः, चिरात् = बहुकालात् परं, सुतस्पर्शरसज्ञतां = पुत्रस्पर्शस्वादाभिज्ञत्वं, ययौ = प्राप ॥२६॥

(समासः) शरीरस्य योगः शरीरयोगः, तस्माज्जातास्तैः। उपान्तयोः सम्मीलिते लोचने यस्य सः । सुतस्य स्पर्शः सुतस्पर्शः, तस्य रसः तं जानातीति सुतस्पर्शरसज्ञः तस्य भावस्तत्ता ताम् ॥२६॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)·········उपान्तसम्मीलितलोचनेन नृपेण ······सुतस्पर्शरसज्ञता यये ॥ २६ ॥

(सरलार्थः) त्वचि सुधासिञ्चनेन यादृश अलौकिक आनन्दातिशयो जायते, कुमारं रघुं स्वाङ्के निधाय दिलीपोऽपि बहुकालानन्तरं समभिलुषितं तादृशमेव परम् आनन्दम् अलभत् ।

(सरलार्थ हिन्दी) राजकुमार के अंग के संग से उत्पन्न आनन्द के द्वारा मानों त्वचा पर अमृत बरसाते हुए उस पुत्र को गोद में बैठा आँख बन्द किये राजा दिलीप अभिलपित पुत्र के स्पर्श सुख के आनन्द बहुत काल के अनन्तर प्राप्त करता हुआ ॥ २६ ॥

अमंस्त चानेन परार्ध्यजन्मना स्थितेरभेत्ता स्थितिमन्तमन्वयम् ।
स्वमूर्तिभेदेन गुणाग्र्यवर्तिना पतिः प्रजानामिव सर्गमात्मनः ॥२७॥

(अन्वयः) स्थितेः, अभेत्ता, प्रजानां, पतिः, "सः" परार्ध्यजन्मना, गुणाढ्यवर्तिना, स्वमूर्तिभेदेन, अनेन, आत्मनः, सर्गम्, इव, अन्वयं, स्थितिमन्तम्, अमंस्त, च ॥ २७ ॥

(टीका) स्थितेः = मर्यादायाः, "मर्यादा धारणा स्थितिः" इत्यमरः, अभेत्ता = अविनाशकः, "पालक इत्यर्थः" "एतेन स्वाचारनिष्ठोक्तिः सूचिता" प्रजानां = जनानां, पतिः = स्वामी दिलीपः, ब्रह्मा च, परार्ध्यजन्मना = शोभनोद्भवेन, गुणाढ्यवर्तिना = सत्वगुणमयेन स्वमूर्तिभेदेन = अवतारभेदेन, विष्णुना, "ब्रह्मत्वं सृजते लोकान् विष्णुत्वे ... । रुद्रत्वे संहरत्येष तिस्रोऽवस्थाः स्वयंभुवः" आत्मनः =

स्वस्य, सर्गं = सृष्टिं, इव, अन्वयं = वंशं, "वंशोऽन्ववायः सन्तानः" इत्यमरः, स्थितिमन्तं = प्रतिष्ठावन्तं, अमंस्त = मन्यतेस्म ॥ २७ ॥

(समासः) तिष्ठन्त्यत्रेति स्थितिस्तस्याः । न भेत्तेत्यभेत्ता । प्रकर्षेण जायन्त इति प्रजास्तासां । परार्घ्यं जन्म यस्य सः तेन । अग्रे भवमग्र्यं, गुणेष्वग्र्यमिति गुणाग्र्यं तेन वर्तत इति गुणाग्र्यवर्ती, तेन । स्वस्य मूर्तिः, स्वमूर्तिः, तस्या भेदस्तेन । सृज्यत इति सर्गस्तम् ॥२७॥

(सरलार्थः) यथा सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा सत्वगुणमयेन स्वरूपभेदेन आत्मना सृष्टं ब्रह्माण्डे स्थितिमद् अमन्यत तथैवासावपि दिलीपः आत्मनः पुत्रेण रघुणा निजं वंशं स्थितिशीलं मन्यते स्म ॥ २७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे सत्त्वगुणी विष्णु के अवतार ब्रह्मदेव अपनी सृष्टि को स्थिर मानते हुए उसी प्रकार मर्यादापालक दिलीप भी अपने पुत्र रघु से वंश को स्थिति वाला मानता हुआ ॥ २७ ॥

स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः ।
लिपेर्यथावद्ग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत् ॥२८॥

(अन्वयः) वृत्तचूलः, चलकाकपक्षकैः, सवयोभिः, अमात्यपुत्रैः, अन्वितः, सः, (रघुः) लिपेः, यथावत्, ग्रहणेन, नदीमुखेन, समुद्रमिव, वाङ्मयम्, आविशत् ॥ २८ ॥

(टीका) वृत्तचूलः = जातचूडाकर्म्मा सन्, चलकाकपक्षकैः, = चञ्चलशिखण्डकैः, "काकपक्षः शिखण्डकः" इति हलायुधः, सवयोभिः = समानवयस्कैः, स्निग्धैरिति वा, अमात्यपुत्रैः = मन्त्रिसुतैः, अन्वितः = युक्तः, सः = रघुः, लिपेः = पञ्चाशद्वर्णात्मिकायाः, यथावत्, ग्रहणेन = सम्यग्बोधेन, नदीमुखेन = सरिद्द्वारेण, समुद्रमिव = उदधिमिव, वाङ्मयं = शब्दशास्त्रजालम्, आविशत् ॥ २८ ॥

(समासः) वृत्तं चूलं चूडाख्यं कर्म्म यस्य सः । काकपक्षा एव काकपक्षकाः, चलाः काकपक्षका येषां ते चलकाकपक्षकाः तैः । समानानि वयांसि येषान्ते तैः । अमात्यानाम्पुत्रा अमात्यपुत्रास्तैरमात्यपुत्रैः । नद्या मुखं नदीमुखं, तेन ॥ २८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) वृत्तचूलेन ········ अन्वितेन तेन ········ समुद्रः इव वाङ्मयं आविश्यत ॥ २८ ॥

(सरलार्थः) यथा पोतवणिजो नदीद्वारेण अनन्तसागरं गच्छन्ति

(अन्वयः) सः (रघुः) मेध्यां, रौरवीं, त्वचं, परिधाय, एव, मन्त्रवत्, अस्त्रम्, अशिक्षत, तद्गुरुः, क्षितौ, केवलम्, पार्थिवः, न "अभूत्" (किन्तु) सः, एकधनुर्धरः, अपि, अभूत्।

(टीका) सः = रघुः, मेध्यां = पवित्रां, रौरवीं = रुरुमृग-न्धिनीं, "रुरुर्महाकृष्णसारः," इति यादवः, त्वचं = चर्म्म, परि-वसित्वा, पितुः एव = पितृसकाशादेव, " दिलीपादित्यर्थः " म- = समन्त्रकम्, अस्त्रम् = आग्नेयाद्यस्त्रम्, अशिक्षत = शिक्षित तद्गुरुः, = रघुपिता दिलीपः, क्षितौ = धरण्यां, क्षोणीज्यां का- क्षितिः" इत्यमरः, केवलम्, एकपार्थिवः = अद्वितीयो राजा एव अभूत् = नासीत् " किन्तु " सः = दिलीपः, एकधनुर्धरः, अद्वि धानुष्कः, अपि आसीत् ॥ २१ ॥

(समासः) रुरोरियं रौरवी तां। तस्य गुरुस्तद्गुरुः। क्षिय क्षितिस्तस्यां। पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः एकश्चासौ पार्थिवश्चेत -पार्थिवः। एकश्चासौ धनुर्धरश्चेत्येकधनुर्धरः ॥ ३१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन······अशिक्ष्यत, तद्गुरुणा क्षितौ लम् एकपार्थिवेन न अभूयत, तेन एकधनुर्धरेण अपि अभूयत॥

(सरलार्थः) सः दिलीपः पृथिव्यां केवलम् असाधारणनृपति न बभूव किन्तु धनुर्वेदेऽपि अद्वितीयः विद्वान् आसीद् अतः स्वय निजं सुतं धनुर्वेदमध्यापयामास। रघुरपि सरहस्यं दिव्यास्त्र यथाशास्त्रं तत एव अधीतवान् ॥ २१ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) दिलीप केवल चक्रवर्ती राजा ही न था कि पृथ्वी में अद्वितीय धनुर्धारी भी था इसलिये राजपुत्र रघु ने मृगछाला ओढ़कर अपने पिता से ही सरहस्य अस्त्रविद्या पढ़ी ॥२

महोक्षतां वत्सतरः स्पृशन्निव द्विपेन्द्रभावं कलभः श्रयन्निव।
रघुः क्रमाद्यौवनभिन्नशैशवः पुपोष गाम्भीर्यमनोहरं वपुः ॥३२

(अन्वयः) रघुः, क्रमात्, यौवनभिन्नशैशवः, "सन्" महोक्ष स्पृशन्, वत्सतरः, इव, द्विपेन्द्रभावं, श्रयन्, कलभः, इव, गाम्भी -मनोहरं, वपुः, पुपोष ॥ ३२ ॥

---

* धत्ते त्वचं रौरवीमित्येवं समार्थः श्लोकांशः।

† रुरुश्चित्रमृगः।

=केशान्ताख्यसंस्कारस्य* अनन्तरं=पश्चात्, अस्य रघोः, वि
हदीक्षां=पाणिपीडनक्रियां, "विवाहसंस्कारमिति यावत्,
"विवाहोपयमौ समौ। तथा "परिणयोद्वाहोपयामाः पाणिपीडनम्
इत्यमरः, निरवर्तयत्=संपादितवान्, दक्षसुताः=रोहिण्यादय
तमोनुदं=चन्द्रमिव, "चन्द्राग्न्यर्कास्तमोनुदः" इत्यमरः, नरे
कन्याः=राजेन्द्रसुताः, तं=पूर्वोक्तं, सत्पतिं=सत्स्वामिनम्, अवाप्य
प्राप्य, आबभुः=शुशुभिरे ॥ ३३ ॥

(समासः) गावः=लोमानि, "केशा इत्यर्थः" दीयन्ते
खण्ड्यन्तेऽस्मिन् कर्म्मणीति गोदानं, तस्य विधिस्तस्य। विवाह
दीक्षेति विवाहदीक्षा, तां। दक्षस्य सुता इति दक्षसुताः। तमो नुद
तीति तमोनुत् तं। नराणामिन्द्रो नरेन्द्रस्तेषां कन्या इति नरेन्द्रकन्या
सतां पतिरिति सत्पतिः संश्चासौ पतिरिति वा तम् ॥ ३३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अथ गुरुणा......विवाहदीक्षा निरवर्त्यत

(सरलार्थः) दिलीपः प्रथमं कुमारस्य रघोः केशान्तसंस्
विधाय अनन्तरं विवाहसंस्कारं कारितवान्। अश्विन्यादयो दक्ष
स्याश्चन्द्रं पतिं प्राप्य यथाऽऽनन्दं लेभिरे तथैव रघुपरिणीता
राजकन्या अपि तं सत्पतिं लब्ध्वा अमन्दमानन्दमलभन्त ॥ ३३ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) राजा दिलीप ने केशान्त संस्कार करने
उपरान्त उसका विवाह संस्कार किया जिस प्रकार चन्द्रमा को
प्राप्त कर दक्षकन्याएँ अत्यन्त शोभित हुई उसी प्रकार राजकन्या
भी उस उत्तम पति को पाकर अधिक शोभा को प्राप्त हुई ॥ ३३ ॥

युवा युगव्यायतबाहुरंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः।
वपुःप्रकर्षादजयद्गुरुं रघुस्तथापि नीचैर्विनयाददृश्यत ॥ ३४ ॥

(अन्वयः) युवा, युगव्यायतबाहुः, अंसलः, कपाटवक्षाः, परि
णद्धकन्धरः, रघुः, वपुःप्रकर्षात्, गुरुम्, अजयत्, तथापि, विनयात्
नीचैः अदृश्यत ॥ ३४ ॥

(टीका) युवा=तरुणः, युगव्यायतबाहुः=यानाङ्गदारुविशे
षवदायतभुजः, "यानाद्यङ्गे युगः पुंसि युगं युग्मे कृतादिषु" इत्य

* उक्तं च मनुना "केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते। राजन्यबन्धो
र्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥"



(सरलार्थः) पवनसाहाय्येन वह्निः यथा दुःसहो जायते, वनस्य शरत्कालस्य साहाय्येन सूर्य्यो यथा दुःसहो जायते : गजो यथा दुःसहो जायते, तथैव राजा दिलीपोऽपि रघोः साहाय्येन दुःसहतरो जातः ॥ ३७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) वायुरूप सारथी से अग्नि जिस असह्य होता है, मेघों के चले जाने से सूर्य जिस प्रकार होता है, मदोन्मत्त हाथी जैसे असह्य होता है, उसी प्रकार दिलीप भी रघु की सहायता से अत्यन्त असह्य हुआ ॥३७॥

नियुज्य तं होमतुरङ्गरक्षणे धनुर्धरं राजसुतैरनुद्रुतम् ।
अपूर्णमेकेन शतक्रतूपमः शतं क्रतूनामपविघ्नमाप सः ॥३८॥

(अन्वयः) शतक्रतूपमः, सः, (दिलीपः) राजसुतैः, अनु धनुर्धरं, तं, (रघुम्) होमतुरङ्गरक्षणे, नियुज्य, एकेन, क्रतूनां, शतम्, अपविघ्नम्, आप ॥३८॥

(टीका) शतक्रतूपमः = इन्द्रतुल्यः, सः = दिलीपः, राजसु सामन्तराजपुत्रैः, अनुद्रुतं = अनुगतं, धनुर्धरं = धानुष्कं, तं = होमतुरङ्गरक्षणे = आश्वमेधिकाश्वरक्षणे, "घोटकेऽपीतितुरगतु तुरङ्गमाः" इत्यमरः. नियुज्य = व्यापार्य, एकेन = एकसङ् केन क्रतुना, अपूर्णम् = एकोनं, क्रतूनाम् = अश्वमेधानां, श शतसंख्यापरिमाणम्, अपविघ्नं = विगतविघ्नं, "यथा स्या आप = प्राप ॥३८॥

(समासः) शतं क्रतवः यागा अस्य इति शतक्रतुः, सः उपमा य सः शतक्रतूपमः। राज्ञां सुताः राजसुतास्तैः। धनुषो धर इति धनु रस्तं। तुरेण (त्वरया) गच्छन्तीति तुरङ्गाः, होमार्थाः तुरङ्गा होमतु ङ्गास्तेषां रक्षणं तस्मिन्। अपगतो विघ्ना यस्मात्तदपविघ्नम् ॥३८

(वाच्यपरिवर्तनम्) शतक्रतूपमेन तेन ....आपे ॥३८॥

(सरलार्थः) इन्द्रतुल्यप्रतापो दिलीपः अनुचरभूतैर्माण्डलिकरा जकुमारैरनुगतं रघुं आश्वमेधिकाश्वरक्षणे नियुज्य क्रमेण एकोनश (नवनवतिसंख्याकम्) "९९" अश्वमेधान् निर्विघ्नं समाप्तिमनयत् ॥३८

(सरलार्थ हिन्दी) इन्द्र के समान प्रतापी राजा दिलीप रा कुमारों से युक्त धनुर्धारी रघु को अश्वमेध यज्ञ में छोड़े हुए अ

ी रक्षा के लिये नियुक्त कर क्रम से निन्यानवे यज्ञ निर्विघ्न समाप्त करता हुआ ॥३८॥

ततः परं तेन मखाय यज्वना तुरङ्गमुत्सृष्टमनर्गलं पुनः।
धनुर्भृतामग्रत एव रक्षिणां जहार शक्रः किल गूढविग्रहः ॥३९॥

(अन्वयः) ततः, परं यज्वना, तेन, (दिलीपेन) पुनः, मखाय, उत्सृष्टम्, अनर्गलं, तुरङ्गं, शक्रः, गूढविग्रहः, "सन्" धनुर्भृतां, रक्षिणाम्, अग्रतः, एव, जहार किल ॥३९॥

(टीका) ततः परं = एकोनशतयज्ञावाप्त्यनन्तरं, यज्वना = विधिनेष्टवता, "यज्वा तु विधिनेष्टवान्" इत्यमरः, तेन = दिलीपेन, पुनः = भूयः, मखाय = यज्ञाय, "यागङ्कर्तुमित्यर्थः" "यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः" इत्यमरः, उत्सृष्टं = विमुक्तं, अनर्गलं = अप्रतिबन्धं, स्वैरगतिमित्यर्थः, तुरङ्गम् = अश्वं, शक्रः = इन्द्रः, गूढविग्रहः = गुप्तकायः, "सन्" "अन्तर्हितशरीरः सन्" अर्थादात्मानं निगुह्य" धनुर्भृतां = धनुर्धारिणां, रक्षिणां = रक्षकाणाम्, अग्रतः = पुरस्ताद्, एव, जहार = अपहृतवान् ॥३९॥

(समासः) नास्त्यर्गला यस्य स तं अनर्गलं। गूढः विग्रहो यस्य सः। धनूंषि बिभ्रतीति तेषां ॥३९॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) ततः……पुनः मखाय उत्सृष्टः अनर्गलः तुरङ्गः शक्रेन गूढविग्रहेन (सता)……जह्रे ॥३९॥

(सरलार्थः) अथ एकोनशतयागसमाप्त्यनन्तरं दिलीपः पुनराश्वमेधिकम् अश्वं मुमोच, तदा पुरन्दरः प्रच्छन्नरूपः सन् धनुर्धारिणां रक्षकाणां पुरत एव तमश्वम् अपजहार ॥३९॥

(सरलार्थ हिन्दी) इसके अनन्तर १०० वाँ यज्ञ करने के लिये राजा दिलीप के छोड़े हुए घोड़े को इन्द्र गुप्त शरीर होकर रक्षकों के सामने से ही हरण करता हुआ ॥३९॥

विषादलुप्तप्रतिपत्ति विस्मितं कुमारसैन्यं सपदि स्थितं च तत्।
वसिष्ठधेनुश्च यदृच्छयागता श्रुतप्रभावा ददृशेऽथ नन्दिनी ॥४०॥

(अन्वयः) ततः, कुमारसैन्यं, सपदि, विषादलुप्तप्रतिपत्ति, विस्मितं, स्थितं, च अथ, श्रुतप्रभावा, यदृच्छया, आगता, वसिष्ठधेनुः, नन्दिनी, च ददृशे ॥४०॥

(टीका) ततः = अश्वहरणानन्तरं "अष्टत्रिंशच्छ्लोकोक्तम्" ...
रसैन्यं = रघुसेना, सपदि = सद्यः, "सद्यः सपदि तत्क्षणे" ...
विषादलुप्तप्रतिपत्ति = चेतोभङ्गविनष्टेतिकर्तव्यताकज्ञानम्, "अत ...
विस्मितं = साश्चर्य्यं "सत्" "निश्चलं" स्थितं, च, अथ = ...
श्रुतप्रभावा = विख्यातरघूत्पत्तिवरप्रदानरूपप्रतापा, ...
तम्या" इति वा, यदृच्छया = स्वेच्छया, "स्वेच्छा यदृच्छा स्व ...
स्वैरता चेति ते समाः" इति केशवः, नन्दिनी = नन्दिनीनाम्नी ...
धेनुः, च, ददृशे = दृष्टा, "द्वौ चकारौ तुल्यकालापेक्षां गमयतः ॥ ...

(समासः) सेना एव सैन्यं, कुमारस्य सैन्यमिति कु ...
विषादेन लुप्ता प्रतिपत्तिर्यस्य तद्विषादलुप्तप्रतिपत्ति । श्रुतः ...
यस्याः सा । वसिष्ठस्य धेनुरिति वसिष्ठधेनुः ॥ ४० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन कुमारसैन्येन ...
(सता) विस्मितेन स्थितम्........आगतां श्रुतप्रभावां ...
नन्दिनीं जनाः ददृशुः ॥ ४० ॥

(सरलार्थः) तस्य आश्वमेधिकाश्वस्य झटिति तिरोधानाद् ...
सैनिकाः यदा हतप्रभा ज्ञानशून्याश्च बभूवुः तदैव ...
वसिष्ठर्षेः होमधेनुः निजेच्छया तत्र समाययौ ॥ ४० ॥

(सरलार्थ हिन्दी) कुमार की सेना, सहसा घोड़े के लुप्त ...
अश्वमेध यज्ञ की पूर्तिरूप मनोरथ के भङ्ग होने के कारण ज्योंही ...
शून्य हुई (अर्थात् उस समयके उचित कर्तव्यका निश्चय न कर ...
त्योंही अपनी इच्छा से आई हुई वसिष्ठनन्दिनी दृष्टिगोचर हुई ॥

तदङ्गनिष्यन्दजलेन लोचने प्रमृज्य पुण्येन पुरस्कृतः सताम् ।
अतीन्द्रियेष्वप्युपपन्नदर्शनो बभूव भावेषु दिलीपनन्दनः ॥४१

(अन्वयः) सतां, पुरस्कृतः, दिलीपनन्दनः, पुण्येन, ...
ष्यन्दजलेन, लोचने, प्रमृज्य, अतीन्द्रियेषु, अपि, भावेषु, ...
दर्शनः, बभूव ॥ ४१ ॥

(टीका) सतां = सज्जनानां "मध्ये" पुरस्कृतः = पूजितः, दि ...
नन्दनः = रघुः, पुण्येन = पवित्रेण, तदङ्गनिष्यन्दजलेन = नन्दिन्य ...
ल्तिपयसा, लोचने = नयने "लोचनं नयनं नेत्रम्" इत्यमरः, प्र ...
= शोधयित्वा, अतीन्द्रियेषु = परोक्षेषु, अपि, भावेषु = वस्तुषु, ...
पन्नदर्शनः = प्राप्तसाक्षात्कारशक्तिः, बभूव = अभूत् ॥ ४१ ॥



(सरलार्थः) यदि नाम कश्चन खलो यज्ञादिधर्म्मकार्यस्य वि॰ करोति तदा किल लोकत्रयशासकेन त्वया एव सः दण्डनीयः किन्तु यदि स्वयं त्वमेव धर्मरक्षको भूत्वा धर्म्मिणां सत्क्रियाः वि॰ तदा लोके सत्कर्म्मकथैव अस्तमियात्, रक्षको भक्षको न तात्पर्यार्थः ॥ ४५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) आप को यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करने दुष्टों का नाश करना चाहिये और यदि आप ऐसा न कर स्वयं साधु महात्माओं के पुण्य कर्म में विघ्न करोगे तो यज्ञादि पुण्य ही नष्ट हो जायगा कोई इसका नाम भी न लेगा ॥ ४५ ॥

तदङ्गमग्र्यं मघवन्महाक्रतोरमुं तुरङ्गं प्रतिमोक्तुमर्हसि ।
पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम् ॥४६॥

(अन्वयः) हे मघवन्! तत्, (तस्मात्कारणात्) महाक्रतोः अग्र्यं, अङ्गं, अमुं, तुरङ्गं, प्रतिमोक्तुं, (त्वं) अर्हसि, श्रुतेः, पथः दर्शयितारः, ईश्वराः, मलीमसां, पद्धतिं, न आददते ॥ ४६ ॥

(टीका) हे मघवन्! = हे इन्द्र!, "इन्द्रो मरुत्वान्मघवा" मरः, तत् = तस्मात्कारणात्, महाक्रतोः = अश्वमेधस्य, अग्र्यं = सर्वमग्रचं = श्रेष्ठं, "प्रधानीभूतं" इति वा, अमुं = पुरोवर्तिनं, तुरङ्गं अश्वं, प्रतिमोक्तुं = उत्स्रष्टुं, "त्वं" अर्हसि = योग्यो भवसि, श्रुतेः वेदस्य, पथः = मार्गान्, दर्शयितारः = अवलोकयितारः, "उपदे॰ दर्शकाः" इति वा, ईश्वराः = निग्रहानुग्रहसमर्थाः, भवादृशाः, "मह इत्यर्थः" मलीमसां = मलदूषितां, "मलिनां" "निन्दितामिति "मलीमसं तु मलिनं कच्चरं मलदूषितम्" इत्यमरः, पद्धतिं = न नाददते = न स्वीकुर्वते ॥ ४६ ॥

(समासः) महांश्चासौ क्रतुरिति महाक्रतुस्तस्य । श्रूयते धर्मं नयेति श्रुतिः, तस्याः ॥ ४६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तत्..............हे मघवन्.......... त्वया अर्ह्यते ।..........दर्शयितृभिः ईश्वरैः मलीमसा पद्धति आदीयते ॥ ४६ ॥

(सरलार्थः) अस्मात्कारणात् हे इन्द्र ! मम पितुः अश्वमेधस्य प्रधानाङ्गभूतमिममश्वं देहि, धर्म्ममार्गप्रवर्तकाः भवादृशाः मह स्वयमेव धर्म्मकार्यविघातका भवितुं नार्हन्ति ॥ ४६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) हे इन्द्र ! मेरे पिता के अश्वमेध यज्ञ के प्रधान अङ्ग इस घोड़े को मुझे दे दीजिये । वेद मार्ग को बताने वाले सत्पुरुष बुरे मार्ग पर नहीं जाते ॥ ४६ ॥

इति प्रगल्भं रघुणा समीरितं वचो निशम्याधिपतिर्दिवौकसाम् ।
निवर्तयामास रथं सविस्मयः प्रचक्रमे च प्रतिवक्तुमुत्तरम् ॥४७॥

(अन्वयः) दिवौकसाम्, अधिपतिः, इति, प्रगल्भं, रघुणा, समीरितं, वचः, निशम्य, सविस्मयः (सन्), रथं, निवर्तयामास, उत्तरं, च प्रतिवक्तुं, प्रचक्रमे ॥ ४७ ॥

(टीका) दिवौकसां = देवानाम्, "अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः । सुपर्वाणः सुमनसस्त्रिदिवेशा दिवौकसः" इत्यमरः, अधिपतिः = इन्द्रः, इति = इत्थं, प्रगल्भं = प्रौढं, रघुणा = दिलीपपुत्रेण, समीरितं = उद्घुष्टं, वचः = वचनं, निशम्य = आकर्ण्य, सविस्मयः = साश्चर्यः, "सन्" रथं = स्यन्दनं, निवर्तयामास = परावर्तयामास, उत्तरं = रघुवचनोत्तरं च, प्रतिवक्तुं = कथयितुं, प्रचक्रमे = प्रारेभे ॥ ४७ ॥

(समासः) द्यौरोको येषान्ते तेषां । विस्मयेन सहितः सविस्मयः ॥ ४७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) दिवौकसाम् अधिपतिना........सविस्मयेन "सता" रथः निवर्तयाञ्चक्रे ॥ ४७ ॥

(सरलार्थः) रघोः इत्थं स्पर्धापूर्णं वचनमाकर्ण्य देवेन्द्रः साश्चर्यं रथं निवर्तयन् प्रतिवचनं (उत्तरं) वक्तुं प्रारेभे ॥ ४७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) रघु का ऐसा अहङ्कार युक्त वचन सुनकर अत्यन्त चकित होते हुए देवेन्द्र ने रथ लौटाया और उसको उत्तर देना आरम्भ किया ॥ ४७ ॥

यदात्थ राजन्यकुमार तत्तथा यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः ।
जगत्प्रकाशं तदशेषमिज्यया भवद्गुरुर्लङ्घयितुं ममोद्यतः ॥४८॥

(अन्वयः) हे राजन्यकुमार ! (त्वम्) यत्, आत्थ, तत्, तथा, तु, यशोधनैः, परतः, यशः, रक्ष्यम्, एव, भवद्गुरुः, जगत्प्रकाशम्, अशेषं, मम, तत्, (यशः, इज्यया, लंघयितुम्, उद्यतः, (अस्ति) ॥४८॥

सगराख्यस्य राज्ञः, सन्ततेः = सन्तानस्य, पद्व्यां = मार्गे "अयनं वर्त्ममार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः" इत्यमरः, सं-चरणं, मा निधाः = न स्थापय ॥ ५० ॥

(समासः) कपिलम् अनुकरोतीति कपिलानुकारी, तेन । अयन्त्वदीयस्तस्य ॥ ५० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अतः कपिलानुकारी अयं त्वदीयस्य इमम् अश्वं अपहृतवान्………त्वया………मा निधायि ॥ ५० ॥

(सरलार्थ) यथा पुरा यज्ञियम् अश्वमन्विष्यन्तः, अश्वापहारकः अयं इति वदन्तः सगरसुताः कपिलमहर्षेः क्रोधाग्निना भस्मी अभूवन् तथैव त्वमपि मदीयकोपानलेन भस्मीभूतो भविष्यसि सगरसुतमार्गानुकारी न भव ॥५० ॥

(सरलार्थ हिन्दी) पहले किसी समय सगर राजा की सन्तान यज्ञ में छोड़े हुए घोड़े को खोजती खोजती कपिल मुनि के आश्रम पर पहुँची वहाँ कपिल मुनि के पीछे घोड़े को बँधा देख कर "यही घोड़े का चुराने वाला है" इस प्रकार कहने वाले वे, उन महाराज के क्रोधाग्नि से जैसे भस्म किये गये उसी प्रकार तू भी मेरी क्रोधाग्नि से भस्म होगा इसलिये इस मार्ग को छोड़ कर लौट जा ॥ ५० ॥

ततः प्रहस्यापभयः पुरन्दरं पुनर्बभाषे तुरगस्य रक्षिता ।
गृहाण शस्त्रं यदि सर्ग एष ते न खल्वनिर्जित्य रघुं कृती भवान् ॥५१॥

(अन्वय) ततः, तुरगस्य, रक्षिता, प्रहस्य, अपभयः, "सन् पुनः, पुरन्दरं, बभाषे, " हे देवेन्द्र !," यदि, ते, एषः, सर्गः, (अस्ति) "तर्हि" शस्त्रं गृहाण, भवान्, रघुम्, अनिर्जित्य, कृती, न, भविष्यति खलु ॥ ५१ ॥

(टीका) ततः = इन्द्रप्रतिवचनश्रवणानन्तरं, तुरगस्य=अश्वस्य

मायोजिताः । पथि पुरुहूतस्तदश्वमपहृत्य पाताले योगस्थितस्य कपिलमहर्षेः पश्चात्संस्थाप्य अपलायितः । रक्षकाश्च सकलां महीमन्विष्यन्तः पातालमुपाजग्मुः । तत्र कपिलाश्रममागत्य तुरगं रश्मिषु संयतमवलोक्य कपिलमेवाश्वापहारकं मत्वा क्रुद्धाः सन्तस्तमप्राकृतवचोभिस्तिरस्कृतवन्तः । ततस्तेषां कलकलेन योगभङ्गादतिकुपितेन महर्षिणा सर्वे राजकुमारा भस्मीभूता अभूवन्निति पौराणिकी कथाऽनुसन्धेया ।

रक्षिता = रक्षकः, "रघुः" प्रहस्य हसित्वा, "प्रहासं कृत्वा" इति वा, अपभयः = विगतभयः, "सन्" "निर्भयः" इत्यर्थः, पुनः = भूयः, बभाषे = उवाच, हे "देवेन्द्र !" यदि चेत्, ते = तव, एषः = अश्वमोचनाभावरूपः, सर्गः = निश्चयः, "सर्गः स्वभावनिर्मोक्षनिश्चयाध्यायसृष्टिषु" इत्यमरः, (त्वां सगरसुतपदवीं नेष्यामीत्येवंरूपः सर्गः) "तदा" शस्त्रं = आयुधं, गृहाण = आदत्स्व, भवान् = त्वं, रघुं = मां, अनिर्जित्य = अपराभूय, कृती = कृतकृत्यः, न भविष्यति खलु ॥ ५१ ॥

(समासः) अपगतं भयं यस्मात् सः । शस्यतेऽनेनेति शस्त्रम् । कृतमनेनेति कृती ॥ ५१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अपभयेन तुरगस्य रक्षिता.........पुरन्दरः बभाषे । यदि ते एतेन सर्गेण "भूयते" तर्हि त्वया शस्त्रं गृह्यताम् भवता रघुम् अनिर्जित्य कृतिना न भविष्यते ॥ ५१ ॥

(सरलार्थः) ततः निर्भयः कुमारो रघुः उच्चैः अट्टहासं कृत्वा सगर्वम् इदम् अवोचद् यत् हे पुरन्दर ! यद्यहं अश्वमोचने प्रयतो भविष्यामि तदा त्वं मां सगरसुतपदवीं नेष्यसीत्येवं रूपस्तव निश्चयः स्यात्तदा युद्धाय सज्जो भव यावन्मां न जेष्यसि तावत्कृतकृत्यो न भविष्यसि ॥ ५१ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इसके अनन्तर रघु निर्भय हो धृष्टता के साथ बड़ी जोर से कहकहा मारकर हंसा और इन्द्र से बोला "हे इन्द्र ! यदि आपका यह निश्चय है कि मैं इस अश्व के छोड़ाने में प्रयत्न करूँ तो आप मुझे सगर राजा के पुत्रों के समान यदि अपनी क्रोधाग्नि से भस्म करोगे तो ठीक है आप शस्त्र ग्रहण करिये और युद्ध के लिये तयार होइये यह याद रखिये कि रघु को जीते बिना आप कृतकृत्य न होंगे ॥ ५१ ॥

स एवमुक्त्वा मघवन्तमुन्मुखः करिष्यमाणः सशरं शरासनम् ।
अतिष्ठदालीढविशेषशोभिना वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः ॥५२॥

(अन्वयः) सः, उन्मुखः, "सन्" मघवन्तम्, एवम्, उक्त्वा, शरासनं, सशरं, करिष्यमाणः, आलीढविशेषशोभिना, वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः, (सन्) अतिष्ठत् ॥ ५२ ॥

(टीका) सः = रघुः, उन्मुखः = ऊर्ध्वाननः, "सन्" मघवन्तं =

(वाच्यपरिवर्तनम्) रघोः.........हतेन अमर्षणेन गोत्रभिद
अपि.........अमोघः सायकः समधीयत ॥ ५३ ॥

(समासः) न मर्षितुं शीलं यस्य सः । गां (भूमिं) त्रायन्ते इति
गोत्राः, तान् भिनत्तीति गोत्रभित् । अम्बूनि ददतीत्यम्बुदाः, न-
वाश्च तेऽम्बुदाश्च नवाम्बुदास्तेषाम् अनीकं तस्य मुहूर्तं यल्लाञ्छनं
तस्मिन् । न मोघ इत्यमोघस्तम् अमोघम् ॥५३॥

(सरलार्थः) ततः प्रथमं रघुः इन्द्रस्य वक्षस्थलं लक्षीकृत्य एकं
शरं निचिक्षेप । तेनातिक्रुद्ध इन्द्रोऽपि धनुषि अन्वर्थं तीक्ष्णं शरं
योजयामास ॥५३॥

(सरलार्थ हिन्दी) मजबूत, बड़े और नोकीले रघु के बाण से
छाती में घाव होने के कारण अत्यन्त क्रुद्ध हो इन्द्र ने भी नूतन
मेघों के समूह को थोड़ी देर शोभा धारण करने वाले अपने
धनुष (इन्द्रधनु) पर सिद्ध बाण चढ़ाया ॥५३॥

दिलीपसूनोः स बृहद्भुजान्तरं प्रविश्य भीमासुरशोणितोचितः ।
पपावनास्वादितपूर्वमाशुगः कुतूहलेनेव मनुष्यशोणितम् ॥५४॥

(अन्वयः) भीमासुरशोणितोचितः, सः, आशुगः, दिलीपसूनोः,
बृहत्, भुजान्तरं, प्रविश्य, अनास्वादितपूर्वं, मनुष्यशोणितं, कुतूहलेन
इव, पपौ ॥५४॥

(टीका) भीमासुरशोणितोचितः = भयङ्करदैत्यरुधिरपरिचितः,
सः = शक्रमुक्तः, आशुगः = बाणः, दिलीपसूनोः = रघोः, बृहत् =
विशालं, भुजान्तरं = भुजमध्यप्रदेशं, "वक्षःस्थलम्" इत्यर्थः, प्रविश्य
= अन्तर्गत्य, अनास्वादितपूर्वं, अननुभूतपूर्वं, मनुष्यशोणितम् =
मनुष्यरुधिरं, "रुधिरेऽसृग्लोहितास्ररक्तक्षतजशोणितम्" इत्यमरः,
कुतूहलेन = कौतुकेन, इव, पपौ = पीतवान् ॥ ५४ ॥

(समासः) भीमाश्च तेऽसुराश्च इति भीमासुराः, तेषां शोणिते
उचित इति । आशु = क्षिप्रं गच्छतीत्याशुगः । दिलीपस्य सूनुरिति
दिलीपसूनुस्तस्य । भुजयोरन्तरमिति भुजान्तरं । पूर्वमास्वादितम्
अनास्वादितपूर्वं, न आस्वादितपूर्वम् इति अनास्वादितपूर्वम्, तत् ।
मनुष्याणां शोणितं मनुष्यशोणितं तद् ॥ ५४ ॥

प्रोत्साहनार्थकृताञ्जनेन कठिनाङ्गुलौ शक्रस्य भुजे कार्तिकेयसदृशपराक्रमशाली रघुरपि निजनामाङ्कितं बाणं निखातवान् ॥ ५५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इन्द्राणी के अति प्रिय इन्द्र की भुजा में रघु ने अपना बाण मारा ॥ ५५ ॥

जहार चान्येन मयूरपत्रिणा शरेण शक्रस्य महाशनिध्वजम् ।
चुकोप तस्मै स भृशं सुरश्रियः प्रसह्य केशव्यपरोपणादिव ॥५६॥

(अन्वयः) "रघुः" अन्येन, मयूरपत्रिणा, शरेण, शक्रस्य महाशनिध्वजं, जहार, सः, (इन्द्रः) च, सुरश्रियः, प्रसह्य, केशव्यपरोपणात्, इव, तस्मै, भृशं, चुकोप ॥ ५६ ॥

(टीका) "रघुः" अन्येन = इतरेण, मयूरपत्रिणा = मयूरपक्षवता, शरेण = बाणेन, शक्रस्य = पुरन्दरस्य, महाशनिध्वजं = दम्भोलिरूपं केतुं, "दम्भोलिरशनिर्द्वयोः" इत्यमरः, जहार = चिच्छेद, सः = इन्द्रः, च, सुरश्रियः = देवलक्ष्म्याः, प्रसह्य = हठात्, "बलात्" इति वा, केशव्यपरोपणात् = कचच्छेदनात्, "कचः केशः शिरोरुहः" इत्यमरः, इव, तस्मै = रघवे, भृशम् = अत्यन्तं, चुकोप = चुक्रोध॥५६॥

(समासः) मयूरस्य पत्रमस्यास्तीति मयूरपत्री, तेन । महांश्चासौ अशनिरिति महाशनिः, स एव, ध्वजस्तं । सुराणां श्रीरिति सुरश्रीः तस्याः । केशानां व्यपरोपणमिति केशव्यपरोपणं, तस्मात् ॥ ५६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन.......... ...महाशनिध्वजः जह्रे तेन भृशं चुकुपे ॥ ५६ ॥

(सरलार्थः) ततः रघुः पुनः अन्येन मयूरपक्षवता बाणेन स्वर्गेन्द्रवज्राकृति ध्वजम् अच्छिनत् । तत् ध्वजकर्तनं लक्ष्म्याः केशकर्तनमिव मत्वा सः रघोः उपरि अत्यन्तं चुक्रोध ॥ ५६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इसके अनन्तर रघु ने मोर पंख वाले दूसरे बाण से इन्द्र की वज्र सदृश पताका काटी इससे इन्द्र रघु पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ ॥ ५६ ॥

तयोरुपान्तस्थितसिद्धसैनिकं गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनैः ।
बभूव युद्धं तुमुलं जयैषिणोरधोमुखैरूर्ध्वमुखैश्च पत्रिभिः ॥५७॥

(अन्वयः) जयैषिणोः, तयोः (इन्द्ररघ्वोः,) उपान्तस्थितसि-

भीमदर्शनैः, अधोमुखैः, ऊर्ध्वमुखैः, च, पत्रिभिः, उपान्तस्थित-सिद्धसैनिकं, तुमुलं, युद्धं, बभूव ॥ ५७ ॥

(टीका) जयैषिणोः = अन्योन्यं विजयाभिलाषिणोः रघु-इन्द्रयोः, गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनैः = सपक्षसर्पवद्भयङ्कर... "सर्पः पृदाकुर्भुजगो भुजङ्गोऽहिर्भुजङ्गमः । आशीविषो विषधरः" इत्यमरः, अधोमुखैः = नम्राननैः, ऊर्ध्वमुखैः = ऊर्ध्वाननैः, पत्रिभिः बाणैः, उपान्तस्थितसिद्धसैनिकं = तटस्थदेवसैनिकरघुसैनिकं, तुमुलं = सङ्कुलं, "व्याप्तं" इति वा, युद्धं = रणं, बभूव = अभूत् ॥ ५७ ॥

(समासः) जयमिच्छत इति जयैषिणौ, तयोः । आशिषि दंष्ट्रे विषं येषान्ते आशीविषाः, गरुतः सन्ति येषां ते गरुत्मन्तः, गरुत्मन्तः ते आशीविषाश्च गरुत्मदाशीविषाः, तेषामिव भीमं दर्शनं येषान्तैः । अधो मुखानि येषान्ते तैः । ऊर्ध्वानि मुखानि येषान्ते तैः "वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्" इत्यमरः, सिद्धाश्च सैनिकाश्च सिद्धसैनिकाः, अन्तस्य समीपम् उपान्तम्, उपान्तयोः स्थिता इति उपान्तस्थिताः, उपान्तस्थिताः सिद्धसैनिकाः यस्मिन्तत् ॥ ५७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) उपान्तस्थितसिद्धसैनिकेन तुमुलेन युद्धेन बभूवे ॥ ५७ ॥

(सरलार्थः) एवं······विजयमभिकाङ्क्षिणोः तयोः रघुपुरन्दरयोः पक्षवन्तः पन्नगा इव पक्षयुक्तपक्षाः बाणाः भयं प्रसारयन्तः महता वेगेन इतस्ततः प्रचलन्तिस्म । इत्यनेतयोः परस्परं युद्धं समभूत् यथा रघुसैनिका इन्द्रसैनिकाश्च विस्मयेन तटस्था भूत्वा केवलं रणम् अवलोकयामासुः ॥ ५७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इस प्रकार विजय की अभिलाषा रखने वाले रघु और इन्द्र का युद्ध, पंखवाले सर्पों की समान भयङ्कर एक पक्ष से दूसरी पक्ष की ओर जाने वाले बाणों से व्याप्त, देव और रघु सैनिकों से घिरा हुआ होता रहा ॥ ५७ ॥

अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिस्तमाश्रयं दुष्प्रसहस्य तेजसः ।
शशाक निर्वापयितुं न वासवः स्वतश्च्युतं वह्निमिवाद्भिरम्बुदः ॥ ५८

...दंष्ट्रा तया विद्धो न जीवति । इति विषविद्या ।

(अन्वयः) वासवः, अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिः, दुष्प्रसहस्य तेजसः, आश्रयं, स्वतश्च्युतं, तं, रघुं, अम्बुदः, अद्भिः, "स्वतश्च्युतं" वह्निम् इव, निर्वापयितुं, न, शशाक ॥ ५८ ॥

(टीका) वासवः = इन्द्रः, अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिः = अतिनिर्बन्धप्रयुक्तास्त्रवर्षणैः, दुष्प्रसहस्य = दुःखेनापि सोढुमशक्यस्य, तेजसः = प्रतापस्य, आश्रयं = आधारं "अत्यन्तदुर्धरप्रतापशालिनं" इत्यर्थः, स्वतश्च्युतं = स्वतोनिर्गतं, तं, रघुं = कुमारं, "रघोरपि इन्द्रांशसम्भवत्वात्" अम्बुदः = जलदः, "मेघः" इत्यर्थः, अद्भिः = जलैः, स्वतश्च्युतं = स्वतो निर्गतं, वह्निमिव = वैद्युताग्निमिव, निर्वापयितुं = शमयितुं, न शशाक = शक्तो नाऽभूत् ॥ ५८ ॥

(समासः) अम्बूनि ददातीत्यम्बुदः । अस्त्राणां वृष्टय इति अस्त्रवृष्टयः, अतिप्रबन्धेन प्रहिताः अतिप्रबन्धप्रहिताः, अतिप्रबन्धप्रहिताः अस्त्रवृष्टयः अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टयः ताभिः । दुःखेन प्रसह्यत इति दुष्प्रसहं तस्य ॥ ५८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अम्बुदेन इव वासवेन ......शेके ॥ ५८ ॥

(सरलार्थः) यथा जलदः निरन्तरजलवर्षणेन स्वत एव निर्गतं वैद्युताग्निं शमयितुं न शक्नोति तथैव इन्द्रोऽपि आत्मनोऽशसम्भवं दुःसहतेजसः आश्रयभूतं तं रघुं निरन्तरशस्त्रधारासम्पातैः शमयितुं न समर्थोऽभूत् ॥ ५८ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे मेघ अपने से उत्पन्न वन्हि को (वैद्युताग्नि) वृष्टि द्वारा शान्त नहीं कर सकता । इसी प्रकार इन्द्र बराबर अस्त्रों को बरसा कर अत्यन्त दुःसह तेज के आधार और अपने ही अंश से पैदा हुए उस रघुको निवारण करने में समर्थ नहीं हो सका ॥ ५८ ॥

ततः प्रकोष्ठे हरिचन्दनाङ्किते प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीम् ।
रघुः शशाङ्कार्धमुखेन पत्रिणा शरासनज्यामलुनाद्बिडौजसः ॥५९॥

(अन्वयः) ततः, रघुः, हरिचन्दना[illegible] [illegible]ौजसः, प्रकोष्ठे, प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीं शरासनज्या[illegible] [illegible]खेन, पत्रिणा, [illegible]लुनात् ॥ ५९ ॥

(अन्वयः) वासवः, अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिः, दुष्प्रसहस्य तेजसः, आश्रयं, स्वतश्च्युतं, तं, रघुं, अम्बुदः, अद्भिः, "स्वतश्च्युतं" वह्निम् इव, निर्वापयितुं, न, शशाक ॥ ५८ ॥

(टीका) वासवः = इन्द्रः, अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिः = अतिनिर्बन्धप्रयुक्तास्त्रवर्षणैः, दुष्प्रसहस्य = दुःखेनापि सोढुमशक्यस्य, तेजसः = प्रतापस्य, आश्रयं = आधारं "अत्यन्तदुर्धरप्रतापशालिनं" इत्यर्थः, स्वतश्च्युतं = स्वतोनिर्गतं, तं, रघुं = कुमारं, "रघोरपि इन्द्रांशसम्भवत्वात्" अम्बुदः = जलदः, "मेघः" इत्यर्थः, अद्भिः = जलैः, स्वतश्च्युतं = स्वतो निर्गतं, वह्निमिव = वैद्युताग्निमिव, निर्वापयितुं = शमयितुं, न शशाक = शक्तो नाऽभूत् ॥ ५८ ॥

(समासः) अम्बूनि ददातीत्यम्बुदः । अस्त्राणां वृष्टय इति अस्त्रवृष्टयः, अतिप्रबन्धेन प्रहिताः अतिप्रबन्धप्रहिताः, अतिप्रबन्धप्रहिताः अस्त्रवृष्टयः अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टयः ताभिः । दुःखेन प्रसह्यत इति दुष्प्रसहं तस्य ॥ ५८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अम्बुदेन इव वासवेन......शेके ॥ ५८ ॥

(सरलार्थः) यथा जलदः निरन्तरजलवर्षणेन स्वत एव निर्गतं [वैद्]युताग्निं शमयितुं न शक्नोति तथैव इन्द्रोऽपि आत्मनोऽशसम्भवं [दुष्प्र]सहतेजसः आश्रयभूतं तं रघुं निरन्तरशस्त्रधारासम्पातैः शमयितुं [न] समर्थोऽभूत् ॥ ५८ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे मेघ अपने से उत्पन्न वन्हि को (वैद्यु[त अग्नि]) वृष्टि द्वारा शान्त नहीं कर सकता । इसी प्रकार इन्द्र बराबर [अस्त्रों] को बरसा कर अत्यन्त दुःसह तेज के आधार और अपने [के] अंश से पैदा हुए उस रघुको निवारण करने में समर्थ नहीं [हो स]का ॥ ५८ ॥

[ततः] प्रकोष्ठे हरिचन्दनाङ्किते प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीम् ।
[रघुः] शशाङ्कार्धमुखेन पत्रिणा शरासनज्यामलुनाद्विडौजसः ॥ ५९ ॥

(अन्वयः) ततः, रघुः, हरिचन्दनाङ्किते, विडौजसः, प्रकोष्ठे, [प्रमथ्य]मानार्णवधीरनादिनीं शरासनज्यां, शशाङ्कार्धमुखेन, पत्रिणा, [अलुन]ात् ॥ ५९ ॥

(सरलार्थः) हे देवेन्द्र ! यदि त्वम् अश्वस्य मोचनं न इच्छसि तर्हि मे पिता यथा इमम् अश्वम् बिना अपि शताश्वमेधयागानां फलं लभेत तथा क्रियताम् एवं कृते तव च मम च कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥ ६५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) हे स्वामिन् ! यदि आप घोड़ा छोड़ना उचित नहीं समझते हैं तो यज्ञदीक्षा में तत्पर मेरे पिता आपके घोड़ा न छोड़ने पर भी विधि पूर्वक ही समाप्त किए हुए अश्वमेध का पूर्ण फल पावें ॥ ६५ ॥

तथा च वृत्तान्तमिमं सदोगतस्त्रिलोचनैकांशतया दुरासदः ।
तवैव सन्देशहराद्विशांपतिः शृणोति लोकेश ! तथा विधीयताम् ॥६६॥

(अन्वयः) सदोगतः, त्रिलोचनैकांशतया, दुरासदः, विशांपतिः, (दिलीपः) यथा, तव, सन्देशहरात्, एव, इमं वृत्तान्तं, शृणोति, हे लोकेश ! (त्वया) तथा, विधीयताम् ॥ ६६ ॥

(टीका) सदोगतः = यज्ञसभागतः, त्रिलोचनैकांशतया = शिवांशमूर्तितया, दुरासदः = दुरधिगमः, विशांपतिः = नरपतिः, "दिलीपः" यथा = येन प्रकारेण, तव = भवतः, सन्देशहरात् = वाचिकहरात् "दूतादित्यर्थः" एव "सन्देशवाग्वाचिकं स्यात्" इत्यमरः, इमं = पूर्वोक्तं, वृत्तान्तं = वार्तां, "वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः" इत्यमरः, शृणोति = आकर्णयति, हे लोकेश ! = हे लोकपाल !, त्वया = भवता, तथा = तेन प्रकारेण, "येन प्रकारेण, भवतु, तथेत्यर्थः" विधीयताम् = क्रियताम् ॥ ६६ ॥

(समास) त्रीणि लोचनानि यस्य सः त्रिलोचनः, एकः अंशः एकांशः, त्रिलोचनस्यैकांश इति त्रिलोचनैकांशः, तस्य भावः तत्ता तया । दुःखेन आसादयितुं योग्य इति दुरासदः । सन्दिश्यत इति सन्देशस्तस्य हरस्तस्मात् । लोकानामीश इति लोकेशस्तत्सम्बुद्धौ ॥ ६६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) सदोगतेन……दुरासदेन पत्या……अयं वृत्तान्तः श्रूयते हे लोकेश तथा विधेहि ॥ ६६ ॥

(सरलार्थः) मम पिता दिलीपः त्रिलोचनस्य शङ्करस्य अंशभूतः अतस्तस्य तेजस अतिप्रदीप्तत्वात् साधारणजनस्तस्य समीपे गन्तुं

काञ्चनमूलदीप्त्यनुरञ्जितरघुकरशाखं, इषुं = बाणं, प्रतिसंहरन् = प्रतिनिवर्तयन्, नरेन्द्रसूनुः = दिलीपपुत्रः, "रघुः" प्रियंवदं = मधुरभाषिणं, सुरेश्वरं = पुरन्दरं, प्रत्यवोचत् ॥ ६४ ॥

(समासः) सुवर्णस्य पुङ्खः सुवर्णपुङ्खः तस्य द्युतिभिः रञ्जिता अङ्गुलयो यस्य सः तं । प्रतिसंहरतीति प्रतिसंहरन् । नराणामिन्द्रो नरेन्द्रस्तस्य सूनुरिति नरेन्द्रसूनुः । प्रियं वदतीति प्रियंवदः तं । ईशितुं शीलमस्येतीश्वरः सुराणामीश्वर इति सुरेश्वरस्तम् ॥ ६४ ॥

(सरलार्थः) ततः रघुः इन्द्रस्य एवं सान्त्ववचनमाकर्ण्य तूणीरात् अर्द्धनिष्कासितं शरं पुनः तूणीरे एव संस्थापयन् प्रियभाषिणं देवेन्द्रं मधुरया गिरा प्रत्युवाच ॥ ६४ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) राजकुमार रघु इन्द्रका ऐसा वचन सुनकर तरकस से आधे निकाले हुए बाण को फिर तरकस में ही रखकर मधुर वाणी से देवेन्द्र के प्रति बोला ॥ ६४ ॥

अमोच्यमश्वं यदि मन्यसे प्रभो ततः समाप्ते विधिनैव कर्मणि ।
अजस्रदीक्षाप्रयतः स मद्गुरुः क्रतोरशेषेण फलेन युज्यताम् ॥६५॥

(अन्वयः) हे, प्रभो, यदि, (त्वम्) अश्वं, अमोच्यं, मन्यसे, ततः, अजस्रदीक्षाप्रयतः, सः, मद्गुरुः, विधिना, एव कर्मणि, समाप्ते (सति) क्रतोः, अशेषेण, फलेन युज्यताम् ॥ ६५ ॥

(टीका) हे प्रभो != हे इन्द्र !, यदि चेत्, "त्वं" अश्वं = घोटकं, अमोच्यं = अत्याज्यं, मन्यसे = विचारयसि, "तर्हि" अजस्रदीक्षाप्रयतः = अनवरतयज्ञदीक्षानिरतः, सः, मद्गुरुः = मे पिता, "दिलीपः" विधिना एव = वेदोक्तप्रकारेणैव, अनुयुक्तकर्मानुष्ठानानुरूपेणेत्यर्थः, कर्म्मणि = अध्वरे, समाप्ते = पूर्णे, "सति" क्रतोः = यज्ञस्य, "यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः" इत्यमरः, अशेषेण = सम्पूर्णेन, फलेन, युज्यताम् = युक्तो भवतु ॥ ६५ ॥

(समासः) मोचयितुं योग्यः मोच्यः न मोच्य इत्यमोच्यस्तम् । न शेषो यस्य तदशेषन्तेन । अजस्रं दीक्षा अजस्रदीक्षा, तस्यां प्रयतः इति अजस्रदीक्षाप्रयतः । मम गुरुरिति मद्गुरुः ॥ ६५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) हे प्रभो ! त्वया अश्वः अमोच्यः मन्यते अजस्रदीक्षाप्रयतेन मद्गुरुणा .... युज्यताम् ॥ ६५ ॥

(सरलार्थः) हे देवेन्द्र ! यदि त्वम् अश्वस्य मोचनं न अभिलषसि तर्हि मे पिता यथा इमम् अश्वम् विना अपि शताश्वमेधयागानां सकलं फलं लभेत तथा क्रियताम् एवं कृते तव च मम च कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥ ६५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) हे स्वामिन् ! यदि आप घोड़ा छोड़ना उचित नहीं समझते हैं तो यज्ञदीक्षा में तत्पर मेरे पिता आपके घोड़ा न छोड़ने पर भी विधि पूर्वक ही समाप्त किए हुए अश्वमेध का पूरा फल पावें ॥ ६५ ॥

यथा च वृत्तान्तमिमं सदोगतस्त्रिलोचनैकांशतया दुरासदः ।
तवैव सन्देशहराद्विशांपतिः शृणोति लोकेश ! तथा विधीयताम् ॥६६॥

(अन्वयः) सदोगतः, त्रिलोचनैकांशतया, दुरासदः, विशांपतिः, (दिलीपः) यथा, तव, सन्देशहरात्, एव, इमं वृत्तान्तं, शृणोति, हे लोकेश ! (त्वया) तथा, विधीयताम् ॥ ६६ ॥

(टीका) सदोगतः = यज्ञसभागतः, त्रिलोचनैकांशतया = शिवांशमूर्तितया, दुरासदः = दुरधिगमः, विशांपतिः = नरपतिः, "दिलीपः" यथा = येन प्रकारेण, तव = भवतः, सन्देशहरात् = वाचिकहरात् दूतादित्यर्थः" एव "सन्देशवाग्वाचिकं स्यात्" इत्यमरः, इमं = वीकं, वृत्तान्तं = वार्तां, "वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः" इत्यमरः, शृणोति = आकर्णयति, हे लोकेश ! = हे लोकपाल !, त्वया = भवता, तथा = तेन प्रकारेण, "येन प्रकारेण, भवतु, तथेत्यर्थः" विधीयताम् = क्रियताम् ॥ ६६ ॥

(समास) त्रीणि लोचनानि यस्य सः त्रिलोचनः, एकः अंशः, एकांशः, त्रिलोचनस्यैकांश इति त्रिलोचनैकांशः, तस्य भावः तत्ता तया। दुःखेन आसादयितुं योग्य इति दुरासदः। सन्दिश्यत इति सन्देशस्तस्य हरस्तस्मात्। लोकानामीश इति लोकेशस्तत्सम्बुद्धौ ॥ ६६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) सदोगतेन……दुरासदेन पत्या……अयं वृत्तान्तः श्रूयते हे लोकेश तथा विधेहि ॥ ६६ ॥

(सरलार्थः) मम पिता दिलीपः त्रिलोचनस्य शङ्करस्य अंशभूतः अस्तस्य तेजस अतिप्रदीप्तत्वात् साधारणजनस्तस्य समीपे गन्तुं

न समर्थः, अतः हे इन्द्र! तवैव दूतः सफलं वृत्तान्तं गत्वा
निवेदयतु ॥ ६६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) हे लोकेश! सभा में बैठा हुआ राजा
वृत्तान्त को जैसे सुने वैसा उपाय भी आप ही करें ॥ ६६ ॥

तथेति कामं प्रतिशुश्रुवान् रघोर्यथागतं मातलिसारथिर्ययौ ।
नृपस्य नातिप्रमनाः सदोगृहं सुदक्षिणासूनुरपि न्यवर्तत ॥६७

(अन्वयः) मातलिसारथिः, (इन्द्रः) रघोः, कामं, तथा, इ
प्रतिशुश्रुवान्, यथागतं, ययौ सुदक्षिणासूनुः, अपि, ...:
नृपस्य, सदोगृहं, न्यवर्तत ॥ ६७ ॥

(टीका) मातलिसारथिः = इन्द्रः, रघोः = ...
= मनोरथं, तथा इति = तथास्त्विति, प्रतिशुश्रुवान् = ...
"सन्" यथागतं, ययौ = जगाम, "येन मार्गेण
मार्गेण गत इत्यर्थः" सुदक्षिणासूनुः = रघुः, अपि
नातिप्रसन्नः सन्, नृपस्य = राज्ञो दिलीपस्य, सदोगृहं,
न्यवर्तत = परावर्तत ॥ ६७ ॥

(समासः) मातलिः सारथिर्यस्य सः । सुद...
सुदक्षिणासूनुः । प्रहृष्टं मनः अस्य इति प्रमनाः,
अतिप्रमनाः, न अति प्रमनाः नातिप्रमनाः ॥ ६७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) मातलिसारथिना ...
सूनुना नातिप्रमनसा सता ....न्यवर्तत ॥

(सरलार्थः) "एवमस्तु" इति रघोः ...
येन मार्गेण आयातस्तेनैव पथा इन्द्रे गते ...
सन् राज्ञो दिलीपस्य दीक्षामण्डपम् अगच्छत् ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इन्द्र रघु की बात को
मार्ग से आया था उसी मार्ग से गया । ...
घोड़े के न मिलने से विशेष प्रसन्न न होकर राजा
ओर लौटा ॥ ६७ ॥

तमभ्यनन्दत्प्रथमं प्रबोधितः प्रजेश्वरः ... न...
... पाणिना तदीयमङ्गं कु...

न समर्थः, अतः हे इन्द्र! तवैव दूतः सकलं वृत्तान्तं गत्व
निवेदयतु ॥ ६६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) हे लोकेश! सभा में बैठा हुआ राजा
वृत्तान्त को जैसे सुने वैसा उपाय भी आप ही करें ॥ ६६ ॥

तथेति कामं प्रतिशुश्रुवान् रघोर्यथागतं मातलिसारथिर्ययौ।
नृपस्य नातिप्रमनाः सदोगृहं सुदक्षिणासूनुरपि न्यवर्तत ॥६७

(अन्वयः) मातलिसारथिः, (इन्द्रः) रघोः, कामं, तथा,
प्रतिशुश्रुवान्, यथागतं, ययौ सुदक्षिणासूनुः, अपि, नातिप्रम
नृपस्य, सदोगृहं, न्यवर्तत ॥ ६७ ॥

(टीका) मातलिसारथिः = इन्द्रः, रघोः = दिलीपपुत्रस्य,
= मनोरथं, तथा इति = तथास्त्विति, प्रतिशुश्रुवान् = प्रतिज्ञात
"सन्" यथागतं, ययौ = जगाम, "येन मार्गेण आयातस्तै
मार्गेण गत इत्यर्थः" सुदक्षिणासूनुः = रघुः, अपि नातिप्रमना
नातिप्रसन्नः सन्, नृपस्य = राज्ञो दिलीपस्य, सदोगृहं, = दीक्षाम
न्यवर्तत = परावर्तत ॥ ६७ ॥

(समासः) मातलिः सारथिर्यस्य सः। सुदक्षिणाया सूनु
सुदक्षिणासूनुः। प्रहृष्टं मनः अस्य इति प्रमनाः, अत्यन्तं प्रम
अतिप्रमनाः, न अति प्रमनाः नातिप्रमनाः ॥ ६७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) मातलिसारथिना प्रतिशुश्रुवे, सुदक्षि
सूनुना नातिप्रमनस्का सता ....न्यवर्तत ॥ ६७ ॥

(सरलार्थः) "एवमस्तु" इति रघोः विज्ञापनाम् अङ्गी
येन मार्गेण आयातस्तेनैव पथा इन्द्रे गते रघुरपि नातिप्रसन्नचि
सन् राज्ञो दिलीपस्य दीक्षामण्डपम् अगच्छत् ॥ ६७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इन्द्र रघु की बात को मानता हुआ जि
मार्ग से आया था उसी मार्ग से गया। सुदक्षिणा का पुत्र रघु
घोड़े के न मिलने से विशेष प्रसन्न न होकर राजा की सभा स्थान
ओर लौटा ॥ ६७ ॥

तमभ्यनन्दत्प्रथमं प्रबोधितः प्रजेश्वरः शासनहारिणा हरेः।
परामृशन्हर्षजडेन पाणिना तदीयमङ्गं कुलिशव्रणाङ्कितम् ॥ ६८

(अन्वयः) हरेः, शासनहारिणा, प्रथमं, प्रबोधितः, प्रजेश्वरः, र्षजड़ेन, पाणिना, कुलिशव्रणाङ्कितम्, तदीयम् अङ्गम्, परामृशन्, तं (रघुं) अभ्यनन्दत् ॥ ६८ ॥

(टीका) हरेः = इन्द्रस्य, शासनहारिणा = आज्ञापालकेन, प्रथमं = पूर्वं, प्रबोधितः = विज्ञापितः, प्रजेश्वरः = राजा दिलीपः, हर्षजड़ेन = आनन्दशिशिरेण, "शिशिरो जड़ः" इत्यमरः, पाणिना = हस्तेन, कुलिशव्रणाङ्कितं = वज्रप्रहारचिह्नितं, तदीयं = रघुसम्बन्धि, अङ्गम् = शरीरं, परामृशन् = संस्पृशन्, तं = रघुं, अभ्यनन्दत् = प्रशशंस ॥ ६८ ॥

(समासः) शासनं हरतीति शासनहारी, तेन । प्रकर्षेण जायन्त इति प्रजाः तासां ईश्वर इति । जलति घनीभवतीति, जड़ः "डलयोरेकत्वस्मरणाज्जड़ः" हर्षेण जड़ इति हर्षजड़ः तेन । कुलिशस्य व्रणैः अङ्कितमिति कुलिशव्रणाङ्कितम्, तत् । तस्य इदं तदीयं, तत् । परामृशतीति परामृशन् ॥ ६८ ॥

(सरलार्थः) कुमारस्य रघोः आगमनात् प्रागेव इन्द्रदूतमुखात् सकलं वृत्तान्तं विदित्वा दिलीपः अधुना निकटमायातं प्रियं पुत्रं रघुं आलिङ्गनादिभिरभिनन्द्य अशनिक्षतचिह्नितं पुत्रस्य देहं हस्तेन परामृशन् आनन्दनिमग्नो बभूव ॥ ६८ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) रघु के आने के पूर्व ही इन्द्र के दूत द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त जाने हुए राजा दिलीप ने वज्र के घावों से चिन्हित प्रिय पुत्र के शरीर को हर्ष से कांपते हुए हाथ से स्पर्श कर उसकी अत्यन्त प्रशंसा की ॥ ६८ ॥

इति क्षितीशो नवतिं नवाधिकां महाक्रतूनां महनीयशासनः ।
समारुरुक्षुर्दिवमायुषः क्षये ततान सोपानपरम्परामिव ॥ ६९ ॥

(अन्वयः) महनीयशासनः, क्षितीशः, इति महाक्रतूनां, नवाधिकां, नवतिम्, आयुषः, क्षये, "सति" दिवं, समारुरुक्षुः, सोपानपरम्पराम्, इव, ततान ॥ ६९ ॥

(टीका) महनीयशासनः = = पूजनीयाज्ञः, क्षितीशः = भूपतिः, इति = इत्थम्, " अनेन प्रकारेण" महाक्रतूनाम् = अश्वमेधानां, नवाधिकां = नवोत्तरां, नवतिम् = एकोनशतम्, आयुषः = जीवितकालस्य

क्षये = नाशे, "सति" दिवं = स्वर्गं, समारुरुक्षुः = आरोढुम् अ
ढुमिच्छुः, सोपानपरम्पराम् = आरोहणपङ्क्तिम्, इव, तान्
विस्तारयति स्म ॥ ६९ ॥

(समासः) माननीयं शासनं यस्य सः। विनेरीत इति विनी
महान्तश्च ते क्रतवश्च इति महाक्रतवस्तेषां। नवभिरधिकेति नवाधि
तां। सोपानानां परम्परेति सोपानपरम्परा ताम् ॥ ६९ ॥

(सरलार्थः) माननीयाज्ञः दिलीपः शरीरान्ते स्वर्गारोह
सोपानपङ्क्तिमिव एकोनशतसंख्यकान् अश्वमेधयागान् शा
रीत्या समाप्तिमनयत् ॥ ६९ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इस प्रकार जीवन के अन्त में स्वर्ग च
की इच्छा करनेवाले राजा दिलीप ने सीढ़ियों की पंक्ति की सम
निन्यानवे अश्वमेध यज्ञ की पंक्ति पूरी की ॥ ६९ ॥

अथ सविषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम् ।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ॥ ७०

(अन्वयः) अथ, विषयव्यावृत्तात्मा, सः, (दिलीपः) यू
सूनवे, यथाविधि, नृपतिककुदं, सितातपवारणं, दत्त्वा, तया, दे
सह, मुनिवनतरुच्छायां, शिश्रिये, हि, (यतः) गलितवयसा
इक्ष्वाकूणाम्, इदं, कुलव्रतम्, "अस्ति" ॥ ७० ॥

(टीका) अथ = अनन्तरं, विषयव्यावृत्तात्मा = रूपरसगन्ध
दिविषयनिवृत्तचित्तः, सः = दिलीपः, यूने = तरुणाय, "वयस्
स्तरुणो युवा" इत्यमरः, सूनवे = सुताय, यथाविधि = यथाशास्
नृपतिककुदं = राजलक्ष्म, "चिन्हमिति यावत्" "ककुद्वत् कक
श्रेष्ठे वृषाङ्के राजलक्ष्मणि" इति विश्वः, सितातपवारणं = शुभ्रच्छ
दत्त्वा = अर्पयित्वा, तया देव्या = सुदक्षिणया, सह = सा
मुनिवनतरुच्छायां = तपोवनवृक्षच्छायां, "यत्र वने मुनयः निवसन्
तन्मुनिवनं" शिश्रिये = आश्रितवान्, हि = यस्मात्कारणात्, गलि
-वयसां = क्षीणावस्थानां, "वृद्धानाम्" इत्यर्थः, इक्ष्वाकूणाम्

इक्ष्वाकुवंशसमुद्भवानां राज्ञाम्, इदं = वनगमनं, कुलव्रतं = कुलाचारः, अस्तीति शेषः ॥ ७० ॥

(समासः) विषयेभ्यः व्यावृत्तः आत्मा यस्य सः । नॄन् पातीति नृपतिः तस्य ककुदं नृपतिककुदं, तत् । आतपस्य वारणमिति आतपवारणं, सितञ्च तदातपवारणमिति सितातपवारणं, तत् । मुनीनां वनं मुनिवनं तस्य तरव इति मुनिवनतरवः, तेषां छाया तां । गलितानि वयांसि येषां तेषां । कुलस्य व्रतम् इति कुलव्रतम् ॥ ७० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अथ विषयव्यावृत्तात्मना तेन.........अनेन कुलव्रतेन भूयते ॥ ७० ॥

(सरलार्थः) अथ वृद्धः सः दिलीपः सुयोग्यं तं रघुं साम्राज्ये अभिषिच्य स्वयञ्च सर्वान् सांसारिकविषयान् परित्यज्य वानप्रस्थाश्रमं स्वीकृत्य पारमार्थिकश्रेयोलाभाय सुदक्षिणया सह तपोवनगमनं करोत् । वृद्धावस्थायाम् इक्ष्वाकुवंशीयानाम् अयमेव कुलाचारः ॥ ७० ॥

(सरलार्थ हिन्दी) अन्त में संसार से विरक्त होकर राजा दिलीप ने प्रिय पुत्र रघु को विधि पूर्वक राजचिह्न, श्वेतच्छत्र, चँवर, मुकुट आदि देकर इक्ष्वाकुवंशियों की कुलप्रथा के अनुसार अपनी धर्मपत्नी रानी सुदक्षिणा के सहित मुनिवन के वृक्षों की छाया का आश्रय लिया ॥ ७० ॥

श्रीकालिदासकविवर्यविनिर्मितेऽस्मिन्
काव्ये वरे हि रघुवंशमिति प्रसिद्धे ।
राज्याभिषेकमभिजन्म रघोरुदीर्य
सर्गः समाप्तिमगमद्रुचिरस्तृतीयः ॥

चतुर्थः सर्गः ।

स राज्यं गुरुणा दत्तं प्रतिपद्याधिकं बभौ ।
दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः ॥ १ ॥

(अन्वयः) सः, (रघुः) गुरुणा, दत्तं, राज्यं, प्रतिपद्य, दिनान्ते, सवित्रा, निहितं, तेजः (प्रतिपद्य) हुताशनः, इव, अधिकं बभौ ॥ १ ॥

(टीका) सः (रघुः) गुरुणा (पूज्येन पित्रा) दत्तं (अर्पितं, "वितीर्णं" इति वा) राज्यं (प्रजापालनात्मकं राजकर्म, आधिपत्यम् इति वा) प्रतिपद्य (प्राप्य) दिनान्ते (सायङ्काले) सवित्रा (सूर्येण) निहितं (निक्षिप्तं) "स्थापितं" वा, तेजः (कान्तिं) प्राप्य, हुताशनः (अग्निः) इव (यथा) अधिकं (अत्यन्तं) बभौ (रेजे) ॥१॥

(समासः) दिनस्य अन्त इति दिनान्तस्तस्मिन् । हुतम् अश्नातीति हुताशनः । राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम् ॥ १ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन......हुताशनेन इव अधिकं बभे ॥ १ ॥

(सरलार्थः) यथा वह्निः सायं सूर्यतेजः समधिगम्य अधिकं प्रदीप्तो भवति तथैव रघुरपि पितुः सकाशाद् राज्यं लब्ध्वा परमं तेजोऽलभत ॥ १ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) दिन के अन्त में सूर्य से तेज पाकर जिस प्रकार अग्नि शोभा प्राप्त करता है उसी प्रकार पिता का दिया हुआ राज पाकर वह रघु अधिक शोभायमान हुआ ॥ १ ॥

दिलीपानन्तरं राज्ये तं निशम्य प्रतिष्ठितम् ।
पूर्वं प्रधूमितो राज्ञां हृदयेऽग्निरिवोत्थितः ॥ २ ॥

(अन्वयः) दिलीपानन्तरं, राज्ये, तं, (रघुं) प्रतिष्ठितं, निशम्य, पूर्वं, राज्ञां, हृदये, प्रधूमितः, (अग्निः) "साम्प्रतं" उत्थितः इव, (अभूत्) ॥ २ ॥

(टीका) दिलीपानन्तरं (राज्ञो दिलीपस्य पश्चात्) राज्ये (राजकर्मणि) तं (रघुं) प्रतिष्ठितं (कृताभिषेकं) "अवस्थितं" इति वा, निशम्य (श्रुत्वा) पूर्वं (दिलीपसमये) राज्ञां (नृपाणां) हृदये (हृदि) प्रधूमितः (सञ्जातधूमः) अग्निः (सन्तापवह्निः) "अग्निर्वैश्वानरो वह्निः" इत्यमरः, "इदानीम्" उत्थितः (प्रज्वलितः) इव, अभूत् (बभूव) ॥ २ ॥

(समासः) दिलीपस्य अनन्तरमिति दिलीपानन्तरम्। प्रकर्षेण धूमोऽस्य सञ्जात इति प्रधूमितः ॥ २ ॥

(सरलार्थः) दिलीपानन्तरं रघुं राज्याधिरूढमुपश्रुत्य प्रतिस्पर्द्धिनां राज्ञां हृदये पूर्वतोऽप्यधिकसन्तापोऽभवत् ॥ २ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) राजाओंके हृदयमें मानों पहलेकी धधकती हुई आग रघुको राज्यपर बैठा सुनकर प्रज्वलित सी हुई ॥ २ ॥

पुरुहूतध्वजस्येव तस्योन्नयनपङ्क्तयः ।
नवाभ्युत्थानदर्शिन्यो ननन्दुः सप्रजाः प्रजाः ॥ ३ ॥

(अन्वयः) सप्रजाः, प्रजाः, पुरुहूतध्वजस्य, इव, तस्य, (रघोः) नवाभ्युत्थानदर्शिन्यः (अत एव) उन्नयनपङ्क्तयः, (सत्यः) ननन्दुः ॥३॥

(टीका) सप्रजाः (ससन्तानाः) प्रजाः (जनाः) [1]पुरुहूतध्वजस्य (इन्द्रकेतोः) इव, "इन्द्रमहोत्सवस्य इव, इत्यर्थः, तस्य (रघोः) [2]नवाभ्युत्थानदर्शिन्यः (नूतनाभ्युदयाऽवलोकिन्यः) "अत एव" उन्नयनपङ्क्तयः (ऊर्ध्वावलोकनासक्तनेत्रमालाः) "ऊर्ध्वावलोकनतत्परा इत्यर्थः" "सत्यः" ननन्दुः (आनन्दमापुः) ॥ ३ ॥

(समासः) प्रकर्षेण जायन्त इति प्रजाः ताभिः सहिताः सप्रजाः। पुरु (बहुलं) हूतं (आह्वानं यज्ञेषु) अस्य सः पुरुहूतः, पुरूणि (बहूनि) हूतानि (नामानि) यस्य स इति वा पुरुहूतः, पुरुहूतस्य ध्वजः पुरुहूतध्वजः, तस्य। नवञ्च तदभ्युत्थानमिति नवाभ्युत्थानं, नवाभ्युत्थानं पश्यन्तीति नवाभ्युत्थानदर्शिन्यः। उद् नयनानां पङ्क्तयो यासां ताः ॥ ३ ॥

---

१ गजाकरं चतुःस्तम्भं पुरद्वारे प्रतिष्ठितम्।
पौराः कुर्वन्ति शरदि पुरुहूतं महोत्सवम् ॥
२ अभिषिक्तो हि राजा नवेन्द्रध्वजस्य यदा स्वपुरं प्रदक्षिणीकरोति तदेति भावः।

(वाच्यपरिवर्तनम्) सप्रजाभिः प्रजाभिः.........नयाभ्युत्थान दर्शनीभिः जनघनपङ्क्तिभिः ननन्दे ॥ ३ ॥

(सरलार्थः) शरदि इन्द्रध्वजमुत्थितं दृष्ट्वा यथा सर्वाः प्रजा नन्दन्ति, तथैव रघोरभ्युदयमवलोकयन्त्यः सर्वाः परमां मुदमवापुः ॥ ३ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इन्द्रकी पताका की समान उसके नवीन ऐश्वर्यको देखकर उसकी प्रजा आनन्दको प्राप्त हुई ॥ ३ ॥

सममेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना ।
तेन सिंहासनं पित्र्यमखिलं चारिमण्डलम् ॥ ४ ॥

(अन्वयः) द्विरदगामिना, तेन, (रघुणा) पित्र्यं सिंहासनम्, अखिलम्, अरिमण्डलं, च, "एतत्" द्वयं, समम्, एव, समाक्रान्तम् ॥ ४ ॥

(टीका) द्विरदगामिना (गजगामिना) "दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः । मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी" इत्यमरः, तेन (रघुणा) पित्र्यं (जनकसम्बन्धि) सिंहासनं (सिंहचिह्नितमासनं) "नृपासनम्" इत्यर्थः, अखिलं (सकलं) अरिमण्डलं (वैरिराष्ट्रं) च, "एतत्" द्वयं (द्विसङ्ख्याकं) समम् एव (युगपदेव) समाक्रान्तम् (अधिष्ठितम्) ॥ ४ ॥

(समासः) द्वौ रदौ यस्य सः द्विरदः, स इव गच्छतीति द्विरदगामी तेन । द्विरदेन गच्छतीति तेन द्विरदगामिनेति [illegible] "[illegible]" । पितुरागतं पित्र्यं [illegible] आसनं सिंहासनम्, सिंहाकारम् आसनमिति वा । अरीणां मण्डलम् अरिमण्डलम् । [illegible] समाक्रान्तम् ॥ ४ ॥

([illegible]) द्विरदगामी सः [illegible] समाक्रान्तवान् ।

(सरलार्थः) गजगामिना तेन राज्यासनं, सकलं शत्रुमण्डलं [illegible] ॥ ४ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) रघुने पूर्वजोंका सिंहासन (राज्यासन) और [illegible] शत्रुमण्डलको [illegible] अपने अधीन किया ॥ ४ ॥

छायामण्डललक्ष्येण तमदृश्या किल स्वयम् ।
पद्मा पद्मातपत्रेण भेजे साम्राज्यदीक्षितम् ॥ ५ ॥

(अन्वयः) पद्मा, स्वयम्, अदृश्या, (सती) साम्राज्यदीक्षितं, ं, छायामण्डललक्ष्येण भेजे किल ॥ ५ ॥

(टीका) पद्मा (लक्ष्मीः) "लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा" इत्यमरः, वयं, अदृश्या (अलक्ष्या) "सती" साम्राज्यदीक्षितं (मण्डलाधित्याभिषिक्तं) तं (रघुं) छायामण्डललक्ष्येण (कान्तिपुञ्जानुमेयेन) ग्मातपत्रेण (कमलच्छत्रेण) भेजे (सिषेवे) ॥ ५ ॥

(समासः) द्रष्टुं योग्या दृश्या, न दृश्येत्यदृश्या । दीक्षा तञ्जाता अस्य सः दीक्षितः, सम्यग् राजते असौ सम्राट्, सम्राजः भावः साम्राज्यं तस्मिन्दीक्षितः साम्राज्यदीक्षितस्तम् । छायायाः मण्डलम् छायामण्डलं तेन लक्ष्यमिति छायामण्डललक्ष्यं, तेन । आतपात्त्रायत इत्यातपत्रं पद्ममेवातपत्रमिति पद्मातपत्रं तेन ॥ ५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) पद्मया स्वयम् अदृश्यया सत्या साम्राज्यदीक्षितः सः भेजे ॥ ५ ॥

(सरलार्थ) राज्यासनोपविष्टस्य तस्य शिरसि लक्ष्मीरप्रकटरूपा सती स्वयं कमलच्छत्रं धृतवती । "लक्ष्मीर्हि पद्मातपत्रेण सम्राजं सेवते" इत्यागमात् । अन्यथा कथमेतादृशीं कान्तिसम्पत्तिः सम्भवितुं शक्नोति ॥ ५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) राज्यासनपर बैठे हुए उसको मानो लक्ष्मी ने अप्रगटरूप होकर कान्तिमण्डल से अनुमान होनेवाले कमल के छत्र से आप ही सेवन किया ॥ ५ ॥

परिकल्पितसान्निध्या काले काले च वन्दिषु ।
स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती ॥ ६ ॥

(अन्वयः) काले, काले, वन्दिषु; परिकल्पितसान्निध्या, सरस्वती, च, स्तुत्यं, तं (रघुं) अर्थ्याभिः, स्तुतिभिः, उपतस्थे ॥ ६ ॥

(टीका) काले काले (सर्वेष्वपि योग्यकालेषु) वन्दिषु (स्तुतिपाठकेषु) परिकल्पितसान्निध्या (कृतसन्निधाना) "सती" स्तुत्यं (स्तुतियोग्यं) तं (रघुं) अर्थ्याभिः (अर्थयुक्ताभिः) "सत्याभिः" इति वा, स्तुतिभिः (स्तोत्रैः) उपतस्थे (भेजे) ॥ ६ ॥

(समासः) परिकल्पितं सान्निध्यं यया सा । स्तोतुं योग्यः स्तुत्यः तम् । अर्थाद् अनपेता अर्थ्यास्ताभिः ॥ ६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)......परिकल्पितसान्निध्यया सरस्वत्या च स्तुत्यः सः.........उपतस्थे ॥ ६ ॥

(सरलार्थः) " तथा " उचितावसरे सरस्वती स्तुतिपाठकान साहाय्यार्थं तेषां समीपवर्तिनी भूत्वा स्तोतुं योग्यं तं यथार्थैः स्तुति वाक्यैः सेवयामास ॥ ६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) "और" समय समय पर सरस्वती; स्तुति पाठकों की सहायता के लिये उनको निकटवर्तिनी होकर स्तुति करने योग्य (रघु) को अर्थवान् स्तुतियों से विभूषित करती हुई ॥ ६ ॥

मनुप्रभृतिभिर्मान्यैर्भुक्ता यद्यपि राजभिः ।
तथाप्यनन्यपूर्वेव तस्मिन्नासीद्वसुन्धरा ॥ ७ ॥

(अन्वयः) यद्यपि, वसुन्धरा, मान्यैः, मनुप्रभृतिभिः, राजभिः भुक्ता, (बभूव) तथापि, तस्मिन्, (रघौ) अनन्यपूर्वा, इव, आसीत् ॥ ७ ॥

(टीका) यद्यपि, वसुन्धरा (पृथिवी) "सर्वंसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा। गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी" इत्यमरः, मान्यैः (माननीयैः) मनुप्रभृतिभिः (मन्वादिभिः) राजभिः (नृपैः) भुक्ता (उपभुक्ता) (अभूत्) तथापि, तस्मिन् (रघौ) अनन्यपूर्वा (नेतरोपभुक्ता) इव, आसीत् (अभवत्) ॥ ७ ॥

(समासः) वसूनि धरतीति वसुन्धरा। मनुः प्रभृतिः (आदिः) येषान्ते मनुप्रभृतयस्तैः। अन्यः पूर्वो यस्याः सा अन्यपूर्वा न अन्यपूर्वा भवतीत्यनन्यपूर्वा। मानितुं योग्या मान्यास्तैः ॥ ७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)........यद्यपि राजभिः भुक्तया वसुन्धरया बभूवे तथापि तस्मिन् अनन्यपूर्वया इव अभूयत ॥ ७ ॥

(सरलार्थः) वसुन्धरा यद्यपि मान्यैर्मन्वादिभिः राजभिरुपभुक्ताऽसीत् तथापि सा तस्मिन् प्रथमपतिकेवाऽनुरक्ताऽभूत् ॥ ७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) पृथ्वी यद्यपि मन्वादि पूज्य राजाओं से भोगी हुई थी तो भी उसने दूसरे से न भोगी हुई कामिनी की तरह रघु में विशेष अनुराग को प्रकाश किया ॥ ७ ॥

स हि सर्वस्य लोकस्य युक्तदण्डतया मनः ।
[illegible] दक्षिणः ॥ ८ ॥

(अन्वयः) हि, सः, (रघुः) युक्तदण्डतया, नातिशीतोष्णः, दक्षिणः, नभस्वान्, इव, सर्वस्य, लोकस्य, मनः, आददे ॥ ८ ॥

(टीका) हि (निश्चितं) सः (रघुः) युक्तदण्डतया (यथापराधदण्डदानेन) नातिशीतोष्णः (समशीतोष्णः) दक्षिणः (दक्षिणदिक्सम्भवः) नभस्वान् (पवनः) "नभस्वद्वातपवन" इत्यमरः, "मलयानिलः" इत्यर्थः, इव (यथा) सर्वस्य (सकलस्य) लोकस्य (जनस्य) मनः (मानसं) "हृन्मानसं मनः" इत्यमरः, आददे (जहार) ॥८॥

(समासः) युक्तो दण्डो यस्य स युक्तदण्डः, तस्य भावः युक्तदण्डता तया। न अतिशीतः, अत्युष्णो वा भवतीति नातिशीतोष्णः॥८॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन युक्तदण्डतया, न अतिशीतोष्णेन दक्षिणेन नभस्वता इव.........आददे ॥ ८ ॥

(सरलार्थः) अनुष्णाशीतः दक्षिणानिल इव सः, अपराधोचितदण्डदानेन सर्वेषां मनांसि अहरत् ॥ ८ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) न बहुत ठण्डे और न बहुत गरम दक्षिणानिल (वायु) के समान अपराध के अनुसार दण्ड देने के कारण उसने सब लोगों को अपने वश में किया ॥ ८ ॥

मन्दोत्कण्ठाः कृतास्तेन गुणाधिकतया गुरौ ।
फलेन सहकारस्य पुष्पोद्गमे इव प्रजाः ॥ ९ ॥

(अन्वयः) तेन, प्रजाः, गुरौ, सहकारस्य, फलेन, पुष्पोद्गमे, इव, गुणाधिकतया, मन्दोत्कण्ठाः, कृताः ॥ ९ ॥

(टीका) तेन (रघुणा) प्रजाः (जनाः) गुरौ (दिलीपविषये) सहकारस्य (आम्रस्य) "आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः" इत्यमरः, फलेन, पुष्पोद्गमे (पुष्पोदये) इव (यथा) गुणाधिकतया (औदार्यधैर्यप्रतापादिगुणाधिक्येन) मन्दोत्कण्ठाः (न्यूनौत्सुक्याः) कृताः (विहिताः) ॥ ९ ॥

(समासः) पुष्पस्य उद्गम इति पुष्पोद्गमस्तस्मिन् । गुणैरधिकः, गुणाधिकः, तस्य भावः गुणाधिकता, तया । मन्दा उत्कण्ठा यासां ताः मन्दोत्कण्ठाः ॥ ९ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) प्रजाभिः मन्दोत्कण्ठाभिः [illegible] ॥ ९ ॥

(सरलार्थः) लोकाः अभिनवोद्गमं [illegible] प्राप्य पुनः [illegible] यथा न [illegible] प्रजाः [illegible]

(अन्वयः) पञ्चानाम्, भूतानां, गुणाः, अपि उत्कर्षं, पुपुषुः, तस्मिन्, नवे, महीपाले, सर्वं, नवम् इव अभवत् ॥ ११ ॥

(टीका) पञ्चानां (पञ्चसङ्ख्यकानां) भूतानां (पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां) [1]गुणाः (गन्धादयः) अपि, उत्कर्षं (आतिशय्यं) पुपुषुः (प्रापुः) तस्मिन् (रघौ) नवे (नवीने) महीपाले (राज्ञि) "सति" सर्वं (अशेषं) "वस्तु" नवं (नूतनम्) इव (यथा) अभवत्॥११॥

(समासः) महीं पालयतीति महीपालः तस्मिन् ॥ ११ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) गुणैः उत्कर्षः पुपुषे...सर्वेण नवेन अभूयत ॥११॥

(सरलार्थः) तस्य प्रभावात् पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां गुणा अपि अपूर्वां गुण समृद्धिं लेभे तदा सर्वं वस्तु नवमिव अभवत् ॥ ११ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) पञ्चमहाभूतों के गुणों ने भी उन्नति प्राप्त की नये राजा के राज्य में सभी वस्तु नई सी हुई ॥ ११ ॥

यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा ।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥ १२ ॥

(अन्वयः) यथा, इन्द्रः, प्रह्लादनाद्, अन्वर्थः, भवति, यथा, तपनः, प्रतापाद्, अन्वर्थः (भवति) तथा, एव, सः, राजा, प्रकृतिरञ्जनाद्, अन्वर्थः, अभूत् ॥ १२ ॥

(टीका) यथा (येन प्रकारेण) चन्द्रः (इन्दुः) प्रह्लादनात् (आह्लादजननात्) "अन्वर्थो भवति" यथा "च" तपनः (सूर्यः) प्रतापात् सन्तापजननात्, "अन्वर्थो भवति" तथा तेन प्रकारेण, एव, सः, [2]राजा (रघुः) प्रकृतिरञ्जनात् (प्रजानुरागजननाद्) अन्वर्थः (सार्थकनामा) अभूद् (बभूव) ॥१२॥

(समासः) चन्दयति आल्हादयतीति चन्द्रः । तपतीति तपनः । राजते रञ्जयति वा प्रजाः इति राजा । (धातूनामनेकार्थत्वात् राजतेः

(१) पृथ्वी पञ्चगुणा तोयं चतुर्गुणमथानलः ।
त्रिगुणो द्विगुणो वायुर्वियदेकगुणं भवेत् ।

(२) वेणुतनयं पृथुमुद्दिश्य विष्णुपुराणे—
'पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ।
अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजेत्यभाषत इति ।

प्यादिविविधगुणगणविशिष्टं रघुं राजानं लब्ध्वा दिलीपं न प्रगसंस्मृः न च संस्मरुः ॥ ९ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे आम्रवृक्ष में जब तक फल नहीं आता उसका बौरही लोगों को प्यारा लगता है फल आने पर बौर में प्यार नहीं रहता उसी प्रकार राज्यासन पर बैठे रघु ने गुणों की अधिकता से अपने उत्पन्न होने के पूर्व पिता (दिलीप) में अत्यन्त बढ़ा हुआ प्रजा का प्रेम मन्द कर दिया ॥ ९ ॥

नयविद्भिर्नवे राज्ञि सदसच्चोपदर्शितम् ।
पूर्व एवाभवत् पक्षस्तस्मिन्नाभवदुत्तरः ॥ १० ॥

(अन्वयः) नयविद्भिः, नवे, राज्ञि, सद्, असत्, च, उपदर्शितम्, तस्मिन्, (रवौ) पूर्वः, एव, पक्षः, अभवत्, उत्तरः, पक्षः, न (अभवत्) ॥ १० ॥

(टीका) नयविद्भिः (नीतिशास्त्रज्ञैः) नवे (नूतने) "नवीनो नूतनो नवः" इत्यमरः, राज्ञि (नृपे विषये) "रवौ" सत् (धर्मयुद्धादिकम्) असत् (कपटयुद्धादिकं, च) उपदर्शितं (प्रोक्तं) तस्मिन् (राज्ञि रवौ) पूर्वः एव पक्षः (सत् पक्षः) "धर्मः पक्षः" इति वा, अभवत् (आसीत्) उत्तरः पक्षः (असत् पक्षः) "अधर्मः पक्षः" न अभवत् (नासीत्) ॥ १० ॥

(समासः) नयं विदन्ति ते नयविदस्तैः ॥ १० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) नयविदः नवे राज्ञि सत् असत् च उपदर्शितवन्तः तस्मिन् पूर्वेण एव पक्षेण अभूयत उत्तरेण न ॥ १० ॥

(सरलार्थः) नीतिशास्त्रार्थतत्वज्ञाः धर्मोऽधर्मश्चेति पक्षद्वयमुपदिदिशुः, परन्तु तेन आद्यः धर्मपक्ष एवाङ्गीकृतः, द्वितीयोऽधर्मपक्षस्तु न स्वीकृतः ॥ १० ॥

(सरलार्थ हिन्दी) नीति शास्त्र के तत्त्व को जानने वाले विद्वानों ने धर्म अधर्म दोनों पक्ष दिखलाये परन्तु रघु ने पहला ही पक्ष (धर्म पक्ष) ग्रहण किया दूसरा अधर्म पक्ष नहीं ॥ १० ॥

पञ्चानामपि भूतानामुत्कर्षं पुपुषुर्गुणाः ।
नवे तस्मिन्महीपाले सर्वं नवमिवाभवत् ॥ ११ ॥

(अन्वयः) पञ्चानाम्, भूतानां, गुणाः, अपि उत्कर्षं, पुपुषुः, तस्मिन्, नवे, महीपाले, सर्वं, नवम् इव अभवत् ॥ ११ ॥

(टीका) पञ्चानां (पञ्चसङ्ख्यकानां) भूतानां (पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां) [1]गुणाः (गन्धादयः) अपि, उत्कर्षं (आतिशय्यं) पुपुषुः (प्रापुः) तस्मिन् (रघौ) नवे (नवीने) महीपाले (राज्ञि) "सति" सर्वं (अशेषं) "वस्तु" नवं (नूतनम्) इव (यथा) अभवत् ॥ ११ ॥

(समासः) महीं पालयतीति महीपालः तस्मिन् ॥ ११ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) गुणैः उत्कर्षः पुपुषे...सर्वेण नवेन अभूयत ॥ ११ ॥

(सरलार्थः) तस्य प्रभावात् पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां गुणा अपि अपूर्वां गुण समृद्धिं लेभे तदा सर्वं वस्तु नवमिव अभवत् ॥ ११ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) पञ्चमहाभूतों के गुणों ने भी उन्नति प्राप्त की नये राजा के राज्य में सभी वस्तु नई सी हुई ॥ ११ ॥

यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा ।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥ १२ ॥

(अन्वयः) यथा, इन्द्रः, प्रह्लादनाद्, अन्वर्थः, भवति, यथा, तपनः, प्रतापाद्, अन्वर्थः (भवति) तथा, एव, सः, राजा, प्रकृतिरञ्जनाद्, अन्वर्थः, अभूत् ॥ १२ ॥

(टीका) यथा (येन प्रकारेण) चन्द्रः (इन्दुः) प्रह्लादनात् (आह्लादजननात्) "अन्वर्थो भवति" यथा "च" तपनः (सूर्यः) प्रतापात् सन्तापजननात्, "अन्वर्थो भवति" तथा तेन प्रकारेण, एव, सः, [2]राजा (रघुः) प्रकृतिरञ्जनात् (प्रजानुरागजननाद्) अन्वर्थः (सार्थकनामा) अभूद् (बभूव) ॥ १२ ॥

(समासः) चन्दयति आल्हादयतीति चन्द्रः । तपतीति तपनः । राजते रञ्जयति वा प्रजाः इति राजा । (धातूनामनेकार्थत्वात् राजतेः

---

(१) पृथ्वी पञ्चगुणा तोयं चतुर्गुणमथानलः ।
त्रिगुणो द्विगुणो वायुर्वियदेकगुणं भवेत् ।

(२) वेणुतनयं पृथुमुद्दिश्य विष्णुपुराणे—
'पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ।
अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजेत्यभाषत इति ।

कनिन्) प्रकृतेः रञ्जनम् इति प्रकृतिरञ्जनं, तस्मात्। अर्थमनुगतः इति अन्वर्थः ॥१२॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) यथा प्रह्लादनात् चन्द्रेण (भूयते) प्रतापात् तपनेन, तथैव.........तेन राज्ञा अन्वर्थेन अभावि ॥१२॥

(सरलार्थः) यथा इन्दुः प्रह्लादकरैः करैः सकलान् जनान् आह्लादयन् स्वनाम सार्थकं करोति यथा च तेजोनिधिः सूर्यः स्वतेजसा जनान् तापयन् स्वनाम सार्थकं करोति तथैवायं रघुरपि सकलाः प्रजाः रञ्जयन् राजेति नाम सार्थकञ्चकार ॥१२॥

(सरलार्थं हिन्दी) जैसे आनन्द देने से चन्द्रमा, तपाने से तपन (सूर्य) अपने २ नामको यथार्थनाम करते हुए। उसी प्रकार प्रजा के रंजन करने से वह रघु भी अपने को यथार्थ नाम वाला राजा बनाता हुआ ॥१२॥

कामं कर्णान्तविश्रान्ते विशाले तस्य लोचने।
चक्षुष्मत्ता तु शास्त्रेण सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना ॥१३॥

(अन्वयः) तस्य, विशाले, लोचने, कामं, कर्णान्तविश्रान्ते, (आस्ताम्) (तस्य) चक्षुष्मत्ता, तु, सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना, शास्त्रेण, (आसीत्) ॥१३॥

(टीका) तस्य (रघोः) विशाले (विस्तीर्णे) लोचने (नयने) कामं (भृशं) कर्णान्तविश्रान्ते (श्रोत्रप्रान्तगते) "आस्ताम्", "तस्य" चक्षुष्मत्ता (नेत्रवत्त्वं) तु, "नयनफलन्त्वित्यर्थः" सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना (दुर्विज्ञेयकर्तव्यार्थप्रकाशिना) शास्त्रेण (धर्म्ममार्गादिप्रतिपादकेन वेदादिना) आसीत् ॥१३॥

(समासः) कर्णयोः अन्तः कर्णान्तः तयोः विश्रान्ते। चक्षुरस्त्यस्येति चक्षुष्मान् तस्य भावः चक्षुष्मत्ता। कार्यस्य अर्थः कार्यार्थः, सूक्ष्मश्चासौ कार्यार्थः सूक्ष्मकार्यार्थः, तं पश्यतीति सूक्ष्मकार्यार्थदर्शी तेन ॥१३॥

(सरलार्थः) यद्यपि तस्य दीर्घे नेत्रे कर्णपर्यन्ते आस्तां तथापि सः ताभ्यामेव नेत्रशाली न बभूव किन्तु परोक्षार्थदर्शिना ज्ञानरूपेण चक्षुषा चक्षुष्मान् अभवत् ॥१३॥

(सरलार्थं हिन्दी) यद्यपि उसके नेत्र कान तक फैले हुए थे

परन्तु वह कर्मको सूक्ष्मविधि दिखानेवाले शास्त्रसेही आँखों वाला अपने को समझता था ॥१३॥

लब्धप्रशमनस्वस्थमथैनं समुपस्थिता ।
पार्थिवश्रीर्द्वितीयेव शरत्पङ्कजलक्षणा ॥१४॥

(अन्वयः) लब्धप्रशमनस्वस्थम्, एनं पङ्कजलक्षणा, शरद्, द्वितीया, पार्थिवश्रीः इव, समुपस्थिता ॥१४॥

(टीका) लब्धप्रशमनस्वस्थं (प्राप्तराज्यस्थिरीकरणसमाहितचित्तम्) एनं (रघुं) पङ्कजलक्षणा (कमलचिह्ना) शरद् (शरदृतुः) द्वितीया अन्या) पार्थिवश्रीः (राजलक्ष्मीः) इव, समुपस्थिता (प्राप्ता) ॥

(समासः) लब्धस्य प्रशमनमिति लब्धप्रशमनं तेन स्वस्थ इति लब्धप्रशमनस्वस्थः, तं । पङ्कजं लक्षणं यस्याः सा । पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः, तस्य श्रीः इति पार्थिवश्रीः ॥१४॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) लब्धप्रशमनस्वस्थः एषः पङ्कजलक्षणया शरदा द्वितीयया पार्थिवश्रिया इव उपतस्थे ॥१४॥

(सरलार्थः) शत्रूणामुन्मूलनेन स रघुः राज्ये शान्तिं संस्थाप्य यदा समाहितचित्तः सञ्जातः, तदा शरद् विकसितकमलरूपैर्लक्षणैरपरा राजलक्ष्मीरिव तं सेवितुं समागता ॥१४॥

(सरलार्थ हिन्दी) स्वराज्यको यथोचित रक्षा करनेसे शान्तचित्तवाले उसको दूसरी राज्यलक्ष्मीको समान कमलचिह्नवाली शरद् ऋतु प्राप्त हुई ॥१४॥

निर्वृष्टलघुभिर्मेघैर्मुक्तवर्त्मा सुदुःसहः ।
प्रतापस्तस्य भानोश्च युगपद्व्यानशे दिशः ॥ १५ ॥

(अन्वयः) निर्वृष्टलघुभिः, मेघैः, मुक्तवर्त्मा, (अतएव) सुदुःसहः, तस्य, (रघोः) प्रतापः, भानोः, च, (प्रतापः) युगपत्, दिशः, व्यानशे ॥ १५ ॥

(टीका) निर्वृष्टलघुभिः (जलवर्षणागुरुभिः) मेघैः (घनैः) मुक्तवर्त्मा (त्यक्तमार्गः) "अतएव" सुदुःसहः (सोढुमशक्यः) तस्य (रघोः) भानोः (सूर्यस्य) च, प्रतापः (तेजः) "प्रतापस्तापतेजसोः" इति मेदिनी । युगपत् (एककालमेव) दिशः (आशाः) व्यानशे (व्याप)॥१५॥

(समासः) निःशेषं वृष्टाः निर्वृष्टाः "अतएव" लघवः तैः। मुक्त वर्त्म येन सः। सुतरां दुःखेन सोढुं शक्य इति सुदुःसहः ॥ १५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)……मुक्तवर्त्मना सुदुःसहेन तस्य, भानोः प्रतापेन युगपत् दिशः व्यानशिरे ॥ १५ ॥

(सरलार्थः) शरत्समये यदा जलाभावतया मेघाः सूर्यमार्गान् तिरोदधुः ततः प्रखरकिरणस्य रवेः तेजोभिः अखिलमाकाशमण्डल मापूरितं, तदा दिशां जेतुमिच्छया प्रस्थितो रघुरपि समस्तमे दिङ्मण्डलं तेजोभिः पूरयामास ॥ १५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जल वर्षाकर बादलों ने सूर्य का मार्ग छोड़ (आकाश निर्मेघ हुआ) अतएव सूर्य का तथा मेघों के हट जाने दिग्विजय के लिये निकले हुए रघु का प्रताप एक साथ दिशाओं व्याप्त हुआ ॥ १५ ॥

वार्षिकं सञ्जहारेन्द्रो धनुर्जैत्रं रघुर्दधौ।
प्रजार्थसाधने तौ हि पर्यायोद्यतकार्मुकौ ॥ १६ ॥

(अन्वयः) इन्द्रः, वार्षिकं, धनुः, संजहार, रघुः, जैत्रं, (धनुः) दधौ, हि, तौ, प्रजार्थसाधने, पर्यायोद्यतकार्मुकौ, (आस्ताम्) ॥१६॥

(टीका) इन्द्रः, (शक्रः) वार्षिकं (वर्षाकालोद्भवं) धनुः (चापं) सञ्जहार (संयतवान्) रघुः, जैत्रं (विजयशीलं) "धनुः" दधौ (धारयामास) हि (यस्मात् कारणात्) तौ (इन्द्ररघू) प्रजार्थसाधने (वृष्टिधनलक्षणप्रयोजनसाधनविषये) पर्य्यायोद्यतकार्मुकौ (क्रमश उद्यतचापौ) आस्ताम् ॥ १६ ॥

(समासः) इन्दतीति इन्द्रः। वर्षासु भवं वार्षिकं। प्रजानाम् अर्थः प्रजार्थस्तेषां साधनं तस्मिन्। पर्यायेण उद्यते कार्मुके याभ्यां तौ ॥ १६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) इन्द्रेण वार्षिकं धनुः सञ्जह्रे, रघुणा जैत्रं धनुः दधे, हि ताभ्यां……पर्यायोद्यतकार्मुकाभ्यां अभूयत ॥ १६ ॥

(सरलार्थः) शरत्काले पुरन्दरः निजं वार्षिकं धनुः संहृतवान् तथा रघुः दिग्विजयाय विजयशीलं धनुः दधार। एवं तौ इन्द्ररघू पर्य्यायेण स्वं स्वं धनुः उद्यम्य प्रजाहिततत्परौ आस्ताम् ॥ १६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इन्द्र ने वर्षा का धनुष रक्खा, रघु ने विजय

ा (धनु) उठाया इस तरह वे दोनों प्रजाही के कार्यसाधन में ारी बारी से धनुपधारी हुए ॥ १६ ॥

पुण्डरीकातपत्रस्तं विकसत्काशचामरः ।
ऋतुर्विडम्बयामास न पुनः प्राप तच्छ्रियम् ॥ १७ ॥

(अन्वयः) पुण्डरीकातपत्रः, विकसत्काशचामरः, (शरत्) ऋतुः, तं, (रघुं) विडम्बयामास, पुनः, तच्छ्रियं, न, प्राप ॥ १७ ॥

(टीका) पुण्डरीकातपत्रः (सिताम्भोजच्छत्रः) " पुण्डरीकं सिताम्भोज " इत्यमरः, विकसत्काशचामरः (प्रफुल्लितकाशव्यजनः) ऋतुः (शरदृतुः) तं (रघुं) विडम्बयामास (अनुचकार) पुनः (किन्तु) तच्छ्रियं (रघुशोभां) "रघुरामणीयकं" न प्राप ॥ १७ ॥

(समासः) आतपात्त्रायत इति आतपत्रं, पुण्डरीकमेव आतपत्रं यस्य सः । विकसन्ति काशान्येव चामराणि यस्य सः । तस्य श्रीस्तच्छ्रीस्तां तच्छ्रियम् ॥ १७ ॥

(वाच्य०) पुण्डरीकात'''त्रेण'''चामरेण ऋतुना सः विडम्बयाञ्चक्रे तच्छ्रीः न प्रापे ॥१७॥

(सरलार्थः) महाराजो रघुर्यथा छत्रचामरादिराजचिह्नैर्बभौ तथैव शरत्समयोऽपि श्वेतकमलरूपराजच्छत्रेण प्रफुल्लितकाशरूपेण चामरेण च भाति स्म । इत्थं शरद् रघोः राजचिह्नान्यनुचकार परं तस्य लोकोत्तरां राजशोभां लब्धुं न शशाक ॥ १७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) कमलछत्रवाली और खिले हुए काशरूप (एक प्रकार का बड़ा २ कुशा) चँवरवाली शरद ऋतु ने रघुका अनुकरण किया परन्तु उसकी शोभा प्राप्त न कर सकी ॥१७॥

प्रसादसुमुखे तस्मिंश्चन्द्रे च विशदप्रभे ।
तदा चक्षुष्मतां प्रीतिरासीत्समरसा द्वयोः ॥१८॥

(अन्वयः) तदा, प्रसादसुमुखे, तस्मिन्, (रघौ) विशदप्रभे, चन्द्रे, च द्वयोः, चक्षुष्मतां, प्रीतिः, समरसा, आसीत् ॥१८॥

(टीका) तदा [तस्मिन् समये] प्रसादसुमुखे [प्रसन्नतया सुन्दरानने] "मनोहरमुखे" इति वा, "प्रसादस्तु प्रसन्नता" इत्यमरः, तस्मिन् [रघौ] विशदप्रभे [धवलकान्तौ] चन्द्रे [इन्दौ] च द्वयोः [उभयोरपि विषये] चक्षुष्मतां [नेत्रवतां] " जनानाम् " इत्यर्थः, प्रीतिः [प्रेम] समरसा [तुल्यस्वादा] आसीत् ॥१८॥

(समासः) प्रसादेन शोभनं मुखं यस्य सः प्रसादसुमुखः तस्मिन्। प्रकर्षेण भातीति प्रभा, विशदा प्रभा यस्य सः विशदप्रभः तस्मिन्। रसने (आस्वादने) इति रसः, समः (समानः) रसः यस्याः सा समरसा। चक्षूंषि सन्ति एषां ते चक्षुष्मन्तः तेषाम् ॥१८॥

(वाच्यपरिवर्तनम् (तदा ·············· प्रीत्या ·············· समरसया अभूयत ॥ १८ ॥

(सरलार्थः) निर्मलाकाशे चन्द्रं वीक्ष्य दर्शकानां चित्तेषु यथा विशेषानन्दः सञ्जायते तथैव सर्वेषामुपरि सदा प्रसन्नं तं रघुं दृष्ट्वा प्रजानां मनःसु परमानन्दो जातः ॥ १८ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) उस समय प्रसन्नमुख राजा रघु में और स्वच्छ कान्तिवाले चन्द्रमा में प्रजा का प्रेम समान रूप को धारण करता हुआ ॥ १८ ॥

हंसश्रेणीषु तारासु कुमुद्वत्सु च वारिषु ।
विभूतयस्तदीयानां पर्यस्ता यशसामिव ॥ १९ ॥

(अन्वयः) तदीयानां, यशसां, विभूतयः, हंसश्रेणीषु, तारासु कुमुद्वत्सु, वारिषु, च पर्यस्ता इव, (आसन्) ॥ १९ ॥

(टीका) तदीयानां [रघुसम्बन्धिनां] यशसां [कीर्तीनां] "यशः कीर्तिः समज्ञा च" इत्यमरः, विभूतयः [ऐश्वर्याणि] "शुभ्रत्वलक्षणानि" हंसश्रेणीषु [राजहंसपंक्तिषु] तारासु [नक्षत्रेषु] "नक्षत्रमृक्षं भं तारा" इत्यमरः, कुमुद्वत्सु [कुमुदयुक्तेषु] वारिषु [पानीयेषु] च, पर्यस्ताः [प्रसारिताः] इव [किम्] इति उत्प्रेक्षा ॥ १९ ॥

(समासः) तस्य इमानि तदीयानि तेषां। हंसानां श्रेण्यः हंसश्रेण्यः, तासु। कुमुदानि एषु सन्ति इति कुमुद्वन्ति तेषु ॥ १९ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तदीयानां यशसां विभूतिभिः··············
पर्यस्ताभिः इव अभूयत ॥ १९ ॥

(सरलार्थः) दिग्विजयप्रवृत्तस्य रघोरुज्ज्वलाः कीर्तिराशयः हंससलिलतारकाकुमुदेषु प्रसृता इव विराजन्ते स्म ॥ १९ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) हंसों की पंक्तियों में, ताराओं में, और कमल वाले जलों में मानो रघु की ही शुभ्र यश विभूति फैली हुई थी ॥ १९ ॥

इक्षुच्छायानिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम् ।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः ॥ २० ॥

मम्" [illegible], "कुम्भयोनेः [[illegible]]" "[illegible] [illegible] [illegible]" रघोः, "[illegible]" अभिभवाशङ्कि [[illegible]] [illegible] [illegible] मनः [[illegible]] चुक्षुभे [[illegible]] ॥ २१ ॥

(समासः) महत् ओजो यस्य सः महौजाः तस्य । कुम्भो योनिर्यस्य स तस्य । अभिभवस्य आशङ्कि अभिभवाशङ्कि ॥ २१ ॥

([illegible]) [illegible] [illegible]·········अभिभवाशङ्कि मनस्या चुक्षुभे ॥ २१ ॥

(भावार्थः) शरदः अगस्त्ये नक्षत्रे समुदिते सर्वेषामपि जलानि निर्मलानि जातानि, एवमेव रघुविजयाय उद्यते सति शत्रुभूपालानाम् अन्तःकरणानि भयमलिनानि जातानि ॥ २१ ॥

(भावार्थ हिन्दी) शरद में अगस्त्य के उदय से जल स्वच्छ हुआ और रघु के उदय से पराभव की शङ्का मानकर शत्रुओं के हृदय मलिन हुआ ॥ २१ ॥

मदोदग्राः ककुद्मन्तः सरितां कूलमुद्रुजाः ।
लीलाखेलमनुप्रापुर्महोक्षास्तस्य विक्रमम् ॥ २२ ॥

(अन्वयः) मदोदग्राः, ककुद्मन्तः, सरितां, कूलमुद्रुजाः, महोक्षाः तस्य, (रघोः) लीलाखेलं, विक्रमम्, अनुप्रापुः ॥ २२ ॥

(टीका) मदोदग्राः (मदोन्मत्ताः) ककुद्मन्तः (सबलस्कन्धाः) सरितां (नदीनां) कूलमुद्रुजाः (तीरभेदकाः) महोक्षाः (महाकाय बलीवर्दाः) तस्य (रघोः) लीलाखेलं (विलाससुभगं) विक्रमं (पराक्रमं) अनुप्रापुः (अनुचक्रुः) "रघोर्विक्रमम् अनुगताः" इत्यर्थः, वृषपक्षे विक्रमः गतिविशेषः, रघुविक्रमोऽपि महोदयः ककुद्राजचिह्नं तद्युक्तः सन् यात्रायां करितुरगादिखुराघाताभिघातेन सरितां कूलभेदको भवतीति भावः ॥ २२ ॥

(समासः) मदेन उदग्रा इति मदोदग्राः । ककुद एषां सन्तीति ककुद्मन्तः । कूलानि उद्रुजन्ति इति कूलमुद्रुजाः । महान्तश्च ते उक्षाणश्च इति महोक्षाः । खेलतीति खेलः, लीलया अनायासेन खेलः लीलाखेलः तं लीलाखेलम् ॥ २२ ॥

---

२. अगस्त्योदये जलानि प्रसीदन्तीत्यागमः, शरदि अगस्त्यनक्षत्रोदयानन्तरं मेघा अपगच्छन्ति जलानि च निर्मलानि भवन्तीति ज्योतिर्विदश्च ।

(वाच्यपरिवर्तनम्) मदोदग्रैः ककुद्मद्भिः......मुद्रुजैः महोक्षैः तस्य लीलाखेलः, विक्रमः अनुमापे ॥ २२ ॥

(सरलार्थः) मदोन्मत्ताः मांसलाः बलीवर्दाः लीलया नदीतटानि उत्पाटयन्तः रघोर्विक्रममनुचक्रुः ॥ २२ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) मद से उन्मत्त और नदियों के तट तोड़ने वाले बड़े बड़े बैलों ने उसके खेल के पराक्रम का अनुकरण किया ॥ २२ ॥

प्रसवैः सप्तपर्णानां मदगन्धिभिराहताः ।
असूययेव तन्नागाः सप्तधैव प्रसुस्रुवुः ॥ २३ ॥

(अन्वयः) मदगन्धिभिः = सप्तपर्णानां प्रसवैः, आहताः, तन्नागाः, असूयया, इव सप्तधा, एव, प्रसुस्रुवुः ॥ २३ ॥

(टीका) मदगन्धिभिः (मदसदृशगन्धैः) सप्तपर्णानां (सप्तपर्ण-वृक्षाणां) " सप्तपर्णो विशालत्वक्शारदो विषमच्छदः " इत्यमरः, प्रसवैः (पुष्पैः) "स्यादुत्पादे फले पुष्पे प्रसवो गर्भमोचने" इत्यमरः, आहताः (ताडिताः) तन्नागाः (रघुगजाः) "मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी" इत्यमरः, असूयया (आहतिजनितेर्ष्ययेव) सप्तधा (सप्तप्रकारेण) एव, प्रसुस्रुवुः (मदक्षरणं चक्रुः) ॥२३॥

(समासः) मदस्य गन्ध इव गन्धो येषां ते मदगन्धयस्तैः । तस्य नागा इति तन्नागाः ॥२३॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)........आहतैः तन्नागैः प्रसुस्रुवे ॥२३॥

(सरलार्थः) रघोः करिणः प्रफुल्लितानां सप्तपर्णपुष्पाणां उत्कटं गन्धमाघ्राय तदेव अरण्यकरिणां मदजलगन्धम् अनुमन्यमानाः स्पर्द्धयेव सप्तभ्योऽङ्गेभ्यः[1] मदधारामक्षरन् ॥२३॥

(सरलार्थ हिन्दी) सप्तपर्ण नामक वृक्ष के फूलों के मदगन्ध को जंगली हाथी का मद समझ कर ही मानों उसके हाथियों ने ईर्षा से अपने सातों अङ्गों से मद बहाया ॥२३॥

---

१ तालुवक्षकपोलेभ्यः शाङ्कुन्मके तथा
रोमकुम्भकटिभ्यश्च दानं प्रक्षरति द्विपः ।
कराद्वान्दां नेत्राभ्यां च मदस्रुतिः । इति हस्तिशिक्षा ।

सरितः कुर्वती गाधाः पथश्चाश्यानकर्दमान् ।
यात्रायै चोदयामास तं शक्तेः प्रथमं शरत् ॥२४॥

(अन्वयः) सरितः, गाधाः, पथः, च, अश्यानकर्दमान् कुर्वती, (सती) शरत्, शक्तेः, प्रथमं, तं, (रघुं) यात्रायै, चोदयामास ॥२४॥

(टीका) सरितः (नदीः) गाधाः (स्वल्पजलाः) कुर्वती (विदधती) पथः (मार्गान्) च अश्यानकर्दमान् (शुष्कपङ्कान्) "कुर्वती" (सती) शरत्, शक्तेः, प्रथमं, तं, (रघुं) यात्रायै, चोदयामास ॥२४॥

(टीका) सरितः (नदीः) गाधाः (स्वल्पजलाः) कुर्वती (विदधती) पथः (मार्गान्) च अश्यानकर्दमान् (शुष्कपङ्कान्) "कुर्वती" सती, शरत् (शरदृतुः) शक्तेः (उत्साहशक्तेः) प्रथमं (प्राक्) यात्रायै (दण्डयात्रायै) दिग्विजयायेत्यर्थः, तं (रघुं) चोदयामास (प्रेरयामास) ॥२४॥

(समासः) अश्यानाः कर्दमा येषां ते अश्यानकर्दमास्तान् ।

(वाच्या०)……कुर्वत्या शरदा शक्तेः प्रथमं सः चोदयाञ्चक्रे ॥२४॥

(सरलार्थः) प्रखरैः सूर्यकिरणैः शुष्कसलिलतया सरितस्तरणशक्या जाताः, मार्गाश्च सुखेन गन्तुं योग्याः सञ्जाताः, एवम्भूतो रमणीयः समयस्तस्य मन्त्रप्रभावयुक्तस्य रघोः मनसि दिग्विजयाय उत्साहशक्तिमुद्दीपयामास ॥२४॥

(सरलार्थ हिन्दी) नदियोंको थाहवाली और मार्गको सूखा करनेवाली शरदऋतुने मानो उसे मनकी उत्साहशक्ति से पहलेही यात्रा निमित्त प्रेरणाकी ॥ २४ ॥

तस्मै सम्यग्घुतो वह्निर्वाजिनीराजनाविधौ ।
प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन हस्तेनेव जयं ददौ ॥ २५ ॥

(अन्वयः) वाजिनीराजनाविधौ, सम्यक्, हुतः, वह्निः, प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन, हस्तेन, इव, तस्मै, जयं, ददौ ॥ २५ ॥

(टीका) [1]वाजिनीराजनाविधौ (अश्वनीराजनाख्यशान्तिकर्मणि) सम्यक् (यथाशास्त्रं) "विधिवत्" इत्यर्थः, हुतः (तर्पितः)

---

१ द्वादश्यामष्टम्यां कार्तिकशुक्लस्य पञ्चदश्यां वा अश्वस्य गजस्य हि कुर्यान्नीराजनसंज्ञितां शान्तिम् । इति बृहत्संहिता ।

गजाश्वमङ्गलाय राजानः प्रयाणसमये नीराजनाविधिं कुर्वन्तीति व्यवहारोऽपीति ।

होमसमिद्ध इत्यर्थः, वह्निः (अग्निः) प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन (प्रदक्षिणपरिक्रमणज्वालाछलेन) "अत एव" हस्तेन (करेण) इव, तस्मै (रघवे) जयं (विजयं) ददौ (दत्तवान्) ॥ २५ ॥

(समासः) वाजीनां नीराजना वाजिनीराजना, तस्या विधिः वाजिनीराजनाविधिः तस्मिन् । प्रगता दक्षिणा (दिग्) यया सा प्रदक्षिणा प्रदक्षिणा च असौ अर्चिश्च प्रदक्षिणार्चिः सैव व्याजः तेन ॥२५॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) ....हुतेन वह्निना .... तस्मै जयः ददे ॥२५॥

(सरलार्थः) यदा रघुः विधिवद् आहुतिं वह्नौ ... तुरगादीनां नीराजनाख्यं कर्म अकरोत् तदा होमाग्निः ... कृत्य निजं ज्वालारूपं करं प्रसार्य तस्मै रघवे विजयं ददौ ॥२५॥

(सरलार्थ हिन्दी) अश्व-पूजन की विधि में ... हवन की हुई अग्नि ने दक्षिण ओर उठी हुई ज्वाला ... मानों उसको हाथों से विजय दिया ॥ २५ ॥

स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः ।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया ॥ २६ ॥

(अन्वयः) गुप्तमूलप्रत्यन्तः, शुद्धपार्ष्णिः, अयान्वितः ... षड्विधं, बलम्, आदाय, दिग्जिगीषया, प्रतस्थे ॥ २६ ॥

जेतुमिच्छा जिगीषा, दिशां जिगीषा दिग्जिगीषा, तया। षड् विधा यस्य तत् षड्विधं तत् ॥ २६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) गुप्तमूलप्रत्यन्तेन शुद्धपार्ष्णिना अयान्वितेन तेन.........प्रतस्थे ॥ २६ ॥

(सरलार्थः) सः रघुः प्रथमं निजराष्ट्रदुर्गाणां सर्वतोभावेन रक्षकान् नियुज्य यात्राकालयोग्यमखिलं मङ्गलञ्च विधाय "मौलं भृत्यः सुहृच्छ्रेणी द्विषदाटविकं बलम्" इति षड्विधं बलमादाय दिग्जिगीषया प्रस्थानमकरोत् ॥ २६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) विजययात्रा के पूर्व उसने अपने महलों और गढ़ों की रक्षा का प्रबन्ध किया और पीछे एक भी वैरी न छोड़ा जो कि उपद्रव करता। यात्रा समय उसने मंगलाचरण कर, और छः प्रकार का बल लेकर दिग्विजय के लिये प्रस्थान किया ॥ २६ ॥

अवाकिरन्वयोवृद्धास्तं लाजैः पौरयोषितः ।
पृषतैर्मन्दरोद्धूतैः क्षीरोर्मय इवाच्युतम् ॥ २७ ॥

(अन्वयः) वयोवृद्धाः, पौरयोषितः, लाजैः, मन्दरोद्धूतैः, पृषतैः, क्षीरोर्मयः, अच्युतम्, इव, तम्, अवाकिरन् ॥ २७

(टीकाः) वयोवृद्धाः (जरठाः, अधिकवयस्का इत्यर्थः) पौरयोषितः (नागरिकस्त्रियः) लाजैः (आचारलाजैः) पृषतैः (बिन्दुभिः) क्षीरोर्मयः (क्षीरसमुद्रतरङ्गाः) "भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा स्त्रियां वीचिरथोर्मिषु" इत्यमरः, अच्युतम् इव (नारायणमिव) तं (रघुं) अवाकिरन् (ववृषुः) ॥ २७ ॥

(समासः) वयसा वृद्धाः। पुरे भवाः पौराः, पौराणां योषितः। मन्दरेण उद्धूता मन्दरोद्धूतास्तैः। क्षीरस्य ऊर्मय इति क्षीरोर्मयः। नास्ति च्युतं स्वस्वभावात् स्खलनं यस्य सः तम्। "यस्मान्न च्युतपूर्वोऽहमच्युतस्तेन कर्मणा" (इति भागवतम्) ॥ २७ ॥

(सरलार्थः) समुद्रमन्थनसमये क्षीरोदधेस्तरङ्गपङ्क्तयः मन्दराचलमथनोत्थापितैर्जलबिन्दुभिः विष्णुं यथा व्याप्नुवत्यः तथैव रघोः विजयप्रयाणसमयेऽपि वृद्धाः नागरिकस्त्रियः मङ्गलार्थकलाजाः तस्योपरि वर्षन्तिस्म ॥ २७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) समुद्रमथन के समय क्षीरसागर की लहरें ने मन्दराचल पर्वत के टक्कर खाने से उठे हुए छींटों से जैसे विष्णु

को छा दिया उसी प्रकार नगर की वृद्ध नारियों ने भी मङ्गल लाभ के लिये उसके ऊपर लाजा से वर्षा की ॥ २७ ॥

स ययौ प्रथमं प्राचीं तुल्यः प्राचीनबर्हिषा ।
अहिताननिलोद्धूतैस्तर्जयन्निव केतुभिः ॥ २८ ॥
रजोभिः स्यन्दनोद्धूतैर्गजैश्च घनसन्निभैः ।
भुवस्तलमिव व्योम कुर्वन् व्योमेव भूतलम् ॥ २९ ॥

(अन्वयः) प्राचीनबर्हिषा, तुल्यः, सः, अनिलोद्धूतैः, केतुभिः, अहितान्, तर्जयन्, इव, स्यन्दनोद्धूतैः, रजोभिः, व्योम, भुवः, तलम्, इव, घनसन्निभैः, गजैः, च, भूतलं, व्योम, इव, कुर्वन्, "सन्" प्रथमं, प्राचीं, "दिशं" ययौ ॥ २८ ॥ २९ ॥

(टीका) प्राचीनबर्हिषा (इन्द्रेण,) "पर्जन्यो मघवा वृषा हरिहयः प्राचीनबर्हिः स्मृतः" इति हलायुधः, तुल्यः (समानः) सः (रघुः) अनिलोद्धूतैः (वातकम्पितैः) केतुभिः (पताकाभिः) अहितान् (शत्रून्) तर्जयन् (भर्त्सयन्) इव, "अन्योऽपि यथा अङ्गुल्यादिना तर्जयति" स्यन्दनोद्धूतैः (रथोत्थापितैः) "स्यन्दनो रथः" इत्यमरः, रजोभिः (परागैः) "धूलिभिः" इति वा, "परागः सुमनो रजः" इत्यमरः, व्योम (आकाशं) भुवः (भूमेः) तलम् इव, "पृथ्वीतलमिवेत्यर्थः" घनसन्निभैः (मेघतुल्यैः) "वर्णतः क्रियातः परिमाणतश्च मेघसदृशैः" इत्यर्थः, गजैः (हस्तिभिः) च भूतलं (भूमितलं) व्योम इव (आकाशमिव) कुर्वन् (सम्पादयन्) "सन्" प्रथमं (प्राक्) प्राचीं (पूर्वां दिशं) ययौ (जगाम) ॥ २८ ॥ २९ ॥

(समासः) अनिलेन उद्धूता इति अनिलोद्धूताः, तैः । स्यन्दनेनोद्धूतानि स्यन्दनोद्धूतानि तैः । संनिभान्तीति सन्निभाः, घना इव सन्निभा घनसन्निभाः, तैः ॥ २८ ॥ २९ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) प्राचीनबर्हिषा तुल्येन तेन अनिलोद्धूतैः केतुभिः अहितान् तर्जयता इव ········ कुर्वता सता प्रथमं प्राची दिक् ययौ ॥ २८ ॥ २९ ॥

(सरलार्थः) शतमखतुल्यपराक्रमशाली स रघुः वायुना कम्पमानानां पताकानां छलेन शत्रून् तर्जयन् इव प्राक् पूर्वां दिशं जेतुं जगाम ॥ २८ ॥

सैन्यादिपादोत्थापिता धूलिः नभोमण्डलं तथा आच्छादितवती यथा लोकाः भूतलमिव तदनुमेनिरे। तस्य करिघटा घना घनघटेव भूतलं तथा व्याप्नुवती यथा तत् पृथ्वीतलं मेघाच्छन्नं नभोमण्डलमिव दृश्यतेस्म ॥ २९ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) पवन से फहराती हुई पताकाओं से मानों शत्रुओं को ताड़ना देता हुआ इन्द्रसदृश पराक्रम वाला रघु पहले पूर्व दिशा की ओर गया ॥ २८ ॥

रास्ते में रथों से इतनी धूल उड़ी कि आकाश धरती के समान दिखाई दिया और मेघ के समान बड़े बड़े हाथी इतने थे कि धरती बादलों से भरे आकाश के समान जान पड़ी ॥ २९ ॥

प्रतापोऽग्रे ततः शब्दः परागस्तदनन्तरम् ।
ययौ पश्चाद्रथादीति चतुस्कन्धेव सा चमूः ॥३०॥

(अन्वयः) अग्रे, प्रतापः, ततः, शब्दः, तदनन्तरं, परागः, पश्चात्, रथादि, इति, सा, चमूः, चतुःस्कन्धा, इव, (ययौ) ॥ ३० ॥

(टीका) अग्रे (पुरः) प्रतापः (प्रभावः) "शत्रूणां भयोत्पादकः शक्तिविशेषः" "स प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोषदण्डजम्" इत्यमरः ततः (तदनन्तरं) शब्दः (सेनाकलकलः) तदनन्तरं (तत्पश्चात) परागः (अश्वादिखुरक्षुण्णोत्थापितधूलिः) पश्चात् (अनन्तरं) रथादि (रथाश्वादिकं) इति (अनेन प्रकारेण) "पूर्वोक्ता" सा चमूः (सेना) चतुःस्कन्धा (चतुर्व्यूहा) इव, ययौ (जगाम) ॥ ३० ॥

(समासः) रथः आदिर्यस्य तत्। चत्वारः स्कन्धा यस्याः सा चतुःस्कन्धा ॥ ३० ॥

(भाषार्थदीपिका) अग्रे प्रतापेन ततः शब्देन तदनन्तरं परागेण, पश्चात् रथादिना गम्यते इति तया चम्वा चतुःस्कन्धया

इसके [illegible] धूलि, उसके [illegible] रथ, इस प्रकार यह सेना [illegible], [illegible] ॥ २० ॥

मरुपृष्ठान्युदम्भांसि नाव्याः सुप्रतरा नदीः ।
विपिनानि प्रकाशानि शक्तिमत्त्वाच्चकार सः ॥२१॥

(अन्वयः) सः (रघुः) शक्तिमत्त्वात्, मरुपृष्ठानि, उदम्भांसि, नाव्याः, नदीः, सुप्रतराः, विपिनानि, प्रकाशानि, चकार ॥ २१ ॥

(टीका) सः (रघुः) शक्तिमत्त्वात् (समर्थत्वात्) मरुपृष्ठानि (निर्जलस्थानानि) उदम्भांसि (उद्गतसलिलानि) नाव्याः (नौकया तर्तुं शक्याः) नदीः (सरितः) सुप्रतराः (सेतुबन्धादिना सुखेन तार्याः) "चरणतार्याः कृताः" इत्यर्थः, विपिनानि (वनानि) "अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्" इत्यमरः, "छेदादिना" प्रकाशानि (आलोकवन्ति) "निर्वृक्षाणि" इत्यर्थः, चकार (कृतवान्) ॥२१॥

(समासः) शक्तिर्विद्यते यस्यासौ शक्तिमान्, शक्तिमतो भावः शक्तिमत्त्वं, तस्मात् । म्रियन्ते भूतानि अस्मिन्निति मरुः, मरुः पृष्ठं येषान्तानि । उत् ऊर्ध्वमागतानि अम्भांसि यस्मिंस्तानि उदम्भांसि । नौभिस्तार्याः नाव्याः । सुखेन प्रतर्तुं शक्याः सुप्रतराः ॥ २१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन......नद्यः......चक्रिरे ॥ २१ ॥

(सरलार्थः) सः शक्तिशालित्वात् जलरहितां भूमिं (मरुभूमिं) सजलां, नावा तरणयोग्यां नदीं चरणतरणयोग्यां, वृक्षबाहुल्यात् दुर्गमाणि वनानि, निर्वृक्षकरणेन सुगमानि चकार ॥ २१ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) वह रघु प्रतापी होनेसे निर्जल भूमि को जलवती और नावों से पार करने योग्य नदियों को पैर से पार करने योग्य और वन को कटीले वृक्ष आदि कटवा देने से सुगम कराता हुआ॥२१॥

स सेनां महतीं कर्षन्पूर्वसागरगामिनीम् ।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः ॥ २२ ॥

(अन्वयः) सः (रघुः) पूर्वसागरगामिनीम्, महतीं, सेनां, कर्षन्, हरजटाभ्रष्टां, गङ्गाम् "कर्षन्" भगीरथः, इव बभौ ॥ २२ ॥

(टीका) सः (रघुः) पूर्वसागरगामिनीं (पूर्वसमुद्रगमनशीलां) महतीं (सङ्ख्यातीतां) "विशालां" इत्यर्थः, सेनां (चमूं) कर्षन्

(धारयन्) हरजटाभ्रष्टां (रुद्रजटाऽधःपतितां) गङ्गां, कर्षन्" भगीर
इव (भगीरथाभिधेयः भूपतिरिव) बभौ (शुशुभे) ॥ ३२ ॥

(समासः) पूर्वश्च असौ सागरः पूर्वसागरः, तं गन्तुं शील
यस्याः सा पूर्वसागरगामिनी तां। हरस्य जटा हरजटाः, ताभ्यो
भ्रष्टा ताम् ॥ ३२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन पूर्वसागरगामिनीं महतीं सेनां कर्षता
हरजटाभ्रष्टां गङ्गां भगीरथेन इव बभे ॥ ३२ ॥

(सरलार्थः) भगीरथो यथा पूर्वपुरुषाणामुद्धारणार्थं शङ्करजटा-
जूटगलितां गङ्गाम् अनुगच्छन् अशोभत तथैवायमपि रघुः दिग्विज-
याय सेनां नयन् शुशुभे ॥ ३२ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) प्रतापी राजा भगीरथ, महादेवजी की जटा
से निकली हुई गंगा को लिये जाते हुए जैसी शोभा को प्राप्त हु
उसी प्रकार राजा रघु भी अपनी बड़ी सेना को पूर्व समुद्र की ओ
ले जाने से अपूर्व शोभा को प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥

त्याजितैः फलमुत्खातैर्भग्नैश्च बहुधा नृपैः ।
तस्यासीदुल्बणो मार्गः पादपैरिव दन्तिनः ॥ ३३ ॥

(अन्वयः) फलं, त्याजितैः, उत्खातैः, बहुधा, भग्नैः, नृपैः, च,
पादपैः, दन्तिनः इव, तस्य, (रघोः) मार्गः, उल्बणः, आसीत् ॥३३॥

(टीका) फलं (लाभं) त्याजितैः (परित्याजितैः) उत्खातैः
(स्वपदाद्भ्रष्टैः) बहुधा (प्रायः) भग्नैः (संग्रामे जितैः) नृपैः
(भूपालैः) पादपैः (वृक्षैः) दन्तिनः (हस्तिनः) इव, तस्य (रघोः
मार्गः (पन्था) उल्बणः (प्रकाशः) "प्रकाशं प्रकटं स्पष्टमुल्बणं विक
स्फुटम्" इति यादवः, आसीत् (अभूत्) ॥ ३३ ॥

वृक्ष पक्षे—

फलं (वृक्षफलं) "फलं फले धने बीजेऽनिष्पत्तौ भोगलाभयोः
इत्यमरः, त्याजितैः, उत्खातैः (उत्पाटितैः) भग्नैः (कर्णैः) पा
वृक्षैः (कर्तृभिः) यथा गजस्य मार्गः निष्कण्टको भवति तथैव रघो
र्गति योजना ॥ ३३ ॥

(समासः) पादेन मूलेन (निम्नं) जलं पिबन्तीति पाद
पैः। दन्तौ विद्येते यस्य सः दन्ती, तस्य ॥ ३३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) ·······मार्गेण उत्खातेन अभूयत ॥ ३३ ॥

(सरलार्थः) महाबलोऽरण्यगजः गमनसमये पथि स्थितान् पादपान् स्वस्थानादुन्मूलितान् इतस्ततश्छिन्नभिन्नांश्च कृत्वा वर्त्म यथा सर्वतः कण्टकरहितं करोति तथैव रघुरपि शत्रून् स्वपदपरिभ्रष्टान् बहुशः प्रनष्टांश्च कृत्वा निजं मार्गं सर्वथा कण्टकरहितम् अकरोत् ॥ ३३ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) अत्यन्त बलवान् जंगली हाथी जैसे चलने के समय मार्ग के वृक्षों को और काँटों को तोड़ता मरोड़ता और कुचलता हुआ अपना आने जाने का मार्ग कण्टक रहित करता है उसी प्रकार राजा रघुने कण्टक रूप अपने शत्रुओं को पराजित कर अपना मार्ग शत्रुरहित किया ॥ ३३ ॥

पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्तांस्ताञ्जनपदाञ्जयी ।
प्राप तालीवनश्याममुपकण्ठं महोदधेः ॥ ३४ ॥

(अन्वयः) जयी, एवं, तान्, तान्, पौरस्त्यान्, जनपदान्, आक्रामन् (सन्) तालीवनश्यामं, महोदधेः, उपकण्ठं, प्राप ॥ ३४ ॥

(टीका) जयी (विजयी) "सः रघुः" एवं तान् तान् "सर्वान्" पौरस्त्यान् (प्राच्यान्) जनपदान् (देशान्) आक्रामन्, (तेजसा अधिकुर्वन्) "सन्" तालीवनश्यामं (तालीवनकृष्णं) "कृष्णे नीलाऽसितश्याम" इत्यमरः, महोदधेः (महासागरस्य) उपकण्ठं (समीपं) प्राप ॥ ३४ ॥

(समासः) जयोऽस्यास्तीति जयी । तालीनां वनानि तालीवनानि तैः श्यामस्तं तालीवनश्यामम् । उदकानि धीयन्तेऽस्मिन्नित्युदधिः, महाँश्चासावुदधिश्च, महोदधिः, तस्य । पुरः भवाः पौरस्त्यास्तान् । उपगतः कण्ठम् उपकण्ठः तम् ॥ ३४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) जयिना······आक्रामता सता···प्रापे ॥३४॥

(सरलार्थः) इत्थं प्रबलप्रतापः सः रघुः पूर्वदिग्भवान्देशान् स्वायत्तीकुर्वन् तालवृक्षसमूहैः श्यामवर्णां महासागरस्य सीमां प्राप ॥ ३४ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इस प्रकार जयशील रघु पूर्व के सम्पूर्ण

(सरलार्थः) यथा धान्यविशेषाः, कृषकेण स्वस्थानादुत्पाट्य अन्यत्र रोपिताः सन्तः फलभारेण तं पूरयन्ति, तथैव वङ्गदेशीया अपि राजानः राज्ञा रघुणा प्राक् स्वपदाद्भ्रष्टा भूयोऽपि स्वपदे स्थापिताः सन्तश्चरणपर्यन्तं रघोः प्रणतमस्तका भूत्वा धनादिभिस्तं संवर्द्धयामासुः ॥ ३७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे किसी धान विशेष को किसान एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह जमाता है और वह फल फूल से लदकर झुक जाता है उसी प्रकार रघु ने वङ्गदेशी राजाओं को राज्यासन से उखाड़ कर पुनः उसी पद में उन्हें बैठाया । उन्होंने भी प्रणत होकर धनादि से रघु की सेवा की ॥ ३७ ॥

स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः ।
उत्कलादर्शितपथः कलिङ्गाभिमुखो ययौ ॥ ३८ ॥

(अन्वयः) सः, (रघुः) बद्धद्विरदसेतुभिः, सैन्यैः, कपिशां, (नदीं) तीर्त्वा, उत्कलादर्शितपथः, (सन्) कलिङ्गाभिमुखः, ययौ ॥३८॥

(टीकाः) सः (रघुः) बद्धद्विरदसेतुभिः (रचितगजसेतुभिः) सैन्यैः (सैनिकैः) कपिशां (कपिशानाम नदीं) तीर्त्वा (उत्तीर्य) उत्कलादर्शितपथः (उत्कलदेशीयभूपतिसन्दर्शितमार्गः) कलिङ्गाभिमुखः (कलिङ्गदेशोन्मुखः) "सन्" ययौ (जगाम) ॥ ३८ ॥

(समासः) द्वौ रदौ येषान्ते द्विरदाः, त एव सेतवः इति द्विरदसेतवः, बद्धाः द्विरदसेतवो यैस्ते तैः । उत्कलैः आदर्शितः पन्था यस्याऽसौ उत्कलादर्शितपथः । कलिङ्गस्य अभिमुख इति कलिङ्गाभिमुखः ॥ ३८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) उत्कलादर्शितपथेन तेन......कलिङ्गाभिमुखेन सता ययै ॥ ३८ ॥

(सरलार्थः) ससैन्यः सः निजगजपरम्पराभिः सेतुं निर्माय कपिशां नदीमुत्तीर्य उत्कलदेशीयैर्नृपैः प्रदर्शितमार्गः सन् कलिङ्गदेशं जेतुञ्जगाम ॥ ३८ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) सेना सहित वह अपने हाथियों की पंक्ति का पुल बाँधकर कपिशा नदी को पार कर उत्कल देशीय राजाओं से मार्ग दिखाया हुआ कलिङ्ग देश को जीतने के लिये चला ॥ ३८ ॥

स प्रतापं महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं न्यवेशयत् ।
अङ्कुशं द्विरदस्येव यन्ता गम्भीरवेदिनः ॥ ३९ ॥

(अन्वयः) सः (रघुः) महेन्द्रस्य, मूर्ध्नि, तीक्ष्णं, प्रतापं, यन्ता, गम्भीरवेदिनः द्विरदस्य, (मूर्ध्नि) तीक्ष्णम्, अंकुशम्, इव, न्यवेशयत् ॥ ३९ ॥

(टीका) सः (रघुः) [1]महेन्द्रस्य (कुलपर्वतविशेषस्य) मूर्ध्नि (मस्तके) तीक्ष्णं (तीव्रं) दुःसहमित्यर्थः, प्रतापं (पराक्रमं) यन्ता (सारथिः) [2]गम्भीरवेदिनः (विलम्बज्ञानिनः) द्विरदस्य (गजविशेषस्य) मूर्ध्नि, तीक्ष्णं (निशितं) अङ्कुशम्, इव, न्यवेशयत् (स्थापितवान्)॥३९॥

(समासः) गम्भीरं मन्दं वेत्तीति गम्भीरवेदी तस्य ॥३९॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन······तीक्ष्णः प्रतापः, यन्त्रा······तीक्ष्णः अङ्कुशः इव न्यवेश्यत ॥३९॥

(सरलार्थः) हस्तिपको यथा मदोन्मत्तस्य दुष्टगजस्य शिरसि तीक्ष्णं अङ्कुशं गाढं निवेशयन् तं दमयति तथैव रघुरपि स्वकीयं प्रबलं प्रतापं महेन्द्रस्य मूर्ध्नि न्यवेशयत् ॥३९॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे महावत उन्मत्त हाथी के मस्तक पर तेज अङ्कुश रख उसे अपने वश में करता है उसी प्रकार राजा रघु ने भी अपना प्रबल प्रताप महेन्द्र के मस्तक पर रक्खा ॥३९॥

प्रतिजग्राह कालिङ्गस्तमस्त्रैर्गजसाधनः ।
पक्षच्छेदोद्यतं शक्रं शिलावर्षीव पर्वतः ॥४०॥

---

(१) महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमानृक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥ विष्णुपुराणम् ।

(२) त्वग्भेदाद्रुधिरस्रावान्मांसस्य क्रथनादपि ।
संज्ञां न लभते यस्तु विद्याद्गम्भीरवेदिनम् ॥ इति राजपुत्रीये ।
"चिरकालेन यो वेत्ति शिक्षां परिचितामपि ।
गम्भीरवेदी विज्ञेयः स गजो गजवेदिभिः" ॥
इति मृगचर्मोपि । -म० ।

(टीका) काकुत्स्थः, (रघुः) तत्र (महेन्द्रपर्वते) द्विषां (शत्रूणां) नाराचदुर्दिनं, (लोहशरवर्षणम्) विषह्य (सहित्वा) सत् (यथाशास्त्रं) मङ्गलस्नातः (मङ्गलाभिषिक्तः) "यत्तु सर्वौषधिस्नानं तन्माङ्गल्यमुदीरितम्" इति यादवः । इव, जयश्रियं (विजयलक्ष्मीं) प्रतिपेदे (प्राप) "वैरिबाणवर्षणसहनाऽनन्तरं रघुररीन् व्यजेष्ट" इत्यर्थः ॥४१॥

(समासः) नराणां समूहः नारम्, नारम् आचामति इति नाराचः, नाराचानां दुर्दिनमिति नाराचदुर्दिनम् । मङ्गलार्थं स्नातः मङ्गलस्नातः । जयस्य श्रीः जयश्रीः ताम् ॥४१॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तत्र काकुत्स्थेन................मङ्गलस्नातेन इव, जयश्रीः प्रतिपेदे ॥४१॥

(सरलार्थः) यथा कश्चन नृपतिः प्रथमं पुण्यतीर्थसलिलैः अभिषिक्तो भूत्वा पश्चाद्राज्यलक्ष्मीं प्राप्नोति तथैव अयमपि प्रथमं सपत्नास्त्रधाराभिः अभिषिक्तो भूत्वा अनन्तरं विजयलक्ष्मीं प्राप ॥४१॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे कोई राजा पहले पवित्र मङ्गलस्नान कर राज्यासन को प्राप्त करता है उसी प्रकार यह भी शत्रु की शरधारा से स्नान कर जयलक्ष्मी को प्राप्त करता हुआ ॥ ४१ ॥

ताम्बूलीनां दलैस्तत्र रचिताऽऽपानभूमयः ।
नारिकेलासवं योधाः शात्रवं च पपुर्यशः ॥ ४२ ॥

(अन्वयः) तत्र, योधाः, रचितापानभूमयः, "सन्तः" ताम्बूलीनां, दलैः, नारिकेलासवं, शात्रवं, यशः, च, पपुः ॥ ४२ ॥

(टीका) तत्र (महेन्द्रपर्वते) योधाः (भटाः) रचिताऽऽपानभूमयः (कल्पितपानयोग्यप्रदेशाः) " सन्तः " ताम्बूलीनां (नागवल्लीनां), "ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागवल्ल्यप्यथ द्विजा" "ताम्बूली नागवल्ल्यां स्त्री" इत्यमरमेदिन्यौ, दलैः (पर्णैः) नारिकेलासवं (नारिकेलमद्यं) शात्रवं (शत्रुसम्बन्धि) यशः (कीर्तिं) च, पपुः पीतवन्तः ॥ ४२ ॥

(समासः) युध्यन्त इति योधाः । आपीयते सम्भूय सुरा पीयते अत्र इति आपानम्, आपानस्य भूमय आपानभूमयः, रचिता आपान-

भूमयो यैस्ते । नारिकेलस्य आसव इति नारिकेलासवस्तम् । शत्रोरिदं शात्रवम् ॥ ४२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तत्र रचितापानभूमिभिः योधैः.........नारिकेलासवः............पपे ॥ ४२ ॥

(सरलार्थः) शूरा योधाः महेन्द्राद्रौ पानयोग्यं स्थानं संविधाय ताम्बूलपत्ररचितैः पात्रैः अच्छं नारिकेलासवं, स्वच्छं शत्रुयशश्च पीतवन्तः ॥ ४२ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) उस महेन्द्र पर्वत पर मदिरापानके लिये नया मण्डप बना कर सर्दारों ने ताम्बूल के पत्तों से नारियल की मदिरा और शत्रुओं का यश पान किया ॥ ४२ ॥

गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः ।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम् ॥ ४३ ॥

(अन्वयः) धर्मविजयी, सः, नृपः, गृहीतप्रतिमुक्तस्य, महेन्द्रनाथस्य, श्रियं जहार, मेदिनीं, तु, न, (जहार) ॥ ४३ ॥

(टीका) [1]धर्मविजयी (धर्मार्थं विजयशीलः) सः नृपः (राजा रघुः) गृहीतप्रतिमुक्तस्य (पराजयानन्तरं परित्यक्तस्य) महेन्द्रनाथस्य (महेन्द्राद्रिभूपस्य) "कलिङ्गदेशाधिपस्येत्यर्थः" श्रियं (लक्ष्मीं) जहार (हृतवान्) मेदिनीं (भुवं) तु (किन्तु) "शरणागतवात्सल्यात्" न जहार ॥ ४३ ॥

(समासः) आदौ गृहीतः पश्चात्प्रतिमुक्त इति गृहीतप्रतिमुक्तस्तस्य । महेन्द्रस्य नाथ इति महेन्द्रनाथस्तस्य । नॄन् पातीति नृपः ॥ ४३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) धर्मविजयिना तेन नृपेण... श्रीः जह्रे, मेदिनी तु न जह्रे ॥ ४३ ॥

---

१. धर्मविजयी लोभविजयी असुरविजयी चेति त्रिविधो राजा । यः शत्रुं निर्जित्य तदीयां नृपश्रियं नीत्वा तं शत्रुं तस्मिन्नेव स्थाने स्थापयति स धर्मविजयी । यः शत्रुं निर्जित्य तदीयां नृपश्रियं मेदिनीं च गृहीत्वा प्राणैर्न वियुङ्क्ते स लोभविजयी । यः शत्रुं हत्वा तदीयां श्रियं मेदिनीं च गृह्णाति स असुरविजयी ।

(सरलार्थः) धर्मविजयी रघुः प्राग् उन्मत्तभावेन आगतं संग्रामोद्यतं कलिङ्गनाथं निर्जित्य (वन्दीकृत्य) पश्चात्तं मोचयित्वा केवलं तस्य श्रियमेवाऽपहरत् न तु शरणागतस्य तस्य राज्याधिकारम् ॥ ४३ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) धर्म विजयी राजा रघु ने महेन्द्रनाथ को युद्ध में परास्त कर केवल उसको लक्ष्मी हरण की और उसे छोड़ दिया शरण में आये हुए उसका राज्य नहीं लिया ॥ ४३ ॥

ततो वेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना ।
अगस्त्याचरितामाशामनाशास्यजयो ययौ ॥ ४४ ॥

(अन्वयः) ततः, अनाशास्यजयः, (रघुः) फलवत्पूगमालिना, वेलातटेन, एव, अगस्त्याचरिताम्, आशां, ययौ ॥ ४४ ॥

(टीका) ततः (पूर्वदिग्विजयानन्तरं) अनाशास्यजयः (पुरुषान्तराजेयः,) "रघुः" फलवत्पूगमालिना (फलितपूगतरुश्रेणीमता) वेलातटेन (अब्धिकूलेन) "समुद्रतटेन" इति वा, "अब्ध्यम्बुविकृतौ वेला" इत्यमरः, एव, अगस्त्याचरितां ('अगस्त्यसेवितां) आशां (दक्षिणां दिशं) ययौ (जगाम) ॥ ४४ ॥

(समासः) न अन्यैः पुरुषैः आशास्यते जयो विजयश्रीर्यस्य सः। फलवतां पूगानां मालाः सन्त्यस्मिन्निति फलवत्पूगमालि तेन। वेलायाः तटमिति वेलातटं, तेन। अगस्त्येन आचरितेत्यगस्त्याचरिता ताम् ॥ ४४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अनाशास्यजयेन..........अगस्त्याचरिता आशा यये ॥ ४४ ॥

(सरलार्थः) प्रबलप्रतापः स एवं पूर्वां दिशं निर्जित्य फलपरिपूर्णपूगतरुपङ्क्तिभिः सुशोभितेन समुद्रतटेन दक्षिणां दिशं जगाम ॥ ४४ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) विजयी राजा रघु पूर्व दिशा जीत कर

---

(१) अगस्त्यो दक्षिणामाशामाश्रित्य नभसि स्थितः ।
वरुणस्यात्मजो योगी विन्ध्यवातापिमर्दनः ॥

सुपारी के वृक्षों से शोभायमान समुद्रतट से दक्षिण दिशा की ओर चला ॥ ४४ ॥

स सैन्यपरिभोगेण गजदानसुगन्धिना ।
कावेरीं सरितां पत्युः शङ्कनीयामिवाकरोत् ॥ ४५ ॥

(अन्वयः) सः, गजदानसुगन्धिना, सैन्यपरिभोगेण, कावेरीं, सरितां, पत्युः, (समुद्रस्य) शङ्कनीयाम्, इव, अकरोत् ॥ ४५ ॥

(टीका) सः (रघुः) गजदानसुगन्धिना (करिमदसुरभिणा) सैन्यपरिभोगेण (सैनिकादेर्जलक्रीडाद्युपभोगेन) "सेनायां समवेता ये सैन्यास्ते सैनिकाश्च ते" इत्यमरः, कावेरीं (कावेरी नाम सरितं) सरितां (नदीनां) पत्युः (सागरस्य) शङ्कनीयाम् (अविश्वसनीयाम् इव) "व्यभिचारिणीमिवेत्यर्थः, अकरोत् (चकार) ॥ ४५ ॥

(समासः) सुष्ठु गन्धोऽस्यासौ सुगन्धिः, गजानां दानेन सुगन्धिः गजदानसुगन्धिः, तेन। गजदानमेव सुगन्धिः यस्मिस्तेनेति वा। सेनायां समवेताः सैन्याः, तेषां परिभोगः तेन। शङ्कितुं योग्या शङ्कनीया ताम् ॥ ४५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन······शङ्कनीया इव अक्रियत ॥ ४५ ॥

(सरलार्थः) यथा काचन कामिनी परपुरुषसम्भोगलिङ्गैर्नखक्षतादिभिः स्वकान्तस्य मनसि पुरुषेतरोपभोगशङ्कामुत्पादयति तथैव रघुसैनिकानां जलक्रीडादिभिः क्षुब्धसलिला एवं रघुगजानां दानजलैः सुगन्धीकृता सती सा कावेरी स्वभर्तुः समुद्रस्य सम्भोगलिङ्गदर्शनाद् अविश्वसनीया जाता ॥ ४५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे कुलटा स्त्री नखक्षतादि चिह्नों से अपने विषय में पति का अविश्वास उत्पन्न कराती है उसी प्रकार रघु राजा के सैनिकों तथा हाथियों के स्नान करने से उनके मद से सुगन्धित उस कावेरी नदी ने अपने पति समुद्र को अपने विषय में सशङ्क बनाया ॥ ४५ ॥

बलैरध्युषितास्तस्य विजिगीषोर्गताध्वनः ।
मारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यकाः ॥ ४६ ॥

(अन्वयः) विजिगीषोः, गताध्वनः, तस्य (रघोः) बलैः, मारीचोद्भ्रान्तहारीताः, मलयाद्रेः, उपत्यकाः, अध्युषिताः ॥ ४६ ॥

ाँप लपटने के गढ़े पड़ गये हैं उनमें डाले हुए रक्खे बड़े बड़े
यों ने भी नहीं सहारा गये ॥ ४८ ॥

दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि ।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे ॥ ४६ ॥

अन्वयः) दक्षिणस्यां, दिशि, (तु) रवेः, अपि, तेजः, मन्दायते,
तु) पाण्ड्याः, तस्याम्, (दक्षिणस्यां दिशि) एव, रघोः,
, न, विषेहिरे ॥ ४६ ॥

टीका) दक्षिणस्यां (अवाच्यां) दिशि, रवेः (सूर्यस्य) अपि,
(प्रतापः) मन्दायते ('मन्दं भवति) "परन्तु" पाण्ड्याः
देशोद्भवाः क्षत्रियाः) तस्यां (दक्षिणस्याम् एव) "दिशि" रघोः
ीपसुतस्य राज्ञः) प्रतापं (तेजः) "स प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः
ण्डजम्" इत्यमरः, न (नहि) विषेहिरे) सोढवन्तः ॥ ४६ ॥

समासः) मन्द इव आचरतीति मन्दायते । पाण्डूनां जनपदानां
पाण्ड्यः तस्मिन् साधव इति पाण्ड्याः ॥ ४६ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्) तेजसा मन्दाय्यते, पाण्ड्यैः.........रघोः
: न विषेहे ॥ ४६ ॥

व्या०) पाण्ड्या इत्यत्र पाण्डूनां जनपदानां राजान इति वाक्ये
जस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्" इति तद्राजस्य लुकि पाण्डव इति
स्यात् ॥ ४६ ॥

सरलार्थ) प्रखरप्रतापस्यापि सूर्यस्य तेजः दक्षिणस्यान्दिशि
भवति परन्तु तस्यामेव दिशि तद्देशीया एव राजानः रघोः
सोढुं समर्था न बभूवुः, एतदतीवाश्चर्यकरं यत् सूरविज-
ऽपि असौ विजितवानिति रघोर्महानुत्कर्षो गम्यते ॥ ४६ ॥

सरलार्थ हिन्दी) दक्षिण दिशा में सूर्य का भी तेज मन्द
है परन्तु उसी दिशा में पाण्डु देश के राजाओं से रघु का तेज
सहा गया ॥ ४६ ॥

---

(१) दक्षिणायने सूर्यः शिथिलकरो भवतीति भावः ।

ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव सञ्चितम् ॥ ५० ॥

(अन्वयः) ते, निपत्य, तस्मै, सञ्चितं, स्वं यशः, इव, ताम्र-पर्णीसमेतस्य, महोदधेः मुक्तासारं ददुः ॥ ५० ॥

(टीका) ते (पाण्ड्याः) निपत्य (प्रणिपत्य) तस्मै (रघवे) सञ्चितं (एकत्रीकृतं) स्वं (निजं) यशः (कीर्तिम्) इव, ताम्रपर्णी-समेतस्य (ताम्रपर्णीसरित्सङ्गतस्य) महोदधेः (महासागरस्य) " सम्बन्धि " मुक्तासारं (मौक्तिकवरं) " सर्वोत्तमं मुक्तामणिनिक-मित्यर्थः " ददुः (दत्तवन्तः) ॥ ५० ॥

(समासः) ताम्रपर्ण्या समेतः ताम्रपर्णीसमेतस्तस्य । मुक्ता-सारः मुक्तासारस्तम् । उदकानि धीयन्तेऽस्मिन्नित्युदधिः, महांश्चा-वुदधिश्चेति महोदधिस्तस्य ॥ ५० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तैः निपत्य·······मुक्तासारः ददे ॥ ५० ॥

(सरलार्थः) ते पाण्डुदेशीया राजानः ताम्रपर्णीनदीमिलित-समुद्रस्य " सम्बन्धि " सञ्चितं मुक्तासारं, स्वकीयं सञ्चितं य-इव तस्मै रघवे प्रणामपूर्वकमुपायनीकृतवन्तः ॥ ५० ॥

(सरलार्थ हिन्दी) वे पाण्डु देशवासी राजे विनय के सा-प्रणाम कर इकट्ठा किये हुए अपने यश की समान ताम्रपर्णी नदी-संयुक्त महासमुद्र के बड़े २ मोती उसे देते हुए ॥ ५० ॥

स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ ।
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ ॥ ५१ ॥
असह्यविक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता ।
नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलङ्घयत् ॥ ५२ ॥

(अन्वयः) असह्यविक्रमः, सः, (रघुः) तटेषु, आलीनचन्द-तस्याः, दिशः, स्तनौ, इव, (स्थितौ) मलयदर्दुरौ, शैलौ, यथाका-निर्विश्य, दूरात्, उदन्वता, मुक्तं, स्रस्तांशुकं, मेदिन्याः, नितम्ब-इव, सह्यम्, अलङ्घयत् ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

(टीका) असह्यविक्रमः (असह्यपराक्रमः) सः (रघुः) त-(तीरेषु) आलीनचन्दनौ (चन्दनार्चितौ) तस्याः (दक्षिणस्या

(टीका) अपरान्तजयोद्यतैः (कौङ्कणादेशविजयोन्मुखैः) "कौङ्कणास्तु पाश्चात्यदेशविशेषः" "अपरान्तास्तु पाश्चात्याः" इति यादवः, विसर्पद्भिः (प्रसरणशीलैः) "तत्कृद्भिरित्यर्थः" तस्य (रघोः) अनीकैः (सैन्यैः) "सैन्यञ्चानीकमस्त्रियाम्" इत्यमरः, अर्णवः (सागरः) रामास्त्रोत्सारितः (रामचन्द्रास्त्रापसारितोऽपि) सह्यलग्नः (सह्यपर्वतसंलग्नः) इव, आसीत् (अभूत्) ॥५३॥

(समासः) अपरस्या अन्ता इति अपरान्तास्तेषां जयस्तस्मिन् उद्यतानीत्यपरान्तजयोद्यतानि तैः। रामस्य अस्त्रं रामास्त्रं, तेन उत्सारितः। सह्ये लग्न इति सह्यलग्नः ॥५३॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)...रामास्त्रोत्सारितेन अपि अर्णवेन सह्यलग्नेन इव अभूयत।

(सरलार्थः) दक्षिणदिग्विजयार्थं समुद्रतटेन प्रचलितया रघुसेनया, परशुरामास्त्रेण सह्यपर्वतात् पृथक्कृतोऽपि समुद्रः सह्यपर्वतसँल्लग्न इवासीत् (अनेन तस्य सैन्याधिक्यमुक्तम्) ॥५३॥

(सरलार्थ हिन्दी) पश्चिम की ओर विजय के लिये जानेवाली उस सेना से परशुराम के अस्त्र से हटाया हुआ भी समुद्र सह्य से मिला हुआ सा जान पड़ता था, अर्थात् समुद्र और पहाड़ के बीच की सारी भूमि सेना भरी दीख पड़ती थी ॥५३॥

भयोत्सृष्टविभूषाणां तेन केरलयोषिताम्।
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृतः ॥५४॥

(अन्वयः) तेन, (रघुणा) भयोत्सृष्टविभूषाणां, केरलयोषितां अलकेषु, चमूरेणुः, चूर्णप्रतिनिधीकृतः ॥५४॥

(टीका) तेन (रघुणा) भयोत्सृष्टविभूषाणां (भीतिपरित्यक्तालङ्काराणां " भूषा तु स्यादलंक्रिया " इत्यमरः, केरलयोषितां (केरलदेशोद्भवाङ्गनानां) अलकेषु (कुन्तलेषु) "अलकाश्चूर्णकुन्तलाः" इत्यमरः, चमूरेणुः (सेनाधूलिः) चूर्णप्रतिनिधीकृतः (कुङ्कमादिरजःस्थानापन्नीकृतः) ॥५४॥

(समासः) भयेन उत्सृष्टाः विभूषाः याभिस्ताः भयोत्सृष्टविभूषाः तासां। चम्वा रेणुरिति चमूरेणुः। प्रतिनिधीयते इति प्रतिनिधिः चूर्णस्य प्रतिनिधिः चूर्णप्रतिनिधिः न चूर्णप्रतिनिधिः अचूर्णप्रतिनिधिः

रघुसैनिकानां कञ्चुकेषु निपत्य प्रयासेन विनैव वसनवासनाख्य विदधौ ॥ ५५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) मुरला नदी की पवन से उड़ा हुआ केतक पुष्प का पराग बिना प्रयत्न के ही उसके योधाओं के कवचों में सुगन्ध चूर्ण बन गया ॥ ५५ ॥

अभ्यभूयत वाहानां चरतां गात्रशिञ्जितैः ।
वर्मभिः पवनोद्धूतराजतालीवनध्वनिः ॥ ५६ ॥

(अन्वयः) चरतां, वाहानां, गात्रशिञ्जितैः वर्मभिः, पवनोद्धूतराजतालीवनध्वनिः, अभ्यभूयत ॥ ५६ ॥

(टीका) चरतां (गच्छतां) वाहानां (अश्वानां) गात्रशिञ्जितैः (सत्वरगमनवशात् ग्रैवेयादिभूषणयोगेन शब्दायमानैः) वर्मभिः (कवचैः) पवनोद्धूतराजतालीवनध्वनिः (वायुकम्पिततालवृक्षपत्र ध्वनिः) अभ्यभूयत (तिरस्कृतः) ॥ ५६ ॥

(समासः) गात्रेषु शिञ्जितानि गात्रशिञ्जितानि तैः । वृण्वन्ति देहमिति वर्माणि तैः । तालीनां राजानः राजताल्यः, राजतालीनां वनानि राजताली वनानि, पवनेन उद्धूतानि पवनोद्धूतानि पवनोद्धूतानि च तानि राजतालीवनानि च इति पवनोद्धूतराज तालीवनानि तेषां ध्वनिः ॥ ५६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)………गात्रशिञ्जितानि वर्माणि पवनो द्धूतराजतालीवनध्वनिम् अभ्यभवन् ॥ ५६ ॥

(सरलार्थः) अतिवेगेन रघुसैनिकाश्वानां सञ्चालनात् अश्वा रूढानां शरीरस्थलोहमयकवचेभ्यः समुद्भूतो महान् " झन् झन् " इति शब्दः पवनसञ्चालिततालपत्रध्वनिमपि तिरस्कृतवान् ॥ ५६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) घोड़ों की शीघ्र गति के कारण शब्द करते हुए उनके सवारों के कवचों ने वायु वेग से उत्पन्न तालपत्र की ध्वनि को भी दबा दिया ॥ ५६ ॥

खर्जूरीस्कन्धनद्धानां मदोद्गारसुगन्धिषु ।
कटेषु करिणां पेतुः पुन्नागेभ्यः शिलीमुखाः ॥ ५७ ॥

(अन्वयः) शिलीमुखाः, पुन्नागेभ्यः, खर्जूरीस्कन्धनद्धानां, करिणां, मदोद्गारसुगन्धिषु, कटेषु, पेतुः ॥ ५७ ॥

(टीका) शिलीमुखाः (अलयः) "अलिबाणौ शिलीमुखौ" इत्यमरः, पुन्नागेभ्यः (नागकेशरेभ्यः) "पुन्नागः केशरेऽशोकः" इत्यभिधानचिन्तामणिः, खर्जूरीस्कन्धनद्धानां, (तृणद्रुमप्रकाण्डबद्धानां) "खर्जूरः केतकी ताली खर्जूरी च तृणद्रुमः" इति तथा "अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधेस्तरोः" इति चामरः, करिणां (गजानां) मदोद्गारसुगन्धिषु (मदस्रावसुगन्धिषु) कटेषु (गण्डेषु) "गण्डः कटो मदो दानम्" इत्यमरः, पेतुः (पतिताः) ॥५७॥

(समासः) शिली (शल्यं) मुखे येषान्ते शिलीमुखाः । खर्जूरीणां स्कन्धेषु नद्धास्तेषाम् । मदस्य उद्गारो मदोद्गारस्तेन सुगन्धय इति मदोद्गारसुगन्धयस्तेषु ॥ ५७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) शिलीमुखैः ………… पेते ॥ ५७ ॥

(सरलार्थः) भ्रमराः खर्जूरीवृक्षेषु बद्धानां रघुगजानां मदजलगन्धेन मुग्धाः सन्तः पुन्नागकुसुमानि विहाय हस्तिनां गण्डस्थलेषु अपतन् ॥ ५७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) खजूर के स्कन्धों में (पेड़ों में) बँधे हाथियों के मद के सुगन्ध से मुग्ध हुए भ्रमर नागकेसरों से उड़कर उनके कनपटियों में आ बैठे ॥ ५७ ॥

अवकाशं किलोदन्वान् रामायाभ्यर्थितो ददौ ।
अपरान्तमहीपालव्याजेन रघवे करम् ॥ ५८ ॥

(अन्वयः) उदन्वान्, अभ्यर्थितः, "सन्" रामाय, अवकाशं, ददौ, किल, रघवे, "तु" अपरान्तमहीपालव्याजेन, करं, ददौ ॥५८॥

(टीका) उदन्वान् (उदधिः "समुद्रः" "उदन्वानुदधिः सिन्धुः" इत्यमरः, अभ्यर्थितः (प्रार्थितः) "याचितः" इति वा, "सन्" रामाय (परशुरामाय) अवकाशं (स्थानं) ददौ किल (इत्यपानिति प्रसिद्धिर्वर्तते) रघवे (राज्ञे दिलीपसूनवे) "तु" अपरान्तमहीपालव्याजेन (पाश्चात्यभूपच्छद्मना) करं (बलिं) "बलिहस्तांशवः कराः" इत्यमरः, ददौ (दत्तवान्) ॥ ५८ ॥

जो राजा जहाँ विजय पाता है वहाँ वह अपना एक विजयस्तम्भ खड़ा करता है और उसमें उसके पराक्रम लिखे जाते हैं परन्तु यहाँ उसने वैसा न लिखकर उस पर्वत में अपने हाथियों के दाँतों से खुदे हुए गड्ढों ही को पराक्रम का चिन्ह माना ॥ ५९ ॥

पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूँस्तत्त्वज्ञानेन संयमी ॥६०॥

(अन्वयः) ततः, संयमी, सः, तत्त्वज्ञानेन, इन्द्रियाख्यान्, रिपून्, इव पारसीकान्, जेतुं, स्थलवर्त्मना, प्रतस्थे ॥६०॥

(टीका) ततः (त्रिकूटपर्वतरूपजयस्तम्भस्थापनानन्तरं) संयमी, योगी) सः (रघुः) तत्त्वज्ञानेन (परमतत्त्वावबोधेन) इन्द्रियाख्यान् इन्द्रियाभिधान्) रिपून् (शत्रून्) इव, पारसीकान् (पारसदेश- भूमिपान्) "सिन्धुतटवासिनो म्लेच्छभूपतीन्" इति वा, जेतुं (वशी- कर्तुं) † स्थलवर्त्मना (स्थलमार्गेण) "अयनं वर्त्म मार्गाध्व" इत्य- मरः, प्रतस्थे (चलितः) ॥६०॥

(समासः) संयमोऽस्यातीति संयमी। स्थलञ्च तद्वर्त्म स्थलवर्त्म तेन । इन्द्रियाणि आख्या येषां ते तान्। तत्त्वस्य ज्ञानं तत्त्वज्ञानं तेन ॥६०॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) ततः तेन संयमिना......॥६०॥

(सरलार्थः) यथा किल कश्चन योगी परमतत्त्वावबोधेन दुर्जया- नपि इन्द्रियरूपान् महाशत्रून् जयति तथैव असौ रघुरपि सिन्धुतट- वासिनो म्लेच्छनृपतीञ्जेतुं स्थलमार्गेण जगाम ॥६०॥

(सरलार्थ हिन्दी) इसके बाद जिस प्रकार योगी इन्द्रियरूप महाशत्रुओं को जीतने के लिये तत्त्वज्ञान के मार्ग का अवलम्बन करते हैं, उसी प्रकार रघु ने पारसीक देशों को जीतने के लिये स्थल मार्ग का अवलम्बन किया ॥६०॥

यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः ।
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदयः ॥६१॥

---

† समुद्रयानाद् धर्महानिरिति मत्वैव रघुः स्थलमार्गेण जगाम ।

(अन्वयः) सः (रघुः) अकालजलदोदयः, अब्जानां, बालातपम्, इव यवनीमुखपद्मानां, मधुमदं, न, सेहे ॥६१॥

(टीका) सः (रघुः) अकालजलदोदयः (असमयमेघोदयः) अब्जानां (कमलानां) " सम्बन्धिनं " बालातपं (कोमलातपं) इव, यवनीमुखपद्मानां (यवनदेशीयकामिनीमुखकमलानां) मधुमदं (मदिरापानजनितां क्षीबतां) न सेहे (न चक्षमे) ॥६१॥

(समासः) जलानि ददतीति जलदास्तेषाम् उदय इति जलदोदयः, न कालः अकालः, अकाले जलदोदयः अकालजलदोदयः। अप्सु जातानि अब्जानि, तेषाम् । मुखानि पद्मानि इवेति मुखपद्मानि, यवनीनां मुखपद्मानि, तेषाम् । मधुनः (मद्यस्य) मदस्तम् ॥६१॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन·········मधुमदः न सेहे ॥६१॥

(सरलार्थः) यथा अनवसरे घनघटाडम्बरः विकसितकमलसम्बन्धि स्वल्पमपि सौरातपं न सहते तथैव रघुरपि पारसदेशीययवनस्त्रीमुखकमलानां मदिरापानजनितां क्षीबतां न सोढवान् ॥६१॥

(सरलार्थ हिन्दी) असमय में आक्रमण करने वाले रघु ने मधुमद के द्वारा यवनी स्त्रियों के मुखपद्मों को विकसित नहीं होने दिया। जिस प्रकार असमय में उठा हुआ मेघ बालातप के द्वारा कमलों को विकसित नहीं होने देता ॥६१॥

सङ्ग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्त्यैरश्वसाधनैः ।
शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत् ॥ ६२ ॥

(अन्वयः) तस्य, अश्वसाधनैः, पाश्चात्त्यैः, " सह " शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे, रजसि, तुमुलः, सङ्ग्रामः, अभूत् ॥६२॥

(टीका) तस्य (रघोः) अश्वसाधनैः (तुरङ्गसाधनः) पाश्चात्यैः (यवनैः) सह (सार्धं) शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे (चापटङ्कारानुमेयप्रतिभटे) रजसि (धूलौ) तुमुलः (सङ्कुलः) "तुमुलं रणसङ्कुले" इत्यमरः, सङ्ग्रामः (युद्धं) अभूत् (बभूव) ॥६२॥

(समासः) अश्वाः साधनं सेनाङ्गं येषान्ते अश्वसाधनास्तैः। शृङ्गाणां विकाराः शार्ङ्गाणि तेषां कूजितैः, विज्ञेयाः (विज्ञातुं योग्याः)

प्रतियोधाः (प्रतियुध्यन्त इति प्रतियोधाः) यस्मिन् तत् तस्मिन् । पश्चाद्भवाः पाश्चात्त्यास्तैः ॥६२॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तस्य ······················ तुमुलेन सङ्ग्रामेण अभावि ॥ ६२ ॥

(सरलार्थः) तस्य रघोः, अश्वसाधनसम्पन्नैः यवनदेशीयम्लेच्छ- नरपतिभिः सह भयङ्करः संग्रामः बभूव यत्र च स्वपक्षस्य परपक्षस्य वा परिचयः केवलं प्रत्यञ्चानिर्घोषेणैव जायतेस्म ॥ ६२ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) घोड़ों पर चढ़ कर लड़ने वाले पश्चिम देश वासियों के साथ रघु का भयङ्कर युद्ध हुआ जिसमें आकाश में उड़ी हुई युद्ध की धूल के अन्धेरे में शत्रु पक्ष और अपने पक्ष के भट केवल धनुष की टङ्कार से जाने जाते थे ॥ ६२ ॥

भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम् ।
तस्तार सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव ॥ ६३ ॥

(अन्वयः) सः, (रघुः) सरघाव्याप्तैः, क्षौद्रपटलैः, इव, (लक्ष्यमाणैः) भल्लापवर्जितैः श्मश्रुलैः, तेषां शिरोभिः, महीं, तस्तार ॥ ६३ ॥

(टीका) सः (रघुः) सरघाव्याप्तैः (मधुमक्षिकाभिर्व्याप्तैः) "सरघा मधुमक्षिका" इत्यमरः, क्षौद्रपटलैः (मधुसमूहैः) इव "लक्ष्यमाणैः" भल्लापवर्जितैः (अर्धचन्द्राकृतिबाणविशेषकृत्तैः) श्मश्रुलैः (श्मश्रु- व्याप्तैः) तेषां (पाश्चात्यदेशवासिनां) शिरोभिः (मस्तकैः) महीं (पृथ्वीं) तस्तार (आच्छादयामास) ॥ ६२ ॥

(समासः) सरघाभिः व्याप्तानि इति सरघाव्याप्तानि तैः । श्मश्रूणि विद्यन्ते येषु तानि श्मश्रुलानि तैः । क्षुद्राभिः [illegible] कृतानि क्षौद्राणि तेषां पटलानि तैः । भल्लैः अपवर्जितानि तैः । [illegible] ।

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन ······ मही तस्तरे ॥ ६३ ॥

(सरलार्थः) रघुः मधुमक्षिकाकुलानि क्षौद्रपटलानीव, श्मश्रु- सहितानि यवननृपतिशिरांसि भल्लाख्यबाणैः छित्वा तैः पृथ्वीम् आच्छादयामास । पाश्चात्या हि श्मश्रूणि रक्षन्ति [illegible] [illegible] ॥ ६३ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) रघु ने मक्खियों से भरे हुए मधु के छत्तों के समान, भालों से काटे हुए शत्रुओं के दाढ़ीवाले सिरों से पृथ्वी ढाँक दी ॥ ६३ ॥

अपनीतशिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः ।
प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् ॥ ६४ ॥

(अन्वयः) शेषाः, (यवनाः) अपनीतशिरस्त्राणाः, (सन्तः) तं, (रघुं) शरणं, ययुः, हि, (यतः) महात्मनां, संरम्भः, प्रणिपातप्रतीकारः, (भवति) ॥ ६४ ॥

(टीका) शेषाः (हतावशेषाः) " पाश्चात्या यवनाः " इत्यर्थः अपनीतशिरस्त्राणाः (अपसारितशीर्षण्याः) " सन्तः " तं (रघुं) शरणं (रक्षकं,) ययुः (प्रापुः) "रघुम् आत्मनः रक्षकं मत्वा तन्निकटं समागताः" हि (यतः) महात्मनां (महानुभावानां) संरम्भः (कोपः, प्रणिपातप्रतीकारः (प्रणत्यपनेयः) भवति ॥ ६४ ॥

(समासः) शिरः त्रायतेऽनेनेति शिरस्त्राणं, अपनीतं शिरस्त्राणं यैस्ते । महान् आत्मा येषां ते महात्मानस्तेषाम् । प्रणिपात एव प्रतीकारो यस्य सः ॥ ६४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) शेषैः अपनीतशिरस्त्राणैः (सद्भिः) सः शरणं यये । हि…संरम्भेण प्रणिपातप्रतीकारेण भूयते ॥ ६४ ॥

(सरलार्थः) महानुभावानां क्रोधः प्रणत्या एव दूरीभवतीति सम्यग्विचार्य हतावशिष्टा यवनाः उष्णीषरहितमस्तकाः सन्तः प्राण संरक्षणार्थं रघुं शरणमागताः ॥ ६४ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) युद्ध से बाकी बचे यवन, पगड़ी उतार कर रघु के शरण गये । क्योंकि महात्माओं का क्रोध शरण जाने से ही दूर होता है ॥ ६४ ॥

विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम् ।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ॥ ६५ ॥

(अन्वयः) तद्योधाः, आस्तीर्णाजिनरत्नासु; द्राक्षावलयभूमिषु मधुभिः विजयश्रमं, विनयन्ते स्म ॥ ६५ ॥

(टीका) तद्योधाः (रघुभटाः) आस्तीर्णाजिनरत्नासु (प्रसारितचर्मश्रेष्ठासु) द्राक्षावलयभूमिषु (द्राक्षावेष्टितमण्डपेषु) (मधुभिः) (द्राक्षाफलप्रकृतिकैः,) "मद्यैः" इत्यर्थः, विजयश्रमं (विजयखेदं) "संग्रामखेदं" इत्यर्थः विनयन्ते स्म (दूरीकुर्वन्ति स्म) ॥ ६५ ॥

(समासः) तस्य योधाः तद्योधाः । अजिनेषु रत्नानि अजिनरत्नानि आस्तीर्णानि अजिनरत्नानि यासु ताः तासु । द्राक्षाणां वलयानि द्राक्षावलयानि, द्राक्षावलयानां भूमयो द्राक्षावलयभूमयस्तासु । विजयस्य श्रमो विजयश्रमस्तम् ॥ ६५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तद्योधैः······ विजयश्रमः विनीयतेस्म ॥६५॥

(सरलार्थः) युद्धश्रान्ताः रघोः सैनिकाः अजिनासनानि आस्तीर्य तत्र सुखोपविष्टाः सन्तः सरसाऽऽसवपानेन श्रममपनीतवन्तः ॥६५॥

(सरलार्थ हिन्दी) उसके सैनिकों ने विजयश्रम की थकावट अच्छे चमड़े बिछी हुई भूमि में, मदिरा के पान से मिटाई ॥ ६५ ॥

ततः प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम् ।
शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन् रसानिव ॥ ६६ ॥

(अन्वयः) ततः, भास्वान्, इव, रघुः, उस्रैः, इव, शरैः रसान्, इव, उदीच्यान्, उद्धरिष्यन् कौबेरीं, दिशं, प्रतस्थे ॥ ६६ ॥

(टीका) ततः = पाश्चात्यविजयानन्तरं, भास्वान् = सूर्यः, इव, रघुः उस्रैः (किरणैः) इव, शरैः (बाणैः) रसान् (उदकान्) इव, उदीच्यान् (उदग्भिभवान्) "नृपान्" उद्धरिष्यन् (उन्मूलयिष्यन्) सूर्यपक्षे (संशोषयिष्यन्) कौबेरीं (कुबेरसम्बन्धिनीं) दिशं (काष्ठां) "दिशस्तु ककुभः काष्ठाः" इत्यमरः, प्रतस्थे (चलितः) ॥ ६६ ॥

(समासः) उदीच्यां भवास्तान् । कुबेरस्य इयं कौबेरी ताम् ॥६६॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) भास्वता इव रघुणा······उद्धरिष्यता कौबेरी दिक् प्रतस्थे ॥ ६६ ॥

(सरलार्थः) यथा सूर्यः प्रखरकिरणैः जलानि शोषयति तथैव असावपि उत्तरदिग्भवानां भूपानां निजतेजोरश्मिभिः शोषणाय उदीचीं दिशं प्रस्थितः ॥ ६६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) फिर जैसे सूर्य, जल को अपनी प्रखर किरणों

से खींचता है उसी प्रकार रघु उत्तर देशवासियों को अपनी ओर खींचता हुआ उत्तर की ओर चला ॥ ६६ ॥

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः ।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धांल्लग्नकुङ्कुमकेसरान् ॥ ६७ ॥

(अन्वयः) सिन्धुतीरविचेष्टनैः, विनीताध्वश्रमाः, तस्य, वाजिनः, लग्नकुङ्कुमकेसरान्, स्कन्धान्, दुधुवुः ॥ ६७ ॥

(टीका) सिन्धुतीरविचेष्टनैः (सिन्धुनदतटाङ्गपरिवर्तनैः) विनीताध्वश्रमाः (अपनीतमार्गखेदाः) तस्य (रघोः) वाजिनः (अश्वाः) लग्नकुङ्कुमकेसरान् (संलग्नकुङ्कुमकिञ्जल्कान्,) स्कन्धान् (कायान्) "स्कन्धः प्रकाण्डे कायेऽसे विज्ञानादिषु पञ्चसु" इति हैमः, दुधुवुः (कम्पयन्ति स्म) ॥ ६७ ॥

(समासः) सिन्धोस्तीरं सिन्धुतीरं तत्र विचेष्टनानि तैः । अध्वनः श्रमोऽध्वश्रमः, विनीतः अध्वश्रमो यैस्ते । कुङ्कुमानां केसराः कुङ्कुमकेसराः, लग्नाः कुङ्कुमकेसरा येषु तान् ॥ ६७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तस्य............लग्नकुङ्कुमकेसराः स्कन्धाः दुधुविरे ॥ ६७ ॥

(सरलार्थः) सिन्धुनदस्य नीरे अङ्गपरिवर्तनैः अपनीतश्रमाः सन्तः रघोरश्वाः कुङ्कुमकेसरसंलग्नान् स्कन्धान् पुनः पुनः अधुन्वन् ॥ ६७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) सिन्धुनद के तट पर लोटने से रघु के घोड़ों ने मार्ग की थकावट मिटाकर केसर लगे हुए कन्धे झाड़े ॥ ६७ ॥

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् ॥ ६८ ॥

(अन्वयः) तत्र, भर्तृषु, व्यक्तविक्रमं, रघुचेष्टितं, हूणावरोधानां, कपोलपाटलादेशि, बभूव ॥ ६८ ॥

(टीका) तत्र (उत्तरस्यां दिशि) भर्तृषु (स्वामिषु) व्यक्तविक्रमं (प्रकटपराक्रमं) रघुचेष्टितं (रघुव्यापारः) हूणावरोधानां

(हूणान्तःपुरस्त्रीणां) "अवरोधस्तिरोधाने राजदारेषु तद्गृहे" इति मेदिनी, कपोलपाटलादेशि (कपोलरक्तवर्णसूचकं) बभूव (आसीत्) ॥ ६८ ॥

(समासः) व्यक्तः विक्रमो यस्य तत्। रघोः चेष्टितमिति रघुचेष्टितम्। हूणानां (हूणाभिधेयदेशनिवासिक्षत्रियाणाम्) अवरोधास्तासाम्। कपोलयोः पाटलः कपोलपाटलः, तम् आदिशतीति कपोलपाटलादेशि ॥ ६८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तत्र......व्यक्तविक्रमेण रघुचेष्टितेन...... कपोलपाटलादेशि बभूवे ॥६८॥

(सरलार्थः) रघुः तस्यान्दिशि हूणदेशाधिपान्तःपुरस्त्रीणां स्वामिनो निर्जित्य निजप्रचण्डं पराक्रमं प्रकटयन् तासां कपोलान् रक्तद्युतीन् चकार अर्थात् हूणयोषितः कुचकपोलताडनपूर्वकम् अरुदन् ॥६८॥

(सरलार्थ हिन्दी) उस दिशा में राजाओं को मारकर रघु ने जो भयङ्कर पौरुष दिखलाया इससे उस देश (तुर्क इङ्गलेण्डादि म्लेच्छ देश) की ललनाओं के पतिवियोग के कारण अधिक रोने से उनके कपोल लाल २ हो गये ॥६८॥

काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः।
गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः ॥६९॥

(अन्वयः) काम्बोजाः, समरे, तस्य, (रघोः) वीर्यं, सोढुम्, अनीश्वराः, (सन्तः) गजालानपरिक्लिष्टैः, अक्षोटैः, सार्धम्, आनताः (बभूवुः) ॥६९॥

(टीका) काम्बोजाः (कम्बोजदेशवासिनो राजानः) समरे (संग्रामे) तस्य (रघोः) विक्रमं (पराक्रमं) सोढुम् (सहितुं) अनीश्वराः (असमर्थाः) "सन्तः" गजालानपरिक्लिष्टैः (गजबन्धनपरिपीडितैः) अक्षोटैः (अक्षोटवृक्षैः) सार्धं (सह) आनताः बभूवुः (नम्रा जाताः) ॥६९॥

(समासः) न ईश्वरा इति अनीश्वराः। [illegible] गजालानं तेन परिक्लिष्टास्तैः ॥६९॥

(सरलार्थ हिन्दी) काम्बोज देश के नरपतियों ने अच्छे २ घोड़े तथा सुवर्ण की राशियाँ रघु को नजर कीं परन्तु इतना प्राप्त करने पर भी उसको गर्व नहीं हुआ ॥ ७० ॥

ततो गौरीगुरुं शैलमारुरोहाश्वसाधनः ।
वर्धयन्निव तत्कूटानुद्धूतैर्धातुरेणुभिः ॥ ७१ ॥

(अन्वयः) ततः, अश्वसाधनः, (सः, रघुः) गौरीगुरुं, शैलम्, उद्धूतैः, धातुरेणुभिः, तत्कूटान्, वर्धयन्, इव, आरुरोह ॥७१॥

(टीकाः) ततः (तदनन्तरम्) अश्वसाधनः (तुरङ्गमात्रसहायः) "सन्" "सः रघुः" गौरीगुरुम् (उमापितरं) शैलं (हिमाचलं) उद्धूतैः (अश्वखुरोत्थापितैः) धातुरेणुभिः (गैरिकादिधातुधूलिभिः) तत्कूटान् (हिमाद्रिशृङ्गाणि) "कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्" इत्यमरः, वर्धयन् (संवर्धयन्) इव, आरुरोह (अध्यारूढवान्) ॥७१॥

(समासः) अश्वः साधनं सेनाङ्गम् यस्याऽसौ अश्वसाधनः। गौर्याः गुरुः गौरीगुरुः तं । धातूनां रेणवो धातुरेणवस्तैः धातुरेणुभिः । तस्य कूटास्तत्कूटास्तान् । वर्धयतीति वर्धयन् ॥७१॥

(सरलार्थः) ततोऽश्वसहायो रघुः पर्वतीयान् कोलभिल्लाञ्जेतुं यदा हिमाचलमारुरोह तदा अश्वखुरन्यासोत्थापितप्रभूतगैरिकादिधातुधूलिदर्शनात् हिमाचलशिखरस्य वृद्धिभ्रमो जातः ॥ ७१ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) उसके उपरान्त घुड़सवारों के साथ वह रघु हिमालयपर चढ़ा। उस समय इतनी धूल उड़ी कि जिससे पर्वत का शिखर ऊँचा होता सा मालूम होने लगा ॥ ७१ ॥

शशंस तुल्यसत्वानां सैन्यघोषेऽप्यसम्भ्रमम् ।
गुहाशयानां सिंहानां परिवृत्यावलोकितम् ॥७२॥

(अन्वयः) तुल्यसत्वानां, गुहाशयानां, सिंहानां, परिवृत्य, अवलोकितम्, सैन्यघोषे, अपि, असम्भ्रमम्, शशंस ॥ ७२ ॥

(टीका) तुल्यसत्वानां (सैन्यसमानबलानां) गुहाशयानां (कन्दरानिद्रितानां) सिंहानां (मृगेन्द्राणां) "सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यो हर्यक्षः केसरी हरिः" इत्यमरः, परिवृत्य (ग्रीवां वक्रीकृत्य) अवलोकितं

(अवलोकनं) "शयित्वैवावलोकनं" सैन्यघोषे (सैन्यगर्जने) अपि, "सम्भ्रमकारणे सत्यपि" असम्भ्रमं (अन्तःक्षोभशून्यत्वं) शशंस (कथयामास) ॥७२॥

(समासः) तुल्यं सत्वं येषान्ते तुल्यसत्वास्तेषां। गुहासु शेरत इति गुहाशयास्तेषाम्। सेनायां समवेताः सैन्यास्तेषां घोषः तस्मिन्। न सम्भ्रमोऽसम्भ्रमस्तम् ॥७२॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)...अवलोकितेन...असम्भ्रमः शशंसे।

(सरलार्थः) महाबला गुहाशयाः सिंहाः भयोत्पादकं रघुसेना-कलकलं श्रुत्वाऽपि निर्भयाः सन्तः स्वस्थानादेव ग्रीवां वक्रीकृत्य निजान्तःक्षोभशून्यत्वं प्रकटयामासुः ॥७२॥

(सरलार्थ हिन्दी) गुफा में रहनेवाले समान बलवाले सिंहों का सेना के कलकल में भी लापरवाही के साथ गरदन टेढ़ीकर देखना उनके निर्भयपना को जनाता हुआ ॥७२॥

भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः।
गङ्गाशीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे ॥ ७३ ॥

(अन्वयः) भूर्जेषु, मर्मरीभूताः, कीचकध्वनिहेतवः, गंगाशीकरिणः, मरुतः, मार्गे, तं (रघुं) सिषेविरे ॥ ७३ ॥

(टीका) भूर्जेषु (भूर्जपत्रेषु) मर्मरीभूताः (मर्मरशब्दकारिणः) कीचकध्वनिहेतवः (वेणुविशेषशब्दकारणीभूताः) गंगाशीकरिणः (गंगाम्बुकणवाहिनः) मरुतः (वायवः) मार्गे (पथि) तं (रघुं) सिषेविरे (सेवितवन्तः) ॥ ७३ ॥

(समासः) ध्वनेर्हेतव इति ध्वनिहेतवः, कीचकानां ध्वनिहेतव इति कीचकध्वनिहेतवः। शीकराः सन्त्येषामिति शीकरिणः, गङ्गायाः शीकरिण इति गङ्गाशीकरिणः। न मर्मरा अमर्मराः, अमर्मरा मर्मराः सम्पद्यमाना इति मर्मरीभूताः ॥ ७३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) मर्मरीभूतैः कीचकध्वनिहेतुभिः गंगाशीकरिभिः मरुद्भिः सः सिषेवे ॥ ७३ ॥

(सरलार्थः) पथि शुष्कभूर्जपत्रेषु मर्मरशब्दं कुर्वन्तः, वंशविवरेषु मधुरध्वनिम् उत्पादयन्तः, जान्हवीजलकणांश्च सञ्चारयन्तो मान्द्यशैत्यसौगन्ध्यविशिष्टा वायवः रघोः मार्गखेदम् अपानयन् ॥७३॥

(सरलार्थ हिन्दी) मन्द २ और शीतल तथा सुगन्धित वायु रघु की सेवा करती हुई ॥ ७३ ॥

विशश्रमुर्नमेरूणां छायास्वध्यास्य सैनिकाः ।
दृषदो वासितोत्सङ्गा निषण्णमृगनाभिभिः ॥ ७४ ॥

(अन्वयः) सैनिकाः, नमेरूणां, छायासु, निषण्णमृगनाभिभिः, वासितोत्सङ्गाः, दृषदः, अध्यास्य, विशश्रमुः ॥ ७४ ॥

(टीका) सैनिकाः (सैन्याः) नमेरूणां (देवनागकेसरवृक्षाणां) छायासु (अनातपेषु) "वृक्षपत्रावृतप्रदेशेषु" इति वा, निषण्णमृगनाभिभिः (पाषाणोपविष्टकस्तूरीमृगनाभिभिः) "उपविष्टकस्तूरीमृगमदैः" इति वा, वासितोत्सङ्गाः (सुगन्धिततलाः) दृषदः (पाषाणान्), अध्यास्य (अधिष्ठाय) विशश्रमुः (श्रममपनीतवन्तः) ॥७४॥

(समासः) निषण्णाश्च ते मृगाश्च इति निषण्णमृगाः, तेषां नाभयस्तैः । सेनायां समवेताः सैनिकाः । वासिता उत्सङ्गा येषां ते ॥७४॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) सैनिकैः""विशश्रमे ॥७४॥

(सरलार्थः) रघुसैनिकाः नागकेसरवृक्षाणां छायासु मृगनाभिसुवासितानि पाषाणतलानि (चट्टान इति भाषा) मार्गश्रमापनयनार्थम् अधिष्ठितवन्तः ॥७४॥

(सरलार्थ हिन्दी) योधाओं ने नागकेसर की छाया में हरिणों की नाभि से सुगन्धित चट्टानों पर विश्राम किया ॥७४॥

सरलासक्तमातङ्गग्रैवेयस्फुरितत्विषः ।
आसन्नोषधयो नेतुर्नक्तमस्नेहदीपिकाः ॥७५॥

(अन्वयः) सरलासक्तमातङ्गग्रैवेयस्फुरितत्विषः, ओषधयः, नेतुः, (रघोः) नक्तम्, अस्नेहदीपिकाः, आसन् ॥७५॥

(टीका) सरलासक्तमातङ्गग्रैवेयस्फुरितत्विषः (देवदारुसंसक्तकरिकण्ठशृङ्खलास्फुरितभासः) ओषधयः (ज्वलज्ज्योतिर्लताविशेषाः)

नेतुः (रघोः) नक्तं (रात्रौ) अस्नेहदीपिकाः (तैलरहितप्रदीपाः
आसन् (अभूवन्) ॥७५॥

(समासः) ग्रीवासु भवानि ग्रैवेयाणि, मातङ्गानां ग्रैवेयाणि
मातङ्गग्रैवेयाणि, सरलेषु आसक्तानि च तानि मातङ्गग्रैवेयाणि इ
सरलासक्तमातङ्गग्रैवेयाणि तेषु स्फुरिताः त्विषो यासान्ताः। ओष
(दीप्तयः) धीयन्तेऽत्रेत्योषधयः। दीपा एव दीपिकाः, न स्नेह
इत्यस्नेहा अस्नेहाश्च ता दीपिकाश्चेत्यस्नेहदीपिकाः ॥७५॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) सरलासक्तमातङ्गग्रैवेयस्फुरितत्विड्भि
ओषधिभिः······अस्नेहदीपिकाभिः अभूयत ॥७५॥

(सरलार्थः) तत्र निशायां देदीप्यमाना वनौषधयः देवदारुत
रुसम्बद्धगजानां कण्ठबन्धनेषु शृंखलादिषु प्रतिस्फुरितकान्तयः सत्यः
रघोर्दीपावलीकार्यमकुर्वन् ॥७५॥

(सरलार्थ हिन्दी) देवदारु के वृक्षों से बँधे हुए हाथियों के
गले की सिकड़ों में चमकती हुई जङ्गल की बूटियाँ रात में उस रघु
की बिना तेल की दीपिका (दीयों की कतार) बनी ॥७५॥

तस्योत्सृष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुक्षतत्वचः।
गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः ॥७६॥

(अन्वयः) तस्य (रघोः) उत्सृष्टनिवासेषु, कण्ठरज्जुक्षतत्वचः,
देवदारवः, किरातेभ्यः, गजवर्ष्म, शशंसुः, ॥७६॥

(टीका) तस्य (रघोः) उत्सृष्टनिवासेषु (त्यक्तसेनानिवेशेषु)
कण्ठरज्जुक्षतत्वचः (शृंखलाक्षतोपरिभागाः) देवदारवः (सरलवृक्षाः)
किरातेभ्यः (पुलिन्देभ्यः) "भेदाः किरातशबरपुलिन्दा म्लेच्छजात-
यः" इत्यमरः, गजवर्ष्म (गजदेहप्रमाणं) "वर्ष्म देहप्रमाणयोः"
इत्यमरः, शशंसुः (कथयामासुः) ॥७६॥

(समासः) उत्सृष्टाश्च निवासाश्च उत्सृष्टनिवासास्तेषु। कण्ठानां
रज्जवः कण्ठरज्जवस्ताभिः क्षताः त्वचो येषां ते। गजस्य वर्ष्म
गजवर्ष्म ॥७६॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)······कण्ठरज्जुक्षतत्वग्भिः देवदारुभिः
········शशंसे ॥७६॥

(सरलार्थः) रघुणा परित्यक्तेषु सेनानिवेशप्रदेशेषु तत्र देवदारुवृक्षस्कन्धेषु गजस्कन्धकाषणचिह्नानि मतङ्गजानां देहोन्नत्यम् अप्रकाशयन् ॥ ७६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) पड़ावों के छोड़ने पर रघु के हाथियों की ऊँचाई गले के सिकड़ों से छिली हुई छाल वाले देवदारु वृक्षों ने ही किरातों को बताई ॥ ७६ ॥

तत्र जन्यं रघोर्घोरं पर्वतीयैर्गणैरभूत् ।
नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम् ॥ ७७ ॥

(अन्वयः) तत्र, रघोः, पर्वतीयैः, गणैः, (सह) नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम्, घोरं, जन्यम्, अभूत् ॥ ७७ ॥

(टीका) तत्र (हिमाचले) रघोः, पर्वतीयैः (पर्वतनिवासिभिः) गणैः (उत्सवसङ्केताख्यैः सप्तभिः) "सह" नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम् (लोहबाणपाषाणशकलसङ्घर्षोत्थितवह्नि) "पाषाणप्रस्तरग्रावो पलाश्मानः शिला दृषत्" इत्यमरः, घोरं (भयङ्करं) जन्यं (युद्धं) "युद्धमायोधनं जन्यम्" इत्यमरः, अभूव (बभूव) ॥ ७७ ॥

(समासः) पर्वते भवाः पर्वतीयास्तैः । नाराचाश्च क्षेपणीयाश्मानश्च नाराचक्षेपणीयाश्मानः तेषां निष्पेषेण उत्पतिता अनला यस्मिंस्तत् ॥ ७७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)…नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलेन घोरेण जन्येन अभावि ॥ ७७ ॥

(सरलार्थः) तत्र पर्वतीयैः भिल्लादिभिः सह रघोर्घोरं युद्धं बभूव रघुक्षिप्तानां बाणानां भिल्लादिनिक्षिप्तानां पाषाणानां च अन्योन्यसंघर्षणात् वह्नयः प्रादुरासन् ॥ ७७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) रघु का पहाड़ी लोगों से बाण और गोफनों के पत्थरों की रगड़ से उठी हुई अग्निवाला भयङ्कर युद्ध हुआ ॥७७॥

१ गणानुत्सवसङ्केतानजयत्सप्त पाण्डवः । महाभारतम् ।

(सरलार्थः) सः अनेन प्रकारेण हिमाद्रौ यशोराशिं संस्थाप्य, कैलासमगत्वा तस्य लज्जां समुत्पादयन्निव अवततार ॥८०॥

(सरलार्थ हिन्दी) वहाँ अपने यश की राशिस्थापन कर वह रावण के उठाये हुए कैलास की ओर न जाकर उसे लज्जित सा करता हुआ उतरा ॥८०॥

चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन्प्राग्ज्योतिषेश्वरः ।
तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः ॥८१॥

(अन्वयः) तस्मिन्, तीर्णलौहित्ये, "सति" प्राग्ज्योतिषेश्वरः तद्गजालानतां, प्राप्तैः, कालागुरुद्रुमैः, सह, चकम्पे ॥८१॥

(टीका) तस्मिन् (रघौ) *तीर्णलौहित्ये (अतिक्रान्तब्रह्मपुत्रे) "सति" "लौहित्यं लोहितत्वे च क्लीवं पुंसि नदान्तरे" इति मेदिनी, प्राग्ज्योतिषेश्वरः (कामरूपजनपदेश्वरः) तद्गजालानतां (रघुकरिबन्धनस्तम्भतां) प्राप्तैः (सम्प्राप्तैः) कालागुरुद्रुमैः (कृष्णागुरुपादपैः) सह (साकं) चकम्पे (कम्पितवान्) ॥८१॥

(समासः) तीर्णो लौहित्यः (ब्रह्मपुत्रो नाम नदः) येन असौ तीर्णलौहित्यस्तस्मिन्। ईशितुं शीलम् अस्य असावीश्वरः, प्राग्ज्योतिषाणामीश्वर इति प्राग्ज्योतिषेश्वरः। आलानस्य भाव आलानता तस्य गजा इति तद्गजाः, तेषाम् आलानता ताम्। कालागुरूणां द्रुमा इति कालागुरुद्रुमास्तैः ॥८१॥

(सरलार्थः) यदा रघुः ब्रह्मपुत्रनदमुत्तीर्य प्राग्ज्योतिषं देशं (कामरूपं) सम्प्राप्तः तदा कालागुरुतरुबद्धानां रघुगजानां शृङ्खलाकर्षणघर्षणादिभिः यथा वृक्षाः कम्पितवन्तः तथैव तद्देशाधिपोऽपि चकम्पे ॥८१॥

(सरलार्थ हिन्दी) उसके लौहित्या नदी के पार उतरने पर प्राग्ज्योतिष देश (कामरूप) का राजा, रघु के हाथी बाँधने के स्तम्भरूप हुए कालागुरुवृक्षों के साथ ही थरथराया ॥८१॥

* ब्रह्मपुत्र महाभाग शान्तनोः कुलनन्दन !
अमोघागर्भसम्भूत पापं लौहित्य मे हर ॥ इति पुराणम्।

(टीका) सः (रघुः) सर्वस्वदक्षिणं (समस्तवित्तदक्षिणं) "विश्वजित्सर्वस्वदक्षिणः" इति श्रुतेः, विश्वजितं (विश्वजिन्नामकं) यज्ञं (यागं) "यज्ञः सवोऽध्वरो यागः" इत्यमरः, आजह्रे (चक्रे) हि (यतः) वारिमुचां (मेघानाम्) इव (यथा) सतां (सज्जनानां) आदानम् (उपार्जनं) विसर्गाय (त्यागाय) भवति ॥ ८६ ॥

(समासः) विश्वं जयतीति विश्वजित् तम्। सर्वस्वं दक्षिणा यस्य सः तम्। वारीणि मुञ्चन्तीति वारिमुचस्तेषाम् ॥ ८६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन सर्वस्वदक्षिणः विश्वजित् यज्ञः आजह्रे ।

(सरलार्थः) यथा मेघानां समुद्राज्जलग्रहणं परोपकारार्थं [illegible] तथैव महात्मनामपि धनोपार्जनं परोपकारार्थम् [illegible] भवतीति विचार्य रघुरपि विश्वजिन्नामकं महायज्ञं कृत्वा [illegible]र्जितं सकलं धनं विप्रेभ्यो दक्षिणारूपेण दत्तवान् ॥८६॥

(सरलार्थ हिन्दी) रघु ने सर्वस्व दक्षिणावाला विश्वजित यज्ञ किया। महात्माओं का धन संग्रह दान ही के लिये है जैसे बादलों का जलग्रहण ॥८६॥

सत्रान्ते सचिवसखः पुरस्क्रियाभि-
र्गुर्वीभिः शमितपराजयव्यलीकान्।
काकुत्स्थश्चिरविरहोत्सुकावरोधान्
राजन्यान्स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने ॥८७॥

(अन्वयः) काकुत्स्थः सत्रान्ते, सचिवसखः, "सन्" गुर्वीभिः पुरस्क्रियाभिः शमितपराजयव्यलीकान्, चिरविरहोत्सुकावरोधान् राजन्यान् स्वपुरनिवृत्तये, अनुमेने ॥८७॥

(टीका) काकुत्स्थः (रघुः), सत्रान्ते (यज्ञावसाने) सचिवसखः [illegible] "[illegible]" इति [illegible] (पुरस्कारैः) "[illegible]" इति [illegible] (महतीभिः) [illegible]" इति [illegible], शमितपराजय[illegible]

[illegible]

[illegible]

पुष्परसपरागगौरवर्णं) "मकरन्दः पुष्परसः" इत्यमरः, चक्रुः (कृतवन्तः ॥ ८८ ॥

(समासः) आतपात्त्रायत इत्यातपत्त्रं, रेखा एव ध्वजश्च कुलिशश्च आतपत्त्रञ्चेति रेखाध्वजकुलिशातपत्त्राणि, तानि चिह्नानि यस्मिन् तत् । लब्धुं योग्यं लभ्यं प्रसादेन लभ्यमिति प्रसादलभ्यम् । सम्यक् राजतेऽसौ सम्राट् तस्य । प्रस्थाने प्रणतयः प्रस्थानप्रणतयस्ताभिः । मकरन्दस्य रेणवः मकरन्दरेणवः, मौलिषु स्रजो मौलिस्रजः, ताभ्यश्च्युता मकरन्दरेणवश्चेति मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणवः, तैः गौरम् ॥ ८८ ॥

(वाक्यपरिवर्तनम्) तः ....चक्रे ॥ ८८ ॥

(सरलार्थः) ततः प्रस्थानसमये सर्वे एव ते राजानः प्रणिपातपूर्वकं रघोश्चरणद्वन्द्वं प्रणेमुः, तदा तेषां मुकुटमाल्यगलितमधुपरागैः रघुचरणयुगलाङ्गुलीरलञ्चक्रुः ॥ ८८ ॥

(सरलार्थं हिन्दी) वे राजे रेखा ही से ध्वज, वज्र और छत्र चिह्नवाले चक्रवर्ति लक्षणसे युक्त उन रघु के चरणों को चलते समय को दण्डवत् कर सिर की माला से गिरे हुए सुगन्धित परागों से उनकी चरणाङ्गुलियों को श्वेत करते हुए ॥८८॥

श्रीकालिदासकविवर्यविनिर्मितेऽस्मिन्
काव्ये वरे हि रघुवंशमिति प्रसिद्धे ।
सर्गः प्रतापिरघुदिग्विजयप्रयाण-
नामा समाप्तिमगमद्रुचिरस्तुरीयः ॥८९॥

इति पाटकोपाह्व-स्मार्तकर्मानुष्ठाननिष्ठ-स्वधर्मधुरन्धर-कश्यपवंशावतंस-
श्रीजयकृष्णशर्मतनुजनुषा श्रीगोपीनाथशर्मणा विरचितया
सुबोधिनीसमाख्यया व्याख्यया सरलार्थया प्राकृत-
भाषया च संवलितो महाकवि श्रीकालिदास-
कृतौ रघुवंशे महाकाव्ये रघुदिग्वि-
जयो नाम चतुर्थः
सर्गः ॥ ४ ॥

निर्वर्त्यते यैर्नियमाभिषेको येभ्यो निवापाञ्जलयः पितॄणाम् ।
तान्युञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित् ॥८॥

(अन्वयः) यैः, नियमाभिषेकः, निर्वर्त्यते, येभ्यः, पितॄणां, निवापाञ्जलयः, निर्वर्त्यन्ते, उञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि, वः, तानि, तीर्थजलानि शिवानि, कच्चित् ॥ ८ ॥

(टीका) यैः = तीर्थजलैः, नियमाभिषेकः = नित्यस्नानादिः, निर्वर्त्यते = निष्पाद्यते, येभ्यः = जलेभ्यः, पितॄणां = अग्निष्वात्तादिपितॄणां निवापाञ्जलयः = तर्पणाञ्जलयः,, ' पितृदानं निवापः स्यात् " इत्यमरः, निर्वर्त्यन्ते = निष्पाद्यन्ते, उ[1]ञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि = प्रकीर्णोद्धृतषष्ठभागचिन्हितपुलिनानि, " राजग्राह्यषष्ठभागलक्षितपुलिनानि " इति वा, तीर्थजलानि = तीर्थपयांसि, शिवानि = बाधरहितानि, कच्चित् = वर्त्तन्ते किमु ॥ ८ ॥

(समासः) नियमस्याभिषेक इति नियमाभिषेकः । निवापस्याञ्जलय इति निवापाञ्जलयः । उञ्छानां षष्ठैः अङ्कितानि सैकतानि येषां तानि ॥ ८ ॥

(सरलार्थः) येषु तीर्थेषु भवन्तो नित्यस्नानादिक्रियां सम्पादयन्ति येभ्यश्च पितॄणां तर्पणाञ्जलयो निष्पाद्यन्ते एवम्भूतानि तटेषु राजदेयषड्भागशोभमानानि तीर्थजलानि शुभानि सन्ति किम् ॥ ८ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जिन तीर्थों में नित्यस्नान किया जाता है जिनसे पितरों का तर्पण किया जाता है वे उञ्छके छठे भाग से चिन्हित तटवाले तीर्थजल कल्याण युक्त तो हैं ॥ ८ ॥

नीवारपाकादि कडङ्गरीयैरामृश्यते जानपदैर्न कच्चित् ।
कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागं वन्यं शरीरस्थितिसाधनं वः ॥ ९ ॥

(अन्वयः) कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागं, वन्यं, वः, शरीरस्थितिसाधनं, नीवारपाकादि, जानपदैः, न आमृश्यते, कच्चित् ॥ ९ ॥

---

१. [illegible] षष्ठ भाग [illegible] प्रक्षिपन्ति, तथाच श्रुतिः— "[illegible] षष्ठभागं [illegible] । सोऽस्मान् पालयति तस्मा [illegible] " ॥ इति ॥

[illegible] । [illegible] । इति [illegible] ।

(टीका) कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागं=वैश्वदेवावसानागतातिथ्यतिथिकल्पनीयांशं, "उचितावसरप्राप्तातिथिसेवासम्पादकं" इति ..., वन्यं=आरण्यं, "वनोत्पन्नं" इत्यर्थः, वः=युष्माकं, शरीरस्थितिसाधनं=जीवितसाधनोपायभूतं, नीवारपाकादि=श्यामकादिधान्यं, जानपदैः=ग्रामादागतैः, कडङ्गरीयैः = "गोमहिषादिभिः" इत्यर्थः, न आमृश्यते=न भक्ष्यते, कच्चित्=किम् ॥ ६ ॥

(समासः) काले उपपन्ना: इति कालोपपन्ना:, कालोपपन्नाश्च अतिथयश्चेति कालोपपन्नातिथयः, तेषां कल्प्या भागा यस्य तत् । वने भवं वन्यं । शीर्यत इति शरीरं, तस्य स्थितिरिति शरीरस्थितिः तस्य साधनमिति शरीरस्थितिसाधनं । पच्यत इति पाकः, नीवाराणां पाकः नीवारपाकः, स आदिर्यस्य तत् । जनाः पद्यन्ते गच्छन्ति यत्र असौ जनपदः तेभ्यः आगतैः । कडङ्गरं अर्हन्तीति कडङ्गरीयास्तैः ॥ ६॥

(सरलार्थः) उचितावसरप्राप्तानां अतिथीनां सेवासम्पादनयोग्यं भवतां च जीवननिर्वाहकारणं वनोत्पन्नं नीवारश्यामकादिधान्यं गोमहिषादयो न भक्षयन्ति कच्चित् ॥ ६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) उचित समय पर आये हुए अतिथियों के सत्कार करने योग्य और आप के जीवन-रक्षा के कारणीभूत धान्यादि, तृण खानेवाले पशुओं से नाश तो नहीं किये जाते हैं ॥ ६ ॥

अपि प्रसन्नेन महर्षिणा त्वं सम्यग्विनीयानुमतो गृहाय ।
कालोऽयं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते ॥ १० ॥

(अन्वयः) "किञ्च" त्वं प्रसन्नेन, "सता" महर्षिणा, सम्यक्, विनीय, गृहाय, अनुमतः, अपि ? हि, ते, सर्वोपकारक्षमं, द्वितीयं, आश्रमं, सङ्क्रमितुं, अयं, कालः, "वर्तते" ॥ १० ॥

(टीका) किञ्च, त्वं, प्रसन्नेन, "सता" महर्षिणा=महामुनिना वरतन्तुना, सम्यक्=यथाशास्त्रं, विनीय=शिक्षयित्वा "..." इति वा, विद्यामुपदिश्य" इत्यर्थः, गृहाय=गृहस्थाश्रमं प्रवेष्टुं, अनुमतः=अनुज्ञातः, "प्राप्ताज्ञः" इत्यर्थः, अपि=किम् । हि=यस्मात्कारणात्, ते=तव, सर्वोपकारक्षमं-प्राणिमात्रोपकारकरणसमर्थं-

* यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ इति मनुः ।

(सरलार्थ हिन्दी) पूज्यों में भक्ति करना यह तेरे कुल का नियम है। इस नियम के पालन करने में सर्वदा सावधान रहने के कारण तू अपने पूर्वजों से भी बढ़ा हुआ है और मैं तेरे पास याचना करने के लिये कुसमय में आया यही मुझे खेद है ॥ १४ ॥

शरीरमात्रेण नरेन्द्र तिष्ठन्नाभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः ।
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः ॥ १५ ॥

(अन्वयः) हे नरेन्द्र !, तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः, शरीरमात्रेण, तिष्ठन्, "त्वं" आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः, स्तम्बेन, अवशिष्टः, नीवारः, इव, आभासि ॥ १५ ॥

(टीका) हे नरेन्द्र !=हे राजन् !, तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः= सत्पात्रदत्तसम्पत्तिः, शरीरमात्रेण—केवलेन वपुषा, तिष्ठन्=वर्तमानः, "त्वं" आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः=मुनिप्रमुखगृहीतसस्यः, स्तम्बेन=काण्डेन, अवशिष्टः=उर्वरितः, नीवारः=धान्यविशेषः, इव, आभासि=शोभसे ॥ १५ ॥

(समासः) तीर्थेषु प्रतिपादिता ऋद्धिर्येन सः । शीर्यत इति शरीरं शरीरमेव शरीरमात्रं तेन । तिष्ठतीति तिष्ठन् । अरण्ये भवा आरण्यकाः, तैः उपात्ता फलमेव प्रसूतिर्यस्य सः ॥ १५ ॥

(सरलार्थः) यथा वनवासिभिः गृहीतफलाः नीवारगुल्माः स्तम्बमात्रावशेषेण शोभन्ते तथैव हे राजन् ! त्वमपि सत्पात्रप्रयुक्तसकलार्थदानेन केवलं शरीरेणैव तिष्ठन् शोभसे ॥ १५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) हे राजन् ! तू वनवासियों के फल तोड़नेसे केवल शाखा रूप में बचे हुए नीवार धानके वृक्ष की समान, सत्पात्रों में सम्पूर्ण धन दानकर केवल शरीरमात्र से सुशोभित हो रहा है १५

स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिञ्चनत्वं मखजं व्यनक्ति ।
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥ १६ ॥

(अन्वयः) भवान्, एकनराधिपः, "सन्" मखजं, अकिञ्चनत्वं, व्यनक्ति, "तत्" स्थाने । हि, सुरैः, पर्यायपीतस्य, हिमांशोः, कलाक्षयः, वृद्धेः, श्लाघ्यतरः, भवति ॥ १६ ॥

(टीका) भवान्, एकनराधिपः=सार्वभौमः 'सन्' मखजं= यज्ञजन्यं, " यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः " इत्यमरः,

(टीका) तत् = तस्मात्कारणात्, तावत्, अनन्यकार्यः = कार्यान्तररहितः, अहं, अन्यतः = अन्यस्मात् वदान्यात्, गुर्वर्थं = गुरुधनं, आहर्तुं = अर्जयितुं, यतिष्ये = उद्योदये, ते = तुभ्यं, स्वस्ति = शुभं, अस्तु = भवतु,* चातकः = सारङ्गः, "अथ सारङ्गश्चातकः स्तोककः समाः" इत्यमरः, अपि, निर्गलिताम्बुगर्भं = वारिशून्यं, शरद्घनं = शरत्कालीनमेघं, न अर्दति = न याचते ॥ १७ ॥

(समासः) नास्ति गुरुदक्षिणामन्तरेण अन्यत्कार्यं यस्य सः । गुरवे अर्थमिति गुर्वर्थं । निर्गलितः अम्बु एव गर्भो यस्मात् तं । शरदो घनमिति शरद्घनं ॥ १७ ॥

(सरलार्थः) भवतो निर्धनत्वाद् अहं अन्यस्मात् दातुः सकाशात् गुरुदक्षिणार्थं अर्थं आदातुं उद्युक्तो भवामि चातकोऽपि निर्जलं जलधरं नैव याचते पुनः का कथा मनुष्याणाम् ॥ १७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इस कारण केवल गुरुदक्षिणा ही के लिये आया हुआ मैं गुरु के लिये धन की याचना अन्य किसी दानी से करूंगा और तुम्हारा कल्याण होवे. जल रहित मेघ की पपीहा भी प्रार्थना नहीं करता ॥ १७ ॥

एतावदुक्त्वा प्रतियातुकामं शिष्यं महर्षेर्नृपतिर्निषिध्य ।
किं वस्तु विद्वन्गुरवे प्रदेयं त्वया कियद्वेति तमन्वयुङ्क्त ॥ १८ ॥

(अन्वयः) एतावद्, उक्त्वा, प्रतियातुकामं, महर्षेः, शिष्यं, नृपतिः, निषिध्य, हे विद्वन् !, त्वया, गुरवे, प्रदेयं, वस्तु, किं, कियत्, वा, "अस्ति" इति तं, अन्वयुङ्क्त ॥ १८ ॥

(टीका) एतावत् = एतावन्मात्रं, उक्त्वा = कथयित्वा, प्रतियातुकामं = गन्तुकामं "प्रस्थानोद्यतं" महर्षेः = वरन्तनोः, शिष्यं = छात्रं, "कौत्सं" नृपतिः = रघुः, निषिध्य = निवार्य, हे विद्वन् ! = हे पण्डित !, त्वया = भवता, गुरवे = उपाध्यायाय महर्षिणे वरतन्तवे, प्रदेयं = दानयोग्यं, वस्तु, किं = किमात्मकं, कियद्-वा = किम्परिमाणं वा अस्ति, इति = इत्थं, तं = कौत्सं, अन्वयुङ्क्त = अपृच्छत् ॥ १८ ॥

(समासः) प्रतियातुं = गन्तुं कामोऽभिलाषो यस्य सः तं । दातुं योग्यं प्रदेयम् ॥ १८ ॥

* अपिशब्दश्चातकस्य जलदैकशरणत्वसूचनार्थः ।

अकिञ्चनत्वं = निर्धनत्वं, व्यनक्ति = प्रकटयति, "इति यत् तत्" स्थाने = युक्तं, "युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने" इत्यमरः, हि = यस्मात् कारणात्, सुरैः = देवैः, पर्यायपीतस्य = क्रमपीतस्य, हिमांशोः = चन्द्रस्य, [1]कलाक्षयः = कलाह्रासः, "कृशत्वं" इति वा, वृद्धेः = उपचयात्, श्लाघ्यतरः = वरः, भवतीति शेषः ॥ १६ ॥

(समासः) अधिपातीत्यधिपः, नराणामधिप इति नराधिपः, एकश्चासौ नराधिप इति एकनराधिपः । मखाज्जातमिति मखजं । न विद्यते किञ्चन यस्य सः अकिञ्चनः, तस्य भावस्तत्वम् । पर्यायेण पीतस्तस्य । हिमा अंशवो यस्य तस्य । कलानां क्षय इति कला-क्षयः । अतिशयेन श्लाघ्य इति श्लाघ्यतरः ॥ १६ ॥

(सरलार्थः) देवैः क्रमशः पीतस्य चन्द्रमसः क्षीणत्वं गौरवमेव आवहति तथैव यागदानजनितं भवतां निर्धनत्वं अपि गौरवमेवा-वहति ॥ १६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे देवताओं करके बारी बारी से पीये हुए चन्द्रमा की कला का घटना अधिक शोभायमान होता है उसी तरह यज्ञ से उत्पन्न हुआ आपका निर्धनत्व भी अधिक शोभा-यमान है ॥ १६ ॥

तदन्यतस्तावदनन्यकार्यो गुर्वर्थमाहर्तुमहं यतिष्ये ।
स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि॥१७

(अन्वयः) तत्, तावत्, अनन्यकार्यः, अहं, अन्यतः, गुर्वर्थं आहर्तुं, यतिष्ये, ते, स्वस्ति, अस्तु, चातकः, अपि, निर्गलिताम्बु-गर्भं, शरद्घनं, न अर्दति ॥ १७ ॥

१ तथाचोक्तं "प्रथमां पिबते वन्हिर्द्वितीयां पिबते रविः । विश्वेदेवास्तृतीयां चतुर्थीं सलिलाधिपः । पञ्चमीं तु वषट्कारः षष्ठीं पिबति वासवः । सप्तमीमृष दिव्या अष्टमीमज एकपात् नवमीं कृष्णपक्षस्य यमः प्राश्नाति वै कला पिबते वायुः पिबत्येकादशीमुमा । द्वादशीं पितरः सर्वे समं प्राश्न । त्रयोदशीं धनाध्यक्षः कुबेरः पिबते कलाम् । चतुर्दशीं पशुपतिः पञ्च प्रजापतिः" इति, "धर्मार्थं क्षीणकोशस्य क्षीणत्वमपि शोभते । सुरैः पीतावशेष कृष्णपक्षे विधोरिव" इति कामन्दकाये । शुक्लप्रतिपदि सर्वं क्षीणमपि चन्द्रं त्कुर्वन्ति, यदुक्तं किराते—"प्रणमन्त्यनपायमुत्थितं प्रतिपच्चन्द्रमिव नृपम्" इति ॥

(टीका) तत् = [illegible], [illegible], अनन्यकार्यः = [illegible], [illegible] = [illegible] वदान्यात्, गुर्वर्थं = गुर्वर्थं, आहर्तुं = [illegible], [illegible] = [illegible], ते = तुभ्यं, स्वस्ति = [illegible] अस्तु भवतु,* [illegible] " अथ [illegible] चातकः स्तो-[illegible] " [illegible], [illegible], निर्गलिताम्बुगर्भं = [illegible], शरद्घनं = शरत्कालीनमेघं, न अर्दति = न याचते ॥ १७ ॥

(समासः) नास्ति [illegible] अन्यत्कार्यं यस्य सः । गुरवे अर्थमिति गुर्वर्थं । निर्गलितः अम्बु एव गर्भो यस्मात् तं । शरदो घनमिति शरद्घनं ॥ १७ ॥

(सरलार्थः) भवतो निर्धनत्वात् अहं अन्यस्मात् दातुः सकाशात् गुरुदक्षिणार्थं अर्थं आदातुं उद्युक्तो भवामि चातकोऽपि निर्जलं [illegible]लधरं नैव याचते पुनः का कथा मनुष्याणाम् ॥ १७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इस कारण केवल गुरुदक्षिणा ही के लिये [illegible]या हुआ मैं गुरु के लिये धन की याचना अन्य किसी दानी [illegible] करूंगा और तुम्हारा कल्याण होवे. जल रहित मेघ की पपीहा [illegible]तो भी प्रार्थना नहीं करता ॥ १७ ॥

[illegible]तावदुक्त्वा प्रतियातुकामं शिष्यं महर्षेर्नृपतिर्निषिध्य ।
[illegible] वस्तु विद्वन्गुरवे प्रदेयं त्वया कियद्वेति तमन्वयुङ्क्त ॥ १८ ॥

(अन्वयः) एतावद्, उक्त्वा, प्रतियातुकामं, महर्षेः, शिष्यं, [illegible]तिः, निषिध्य, हे विद्वन् !, त्वया, गुरवे, प्रदेयं, वस्तु, किं, [illegible]यत्, वा, " अस्ति " इति तं, अन्वयुङ्क्त ॥ १८ ॥

(टीका) एतावत् = एतावन्मात्रं, उक्त्वा = कथयित्वा, प्रति-[illegible]तुकामं = गन्तुकामं " प्रस्थानोद्यतं " महर्षेः = वरन्ततोः, शिष्यं = [illegible]र्, "कौत्सं" नृपतिः = रघुः, निषिध्य = निवार्य, हे विद्वन् ! = हे [illegible]ण्डित !, त्वया = भवता, गुरवे = उपाध्यायाय महर्षिणे वरतन्तवे, [illegible]यं = दानयोग्यं, वस्तु, किं = किमात्मकं, कियद्-वा = किम्परिमाणं अस्ति, इति = इत्थं, तं = कौत्सं, अन्वयुङ्क्त = अपृच्छत् ॥ १८ ॥

(समासः) प्रतियातुं = गन्तुं कामोऽभिलाषो यस्य सः तं । [illegible]तुं योग्यं प्रदेयम् ॥ १८ ॥

* अपि शब्दश्चातकस्य जलदैकशरणत्वसूचनार्थः ।

(सरलार्थः) एवं कथयित्वा प्रस्थानाभिलाषिणं कौत्सं रघुः निवार्य सविनयमुवाच "अयि वेदविदां वर ? तव गुरुदक्षिणायाः कियती संख्या किंवा तस्याः मानं वर्तते इति तं पप्रच्छ ॥ १८ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इस प्रकार कह सफल मनोरथ न होने के कारण महर्षि के चेले कौत्स को रोककर राजा ने यह पूछा कि "हे विद्वन्! गुरु के निमित्त आपको क्या वस्तु और कितनी देनी है॥१८॥

ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय ।
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे ॥ १९ ॥

(अन्वयः) ततः, यथावत्, विहिताध्वराय, स्मयावेशविवर्जिताय, वर्णाश्रमाणां, गुरवे, तस्मै, विचक्षणः, वर्णी, सः, प्रस्तुतं, आचचक्षे ॥ १९ ॥

(टीका) ततः=तदनन्तरं, यथावत्=यथाविधि, विहिताध्वराय=कृतयज्ञाय, "यज्ञः सवोऽध्वरो यागः" इत्यमरः, स्मयावेशविवर्जिताय=गर्वावेशशून्याय, वर्णाश्रमाणां=ब्राह्मणादिब्रह्मचर्यादीनां, गुरवे=नियामकाय, "तद्धर्मप्रतिष्ठापकत्वात्" "वर्णाः स्युर्ब्राह्मणादयः" इति तथा "ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थीभिक्षुश्चतुष्टये" इति चामरः, तस्मै=रघवे, विचक्षणः=विद्वान्, वर्णी=ब्रह्मचारी, "वर्णिनो ब्रह्मचारिणः" इत्यमरः, सः=कौत्सः, प्रस्तुतं=प्रकृतं, "गुरुदक्षिणारूपं वस्तु" आचचक्षे=आख्यातवान् ॥ १९ ॥

(समासः) विहितः अध्वरो येन सः तस्मै । स्मयस्य गर्वस्य संरम्भस्य च आवेशः तेन विवर्जितः तस्मै । वर्णाश्च आश्रमाश्चेति वर्णाश्रमाः, तेषां । विचष्ट इति विचक्षणः ॥ १९ ॥

(सरलार्थः) तदनन्तरं ब्रह्मचारी कौत्सः यथाशास्त्रं कृतयज्ञानुष्ठानं निरभिमानिनं तं रघुं प्रकृतविषयं कथयामास ॥ १९ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) अनन्तर निरभिमानी, यथाविधि यज्ञ करने वाले, रघुको विद्वान् ब्रह्मचारी ने अपना प्रयोजन कहा ॥ १९ ॥

समाप्तविद्येन मया महर्षिर्विज्ञापितोऽभूद्गुरुदक्षिणायै ।
स मे चिरायास्खलितोपचारां तां भक्तिमेवागणयत्पुरस्तात् ॥२०॥

(अन्वयः) समाप्तविद्येन, मया, महर्षिः, गुरुदक्षिणायै, विज्ञापितः, अभूत्, सः, "च" चिराय, अस्खलितोपचारां, तां, मे, भक्तिं, एव, पुरस्तात्, अगणयत् ॥ २० ॥

(सरलार्थ हिन्दी) फिर वार वार पूछने के कारण गुरुजी ने क्रोध में आकर मेरे धनाभाव को न सोचते हुए विद्या की संख्या के अनुसार चौदह करोड़ धन लाने के लिये कहा ॥ २१ ॥

सोऽहं सपर्याविधिभाजनेन मत्वा भवन्तं प्रभुशब्दशेषम्।
अभ्युत्सहे सम्प्रति नोपरोद्धुमल्पेतरत्वाच्छ्रुतनिष्क्रयस्य ॥ २२ ॥

(अन्वयः) सः, सहं, सपर्याविधिभाजनेन, भवन्तं, प्रभुशब्दशेषं, मत्वा, श्रुतनिष्क्रयस्य, अल्पेतरत्वात्, सम्प्रति, उपरोद्धुं, न, अभ्युत्सहे ॥ २२ ॥

(टीका) सः, अहं = कौत्सः, सपर्याविधिभाजनेन = पूजानुष्ठानपात्रेण, भवन्तं = त्वां, प्रभुशब्दशेषं = राजशब्दाऽवशिष्टं, मत्वा = विचार्य, श्रुतनिष्क्रयस्य = शास्त्रमूल्यस्य, "श्रुतं शास्त्रावधृतयोः" इत्यमरः, अल्पेतरत्वात् = अत्यधिकत्वात्, सम्प्रति = अधुना, उपरोद्धुं = निरोद्धुं, न अभ्युत्सहे = नैव अभिलषामि ॥ २२ ॥

(समासः) सपर्याया विधिरिति सपर्याविधिः, तस्य, भाजनं तेन। प्रभुः इति शब्द एव शेषो यस्य सः तं। श्रुतस्य निष्क्रयस्तस्य। अल्पादितरः इति अल्पेतरः, तस्य भावोऽल्पेतरत्वं तस्मात् ॥ २२ ॥

(भावार्थः) सोऽहमिदानीं राजशब्दमात्रावशेषैश्वर्यं भवन्तं [illegible] मे गुरुदक्षिणा बहुला वर्तते, भवतः धनाभावं च, इदानीं [illegible], अतएव [illegible] नोत्सहे ॥ २२ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) [illegible] इस अवस्था के देखने से तो नाम मात्र रहा हुआ राजा मान और विद्या का मूल्य अधिक होने के कारण कुछ कहना नहीं चाहता ॥ २२ ॥

इत्थं द्विजेन द्विजराजकान्तिरावेदितो वेदविदां वरेण।
एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिरेनं जगाद भूयो जगदेकनाथः ॥ २३ ॥

(अन्वयः) वेदविदां, वरेण, द्विजेन, इत्थं, आवेदितः, द्विजराजकान्तिः, एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिः, जगदेकनाथः, एनं, भूयः, जगाद ॥ २३ ॥

(टीका) वेदविदां = वेदज्ञानवतां "[illegible]" वरेण = श्रेष्ठेन, "[illegible]" इत्यमरः, द्विजेन = [illegible]

[illegible]

(सरलार्थ हिन्दी) " गुरुदक्षिणाके अर्थ कौत्स रघुके पाससे असफल मनोरथ होकर दूसरे दाता के पास गया " यह निन्दा का नया अवतार मेरे लिये न हो ॥ २४ ॥

सत्वं प्रशस्ते महिते मदीये वसँश्चतुर्थोऽग्निरिवाग्न्यगारे ।
द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्यावद्यते साधयितुं त्वदर्थम् ॥ २५ ॥

(अन्वयः) सः, त्वं, महिते, प्रशस्ते, मदीये, अग्न्यगारे, चतुर्थः, अग्निः, इव, वसन्, द्वित्राणि, अहानि, सोढुं, अर्हसि, यावत्, त्वदर्थं, साधयितुं, यतिष्ये ॥ २५ ॥

(टीका) सः, त्वं, महिते = पूजिते, प्रशस्ते = मनोहरे मदीये, अग्न्यगारे = त्रेताग्निशालायां, चतुर्थः, अग्निः = वन्हिः, इव, वसन् = निवसन्, द्वित्राणि = द्वित्रिसङ्ख्यकानि, अहानि = दिनानि, सोढुं, अर्हसि = योग्योऽसि, हे अर्हन् ! = हे भान्य ! " अर्हतो जिनसन्मान्यौ " इति यादवः, यावत् = यावत्कालपर्यन्तं, त्वदर्थं = त्वत्प्रयोजनं, साधयितुं = निष्पादयितुं, यतिष्ये = यत्नं करिष्ये ॥ २५ ॥

(समासः) मम इदं मदीयं, तस्मिन् । अग्नेः अगारमिति अग्न्यगारं तस्मिन् । वसतीति वसन् । द्वे त्रीणि वा द्वित्राणि । अर्हतीति तत्सम्बुद्धौ हे अर्हन् ! तव अर्थमिति त्वदर्थम् ॥ २५ ॥

(सरलार्थः) अतस्त्वं मदीये होमाग्नित्रयशोभितेऽग्निमन्दिरे चतुर्थः अग्निरिव निवसन् द्वे त्रीणि वा दिनानि प्रतीक्षस्व, यावदहं ते गुरुदक्षिणार्थं धनानयनाय यत्नं करोमि ॥ २५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) " सो हे पूज्य ! आप मेरे पवित्र अग्निहोत्र स्थान में चौथे अग्नि के समान दो तीन दिन रहें तब तक मैं आपके अर्थ की सिद्धि का उपाय करता हूँ " ॥ २५ ॥

तथेति तस्यावितथं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्सङ्गरमग्रजन्मा ।
गामात्तसारां रघुरप्यवेक्ष्य निष्क्रष्टुमर्थं चकमे कुबेरात् ॥ २६ ॥

(अन्वयः) ।, प्रतीतः, " सन् " तस्य, अवितथं, सङ्गरं, तथा, इति, रघुः, अपि, गां, आत्तसारां, अवेक्ष्य, कुबेरात्, , चकमे ॥ २६ ॥

(= ब्राह्मणः "कौत्सः" "सन्"

तस्य — = अमोघं, सङ्गरं =

(सरलार्थ हिन्दी) वसिष्ठ के अभिमन्त्रित जल के छिड़कने से ही उसके रथकी गति बादल के समान समुद्र-आकाश —और पर्वत में कहीं भी रुकने वाली न थी ॥ २७ ॥

अथाधिशिष्ये प्रयतः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम् ।
सामन्तसम्भावनयैव धीरः कैलासनाथं तरसा जिगीषुः ॥ २८ ॥

(अन्वयः) अथ प्रदोषे प्रयतः, रघुः, सामन्तसम्भावनया एव, कैलासनाथं, तरसा, जिगीषुः, " सन् " कल्पितशस्त्रगर्भं, रथं, अधिशिष्ये ॥ २८ ॥

(टीका) अथ = अनन्तरं, प्रदोषे = रजनीमुखे, प्रयतः = धीरः, रघुः सामन्तसम्भावनया = कतिपयग्रामपतिबुध्या, एव, कैलासनाथं = कुबेरं, तरसा = बलेन, जिगीषुः = विजिगीषुः, " सन् " कल्पितशस्त्रगर्भं = सज्जितशस्त्रमध्यं, रथं = स्यन्दनं, अधिशिष्ये = अधिष्ठितः ॥२८॥

(समासः) समन्तात् भवः सामन्तः तस्य सम्भावना इति सामन्तसम्भावना तया । के = जले लासो लसनमस्येति कैलासः = स्फटिकः तस्य अयमिति कैलासः, तस्य नाथस्तं । कैलासनाथं । जेतुमिच्छुः जिगीषुः । कल्पितं शस्त्रं गर्भे यस्य सः तं ॥ २८ ॥

(सरलार्थः) यथा रघुः सामान्यान् भूपतीन् अनायासेन स्वाधीनीकृतवान् तथैव कुबेरमपि स्वाधीनीकर्तुं विचार्य रथं शस्त्रादिभिः सज्जीकृत्य तत्र निशां व्यतीयाय ॥ २८ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) फिर रघु कुबेर को साधारण राजा की तरह जीतने की इच्छा से सांझको शस्त्रों से सजे हुए रथ में सोया ॥२८॥

प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै सविस्मयाः कोषगृहे नियुक्ताः ।
हिरण्मयीं कोषगृहस्य मध्ये वृष्टिं शशंसुः पतितां नभस्तः ॥ २९ ॥

(अन्वयः) प्रातः प्रयाणाभिमुखाय, तस्मै, कोषगृहे, नियुक्ताः " जनाः " सविस्मयाः, " सन्तः " कोषगृहस्य, मध्ये, नभस्तः, पतितां, हिरण्मयीं वृष्टिं, शशंसुः ॥ २९ ॥

(टीका) प्रातः = प्रभाते, प्रयाणाभिमुखाय = प्रस्थानोन्मुखाय, तस्मै = रघवे, [1] कोषगृहे = भाण्डारागारे, नियुक्ताः = स्थापिताः,

१' मुक्ताकनकरत्नाढ्यः पितृपैतामहोचितः । धर्मार्जितोऽव्ययसहः कोषः कोषज्ञसम्मितः । धर्महेतोस्तथार्थाय भृत्यानाम्भरणाय च । आपदर्थञ्च संरक्ष्यः कोषः

अधिकृताः " " जनाः " सविस्मयाः=साश्चर्याः, " सन्तः "
कोषगृहस्य=भाण्डागारस्य, मध्ये, नभस्तः=आकाशात्, पतितां
=स्खलितां, हिरण्मयीं=सुवर्णमयीं, वृष्टिं=वर्षणं, शशंसुः=कथया-
मासुः ॥ २९ ॥

(समासः) विस्मयेन सहिताः सविस्मयाः । हिरण्यस्य विकारो
यस्याः सा ताम् । प्रयाणस्य अभिमुख इति प्रयाणाभिमुखस्तस्मै ।
कोषस्य गृहमिति कोषगृहं तस्मिन् ॥ २९ ॥

(सरलार्थः) सुवर्णमयीं वृष्टिमवलोक्य साश्चर्याः भाण्डागारिकाः
प्रातः प्रस्थानोद्यतं रघुं सुवर्णवर्षणं निवेदयामासुः ॥ २९ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) प्रातःकाल सुवर्ण वृष्टि देख चकित हुए
कोषाध्यक्ष ने आकर कोषगृह में आकाश से सुवर्ण की वृष्टिका होना
सुनाया ॥ २९ ॥

तं भूपतिर्भासुरहेमराशिं लब्धं कुबेरादभियास्यमानात् ।
दिदेश कौत्साय समस्तमेव पादं सुमेरोरिव वज्रभिन्नम् ॥ ३० ॥

(अन्वयः) भूपतिः, अभियास्यमानात्, कुबेरात्, लब्धं, वज्र-
भिन्नं, सुमेरोः, पादं, इव, तं, भासुरहेमराशिं, समस्तं, एव, कौत्साय,
दिदेश ॥ ३० ॥

(टीका) भूपतिः=रघुः, अभियास्यमानात्=अभिगमिष्य-
माणात्, कुबेरात्=धनदात्, लब्धं=प्राप्तं, वज्रभिन्नं=कुलिशभिन्नं,
सुमेरोः=हेमाद्रेः पादमिव=प्रत्यन्तपर्वतमिव, तं, भासुरहेमराशिं
=देदीप्यमानसुवर्णसमूहं, समस्तं=सम्पूर्णं, एव, कौत्साय=
कौत्सनामकब्राह्मणाय, दिदेश=ददौ ॥ ३० ॥

(समासः) अभियास्यतेऽसौ अभियास्यमानः तस्मात् । वज्रेण
भिन्न इति वज्रभिन्नस्तम् । हेम्नः राशिरिति हेमराशिः भासुरश्चासौ
हेमराशिरिति भासुरहेमराशिः तं ॥ ३० ॥

(सरलार्थः) कुबेरः रघोः धनार्थं आक्रमणं ज्ञात्वा रात्रावेव
तस्य कोषागारे सुवर्णमयीं वृष्टिं ववर्ष रघुरपि सुवर्णाचलस्य भिन्नं
खण्डमिव तं सकलं सुवर्णराशिं कौत्साय ददौ ॥ ३० ॥

(सरलार्थ हिन्दी) राजा रघु ने चढ़ाई किये हुए कुबेर से
वज्र से काटे सुमेरु के टुकड़े के समान पाई हुई कान्तिमान वह
सम्पूर्ण सोने की राशी कौत्सको देदी ॥ ३० ॥

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ॥ ३१ ॥

(अन्वयः) गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहः, अर्थी, अर्थिकामात्, अधिकप्रदः, नृपः, च, "एतौ" तौ, द्वौ, अपि, साकेतनिवासिनः, जनस्य अभिनन्द्यसत्त्वौ, अभूताम् ॥ ३१ ॥

(टीका) गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहः = गुरुदक्षिणातोऽधिकधननिरभिलाषः, अर्थी = याचकः, अर्थिकामात् = याचकमनोरथात् अधिकप्रदः = विशेषप्रदः, नृपः = राजारघुः, च, साकेतनिवासिनः = अयोध्यावासिनः "साकेतः स्यादयोध्यायां" इति यादवः, जनस्य = अभिनन्द्यसत्त्वौ = स्तुत्यव्यवसायौ, 'द्रव्यासुव्यवसायेषु सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु' इत्यमरः, अभूताम् = आस्ताम् ॥ ३१ ॥

(समासः) अर्थः प्रयोजनमस्यास्तीति अर्थी । अर्थिनः काम इति अर्थिकामः तस्मात् । अधिकं प्रददातीत्यधिकप्रदः । साकेते निवसतीति तस्य साकेतनिवासिनः । अभिनन्द्यं सत्त्वं ययोस्तौ । निर्गता विषयेभ्यः स्पृहा तृष्णा यस्यासौ निस्पृहः, प्रदातुं योग्यं प्रदेयम्, गुरवे प्रदेयं गुरुप्रदेयं तस्मादधिके निस्पृह इति गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहः ॥ ३१ ॥

(सरलार्थः) देयचतुर्दशकोटिरूपदक्षिणातः अधिकधनेषु निस्पृहः कौत्सः, याचकप्रार्थनाऽपेक्षया विशेषप्रदः रघुश्च द्वावपि स्वं स्वं निःस्वार्थभावम् औदार्यञ्च प्रकटयन्तौ सन्तौ अयोध्यावासिनः जनस्य साधुवादं प्राप्नुवन्तौ ॥ ३१ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) गुरुकी दक्षिणासे अधिक न चाहने वाला भिक्षुक कौत्स और मांगने वाले के मनोरथ से अधिक देनेवाला राजा रघु ये दोनों ही अयोध्यावासियों के सराहने योग्य हुए ॥३१॥

अथोष्ट्रवामीशतवाहितार्थं प्रजेश्वरं प्रीतमना महर्षिः ।
स्पृशन्करेणानतपूर्वकायं सम्प्रस्थितो वाचमुवाच कौत्सः ॥ ३२ ॥

(अन्वयः) अथ, प्रीतमना, महर्षिः, कौत्सः, सम्प्रस्थितः, "सन्" उष्ट्रवामीशतवाहितार्थं, आनतपूर्वकायं, प्रजेश्वरं, करेण, स्पृशन्, वाचं, उवाच ॥ ३२ ॥

(टीका) अथ, प्रीतमना = प्रसन्नमानसः, महर्षिः = महामुनिः, कौत्सः, सम्प्रस्थितः = प्रस्थास्यमानः, "सन्" उष्ट्रवामीशतवाहि-

[illegible] = [illegible] प्रकृष्टं
[illegible] वाचं = वचनं,
[illegible] रघुं, [illegible] स्पृशन् = स्पर्शं कुर्वन्,
[illegible] = कथयामास ॥ ३२ ॥

(समासः) [illegible] । उष्ट्राश्च वाम्यश्च इति
[illegible] । पूर्वं कायो यस्य
[illegible] । इषितुं शीलमस्येति
पूर्वकायः, [illegible] । स्पृशतीति स्पृशन् ॥ ३२ ॥
[illegible] प्रजानामधिप [illegible] । [illegible] मनोरथोऽभूत्वा गुरोः
(भावार्थः) [illegible] महर्षिः कौत्सः [illegible] प्रेषितधनं (प्रातः
[illegible] सम्यक् [illegible] उष्ट्राश्वतर्याभिः प्रेषयामास) प्रणामप्रणतशीर्षं
[illegible] रघुः तं [illegible] ताभिः प्रेषयामास) प्रणामप्रणतशीर्षं
[illegible] रघुः तं [illegible]
[illegible] स्पृशन् इदं वचनम् उवाच ॥ ३२ ॥
(भावार्थ हिन्दी) [illegible], ऊंटों और खच्चरों पर लादकर धन
[illegible] ने वाले, अगला अंग झुकाए हुए प्रजानाथ रघु को चलती समय
[illegible] हुए महर्षि कौत्स ने यह कहा ॥ ३२ ॥

किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भूर्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम् ।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा ॥ ३३ ॥

(अन्वयः) वृत्ते, स्थितस्य, प्रजानां, अधिपतेः, भूः, कामसूः, यदि, अत्र किं, चित्रं, तु, तव, प्रभावः, अचिन्तनीयः, येन, "त्वया" द्यौः, अपि, मनीषितं, दुग्धा, ॥ ३३ ॥

(टीका) वृत्ते[1]=चतुर्विधराजवृत्ते, स्थितस्य=तिष्ठतः, प्रजानां=जनानां, अधिपतेः=राज्ञः, भूः=भूमिः, कामसूः=मनोरथप्रसूः, यदि=चेत्, अत्र=भूमेः मनोरथप्रसवने, किं=चित्रं=नकिमपि आश्चर्यं, तु=किन्तु, तव=ते, प्रभावः=प्रतापः, अचिन्तनीयः=चिन्तयितुमशक्यः, येन=प्रभावेण "त्वया" द्यौः=दिवं, अपि, मनीषितं=अभिलषितं, स्वेच्छानुरूपं, वा, दुग्धा ॥ ३३ ॥

(समासः) अधिपातीत्यधिपतिः तस्य। कामान् सूत इति कामसूः। चिन्तयितुं शक्य इति चिन्तनीयः न चिन्तनीय इति अचिन्तनीयः ॥ ३३ ॥

१ न्यायेनार्जनमर्थस्य रक्षणं वर्धनं तथा। सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च राजवृत्तं चतुर्विधम् ॥ इतिकामन्दकः ॥ अपच गुरोः पूजा घृणा शौचं सत्यमिन्द्रियनिग्रहः। प्रवर्तनं हितानाञ्च तत्सर्वं वृत्तमुच्यते।

(सरलार्थः) नीतिमार्गानुगामी नृपः भूमिसकाशात् स्वाभिलषितं वस्तु यल्लभते नैतदाश्चर्यंकरं किन्तु भवान् यत् स्वर्गादपि स्वाभीप्सितं प्राप्तवान् एतदेव अत्यन्तं आश्चर्यंकरम् ॥ ३३ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इसमें क्या आश्चर्य है जो धर्मशीलराजा की भूमि कामना पूरी करने वाली हो परन्तु तुम्हारा प्रभाव तो विशेष आश्चर्य कराता है जिसने कि स्वर्ग भी मनमाना दुहा ॥ ३३ ॥

आशास्यमन्यत्पुनरुक्तभूतं श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते ।
पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं भवन्तमीड्यं भवतः पितेव ॥ ३४ ॥

(अन्वयः) सर्वाणि, श्रेयांसि, अधिजग्मुषः, ते, अन्यत्, आशास्यं, पुनरुक्तभूतं, " किन्तु " ईड्यं, भवन्तं, भवतः, पिता, इव, " त्वमपि " आत्मगुणानुरूपं, पुत्रं, लभस्व ॥ ३४ ॥

(टीका) सर्वाणि=सकलानि, श्रेयांसि=कल्याणानि, " श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम् " इत्यमरः, अधिजग्मुषः= अधिगतवतः, ते=तव, अन्यत्=सुतातिरिक्तं, आशास्यं=आशीः-साध्यं, पुनरुक्तभूतं=पुनरुक्तमिव, " किन्तु " ईड्यं=स्तुत्यं, भवन्तं=त्वां, भवतः=तव, पिता=दिलीपः, इव, " त्वमपि " आत्मगुणानुरूपं=आत्मगुणतुल्यं, पुत्रं=सुतं, लभस्व=प्राप्नुहि ॥

(समासः) ईडितुं योग्यः ईड्यस्तं। अनुगतः रूपमिति अनुरूपं, आत्मनः गुणमिति आत्मगुणं तस्य अनुरूपमिति आत्मगुणानुरूपं ॥

(सरलार्थः) चक्रवर्तिनः तव स्वर्गेऽपि अप्राप्यं किमपि नास्ति अत आशीर्वादोऽपि व्यर्थ एव तथापि इदमेव केवलं अस्तु यद् यथा तव पिता दिलीपः त्वां लेभे तथैव त्वमपि आत्मसदृशं पुत्रं प्राप्नुहि३४

(सरलार्थ हिन्दी) तुझे सभी अच्छी वस्तु प्राप्त है इसलिये अब आशीर्वाद देना व्यर्थ है किन्तु जैसे दिलीप को तुम प्राप्त हुए उसी प्रकार तुम्हारे ही ऐसे गुण वाला पुत्र तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ ३४ ॥

इत्थं प्रयुज्याशिषमग्रजन्मा राज्ञे प्रतीयाय गुरोः सकाशम् ।
राजापि लेभे सुतमाशु तस्मादालोकमर्कादिव जीवलोकः ॥

(अन्वयः) अग्रजन्मा, इत्थं, राज्ञे, आशिषं, प्रयुज्य, गुरोः, सकाशं, प्रतीयाय, राजा, अपि, जीवलोकः, अर्कात्, आलोकं, इव, तस्मात्, आशु, सुतं, लेभे ॥ ३५ ॥

(टीका) अग्रजन्मा = ब्राह्मणः, इत्थं = पूर्वोक्तप्रकारेण, राज्ञे = रघवे, आशिषं = आशीर्वादं, प्रयुज्य = दत्त्वा, गुरोः = वरतन्तोः, सकाशं = समीपं, प्रतीयाय = प्राप, राजा = रघुः, अपि, जीवलोकः = जीवसमूहः, अर्कात् = सूर्यात्, आलोकं = प्रकाशं इव, तस्मात् = मुनेः आशिषः प्रयोगात्, "कौत्साशीर्वादात्" आशु = शीघ्रं, सुतं = पुत्रं, लेभे = प्राप ॥ ३५ ॥

(समासः) अग्रे जन्म यस्य सः ॥ ३५ ॥

(सरलार्थः) वेदवित् कौत्सः राजानं रघुं आशिषं दत्त्वा गुरोः आश्रममाजगाम यथा जनाः सूर्यात् प्रकाशं प्राप्नुवन्ति तथैव स राजाऽपि कौत्साशीर्वादप्रभावात् शीघ्रमेव स्वसदृशं पुत्रं प्राप ॥ ३५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) इस प्रकार राजा रघुको आशीर्वाद दे कौत्स अपने गुरु के पास पहुँचा राजा ने भी, उस ब्राह्मण के आशीर्वाद से पुत्र पाया ॥ ३५ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम् ।
अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजन्मानमजं चकार ३६ ॥

(अन्वयः) तस्य, देवी, ब्राह्मे मुहूर्ते, कुमारकल्पं, कुमारं, सुषुवे, किल । अतः, पिता, ब्रह्मणः, एव, नाम्ना, तं, आत्मजन्मानं अजं, चकार ॥ ३६ ॥

(टीका) तस्य = रघोः, देवी = कृताभिषेका राज्ञी प्रभावती, "देवी कृताभिषेकायाम्" इत्यमरः, ब्राह्मे = अभिजिन्नामके, मुहूर्ते, कुमारकल्पं = स्कन्दसदृशं, कुमारं = बालं, सुषुवे = प्रासूत किल, अतः = ब्राह्ममुहूर्तोत्पन्नत्वात्, पिता = रघुः, ब्रह्मणः = विधेः, एव, नाम्ना, तं, आत्मजन्मानं = आत्मोद्भवं "पुत्रं" अजं = अजनामकं, चकार = कृतवान् ॥ ३६ ॥

(समासः) ईषदसमाप्तः कुमारः कुमारकल्पस्तम् । आत्मनः सकाशात् जन्म यस्य सः तम् ॥ ३६ ॥

(सरलार्थः) रघोः महिषी ब्राह्ममुहूर्ते कार्तिकेयतुल्यं सुतं प्रासूत । अतः तस्य पिता रघुः ब्रह्मणः एव नाम्ना तस्य "अजं" इति नाम चकार ॥ ३६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) ब्राह्म (अभिजित) मुहूर्तमें उसकी रानी ने स्वामी कार्तिक के समान पुत्र जना । इसलिये उसके पिता रघुने ब्रह्मा ही के नाम पर उस पुत्र का "अज" नाम रक्खा ॥ ३६ ॥

रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम् ।
न कारणात्स्वाद्विभिदे कुमारः प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात् ॥३७॥

(अन्वयः) ओजस्वि, रूपं, तदेव, वीर्यं, तदेव, नैसर्गिकं, उन्नतत्वं, " च " तदेव । कुमारः, प्रवर्तितः, दीपः, प्रदीपात्, इव स्वात्, कारणात् न, विभिदे ॥ ३७ ॥

(टीका) ओजस्वि=दीप्तिमत्, ओजो बले च दीप्तौ च " इति विश्वः, रूपं=स्वरूपं,=तदेव=पितृसम्बन्धि-एव, वीर्यं=शौर्यं, नैसर्गिकं=स्वाभाविकं, उन्नतत्वं=उच्चैस्तरत्वं, तदेव=तादृशमेव, कुमारः=शिशुः, प्रवर्तितः=उत्पादितः, दीपः, प्रदीपात्=स्वोत्पादक-दीपात्, इव, स्वात्=स्वकीयात्, कारणात्=जनकात्, न विभिदे= भिन्नोनाऽभूत्, सर्वतस्तादृश एव जात इत्यर्थः ॥ ३७ ॥

(सरलार्थः) यथा एकस्मात् दीपात् प्रज्वालितोऽन्यः प्रदीपः जनकभूतात् पूर्वदीपात् किञ्चिदपि विजातीयरूपो न भवति तथैव अयमपि कुमारः रूपप्रतापादिगुणैः जनकं रघुं सर्वतोऽनुचक्रे ॥ ३७ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे एक दीपक से दूसरा दीपक जलाने पर रूप और तेज आदि में उत्पन्न करने वाले दीपक के समान ही रहता है उसी प्रकार कुमार अज भी रूप बल और पराक्रम से अपने पिता रघु के समान ही हुआ ॥ ३७ ॥

उपात्तविद्यं विधिवद्गुरुभ्यस्तं यौवनोद्भेदविशेषकान्तम् ।
श्रीः साभिलाषाऽपि गुरोरनुज्ञां धीरेव कन्या पितुराचकाङ्क्ष ॥३८॥

(अन्वयः) गुरुभ्यः, विधिवत, उपात्तविद्यं, यौवनोद्भेदविशेष-कान्तं, तं, साभिलाषा, अपि, श्रीः, धीरा, कन्या, पितुः, इव, गुरोः, अनुज्ञां, आचकाङ्क्ष ॥ ३८ ॥

(टीका) गुरुभ्यः=अध्यापकेभ्यः, 'बहूक्त्या नाना विद्याप्राप्तिः' विधिवत्=यथाशास्त्रं, उपात्तविद्यं=प्राप्तचतुर्दशविद्यं, यौवनोद्भेद-विशेषकान्तं=तारुण्याविर्भावसुन्दरं, तं=अजं, साभिलाषा=

तं श्लाघ्यसम्बन्धमसौ विचिन्त्य दारक्रियायोग्यदशञ्च पुत्रम् ।
प्रस्थापयामास ससैन्यमेनमृद्धां विदर्भाधिपराजधानीम् ॥ ४० ॥

(अन्वयः) असौ, तं, श्लाघ्यसम्बन्धं, विचिन्त्य, पुत्रं, च, दारक्रियायोग्यदशं, "विचिन्त्य" ससैन्यं, एनं, ऋद्धां विदर्भाधिपराजधानीं, प्रस्थापयामास ॥ ४० ॥

(टीका) असौ = रघुः, तं = भोजं, "शुद्धवंशोत्पन्नत्वेन" श्लाघ्यसम्बन्धं = स्तुत्यसम्बन्धं, विचिन्त्य = विचार्य, पुत्रं = सुतं, "अजं" दारक्रियायोग्यदशं = विवाहसंस्कारोचितवयसं, "विचिन्त्य" ससैन्यं = चमूसहितं, एनं, ऋद्धां = समृद्धां, विदर्भाधिपराजधानीं = भोजपुरीं, "प्रति" प्रस्थापयामास = प्रस्थापितवान् ॥ ४० ॥

(समासः) श्लाघ्यः सम्बन्धो यस्य सः तम् । दारक्रियायाः योग्या दशा यस्य सः तं । सैन्येन सहितः ससैन्यस्तं । विदर्भाधिपस्य राजधानी ताम् ॥ ४० ॥

(सरलार्थः) रघुः, भोजवंशेन साकं स्वकुलस्य वैवाहिकः सम्बन्धः प्रशंसनीयो भविष्यतीति विचार्य, कुमारं अजञ्च विवाहोचितवयस्कं ज्ञात्वा सेनासमवेतं तं भोजनगरीं प्रति प्रेषयामास ॥ ४० ॥

(सरलार्थ हिन्दी) राजा भोज के वंश से अपना सम्बन्ध उचित समझ रघु ने पुत्र अजको सेनासहित विदर्भनाथ की राजधानी की ओर भेजा ॥ ४० ॥

तस्योपकार्यारचितोपचारा वन्येतरा जानपदोपदाभिः ।
मार्गे निवासा मनुजेन्द्रसूनोर्बभूवुरुद्यानविहारकल्पाः ॥ ४१ ॥

(अन्वयः) उपकार्यारचितोपचाराः, जानपदोपदाभिः, वन्येतराः, तस्य, मनुजेन्द्रसूनोः, मार्गे, निवासाः, उद्यानविहारकल्पाः, बभूवुः ॥ ४१ ॥

(टीका) उपकार्यारचितोपचाराः = पटभवनरचितस्रक्चन्दनाद्युपचाराः, जानपदोपदाभिः = ग्रामागतजनोपायनैः, वन्येतराः = अवन्याः, तस्य = पूर्वोक्तस्य, मनुजेन्द्रसूनोः = अजस्य, मार्गे = पथि, निवासाः = वासनिकाः, उद्यानविहारकल्पाः = उद्यानविहारस्थानसदृशाः, बभूवुः = आसन् ॥ ४१ ॥

अथोपरिष्टाद्भ्रमरैर्भ्रमद्भिः प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशः ।
निर्धौतदानामलगण्डभित्तिर्वन्यः सरित्तो गज उन्ममज्ज ॥ ४३

(अन्वयः) अथ, उपरिष्टात्, भ्रमद्भिः, भ्रमरैः, प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशः, निर्धौतदानामलगण्डभित्तिः, वन्यः, गजः, सरित्तः, उन्ममज्ज ॥ ४३ ॥

(टीका) अथ = अनन्तरं, उपरिष्टात् = ऊर्ध्वं, भ्रमद्भिः = भ्रमणशीलैः, भ्रमरैः, = द्विरेफैः, प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशः = प्राग्विज्ञापितजलप्रवेशः, निर्धौतदानाऽमलगण्डभित्तिः = क्षालितमदनिर्मलकपोलभित्तिः, वन्यः = आरण्यकः, गजः = मतङ्गजः; सरित्तः = नर्मदायाः सकाशात्, उन्ममज्ज = उत्थितः ॥ ४३ ॥

(समासः) प्राक्सूचितः अन्तः सलिले प्रवेशो यस्य सः । निर्धौतदाने अतएव अमले गण्डभित्ती यस्य सः ॥ ४३ ॥

(सरलार्थः) अनन्तरं कश्चन वन्यो गजः, नदीजलाभ्यन्तरात्, उत्थितः, तस्य च उन्मज्जनात्प्रागेव तन्मदजलगन्धाकृष्टाः सलिलोपरि गुञ्जन्तः भ्रमराः तस्य निमज्जनं प्राबोधयामासुः ॥ ४३ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जलके ऊपर गूंजते हुए भौरों से पानी में प्रवेश किया अनुमान होने वाला मदजलधुलजाने से उजली कनपटीवाला जँगली हाथी नदी से निकला ॥ ४३ ॥

निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु ।
नीलोर्ध्वरेखाशबलेन शंसन्दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन ॥ ४४ ॥
संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन तीराभिमुखः सशब्दम् ।
बभौ स भिन्दन्बृहतस्तरङ्गान्वार्यर्गलाभङ्ग इव प्रवृत्तः ॥युग्मम्॥ ४५

(अन्वयः) निःशेषविक्षालितधातुना, अपि, नीलोर्ध्वरेखाशबलेन, अश्मविकुण्ठितेन, दन्तद्वयेन, ऋक्षवतः तटेषु, वप्रक्रियां, शंसन्, संहारविक्षेपलघुक्रियेण, हस्तेन, सशब्दं, बृहतः, तरङ्गान्, भिन्दन्, तीराभिमुखः, सः, वार्यर्गलाभङ्गे, प्रवृत्तः, इव, बभौ ॥ ४४ ॥

(टीका) निःशेषविक्षालितधातुना = अशेषनिर्धौतगैरिकादिधातुना, अपि, नीलोर्ध्वरेखाशबलेन = श्यामोर्ध्वरेखाकर्बुरेण, अश्म-

अथोपरिष्टाद्भ्रमरैर्भ्रमद्भिः प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशः ।
निर्धौतदानामलगण्डभित्तिर्वन्यः सरित्तो गज उन्ममज्ज ॥ ४३

(अन्वयः) अथ, उपरिष्टात्, भ्रमद्भिः, भ्रमरैः, प्राक्सूचितान्तः सलिलप्रवेशः, निर्धौतदानामलगण्डभित्तिः, वन्यः, गजः, सरित्तः उन्ममज्ज ॥ ४३ ॥

(टीका) अथ = अनन्तरं, उपरिष्टात् = ऊर्ध्वं, भ्रमद्भिः = भ्रमणशीलैः, भ्रमरैः, = द्विरेफैः, प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशः = प्राग्विज्ञापितजलप्रवेशः, निर्धौतदानाऽमलगण्डभित्तिः = क्षालितमदनिर्मलकपोलभित्तिः, वन्यः = आरण्यकः, गजः = मतङ्गजः; सरित्तः = नर्मदायाः सकाशात्, उन्ममज्ज = उत्थितः ॥ ४३ ॥

(समासः) प्राक्सूचितः अन्तः सलिले प्रवेशो यस्य सः । निर्धौतदाने अतएव अमले गण्डभित्ती यस्य सः ॥ ४३ ॥

(सरलार्थः) अनन्तरं कश्चन वन्यो गजः, नदीजलाभ्यन्तरात्, उत्थितः, तस्य च उन्मज्जनात्प्रागेव तन्मदजलगन्धाकृष्टाः सलिलोपरि गुञ्जन्तः भ्रमराः तस्य निमज्जनं प्रावोधयामासुः ॥ ४३ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जलके ऊपर गूंजते हुए भौरों से पानी में प्रवेश किया अनुमान होने वाला मदजलधुलजाने से उजली कनपटीवाला जँगली हाथी नदी से निकला ॥ ४३ ॥

निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु ।
नीलोर्ध्वरेखाशवलेन शंसन्दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन ॥ ४४ ॥
संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन तीराभिमुखः सशब्दम् ।
बभौ स भिन्दन्बृहतस्तरङ्गान्वार्यर्गलाभङ्ग इव प्रवृत्तः ॥युग्मम्॥ ४५

(अन्वयः) निःशेषविक्षालितधातुना, अपि, नीलोर्ध्वरेखाशवलेन, अश्मविकुण्ठितेन, दन्तद्वयेन, ऋक्षवतः तटेषु, वप्रक्रियां, शंसन्, संहारविक्षेपलघुक्रियेण, हस्तेन, सशब्दं, बृहतः, तरङ्गान्, भिन्दन्, तीराभिमुखः, सः, वार्यर्गलाभङ्गे, प्रवृत्तः, इव, बभौ ॥ ४४ ॥

(टीका) निःशेषविक्षालितधातुना = अशेषनिर्धौतगैरिकादिधातुना, अपि, नीलोर्ध्वरेखाशवलेन = श्यामोर्ध्वरेखाकर्बुरेण, अश्म-

(अन्वयः) शैलोपमः, सः, शैवलमञ्जरीणां जालानि, उरसा, कर्षन्, पश्चात्, तटं, उत्ससर्प, पूर्वं, तदुत्पीड़ितवारिराशिः, सरित्प्रवाहः, " तटं, उत्ससर्प " ॥ ४६ ॥

(टीका) शैलोपमः = गिरितुल्यः, सः = गजः, शैवलमञ्जरीणां = जललीनवल्लीनां, जालानि = वृन्दानि, उरसा = वक्षस्थलेन, कर्षन् = आकर्षन्, पश्चात् = अनन्तरं, तटं = तीरं, उत्ससर्प = आजगाम, पूर्वं = प्राक्, तदुत्पीड़ितवारिराशिः = गजोत्पीड़ितजलसमूहः, सरित्प्रवाहः = नदीवेगः, " तटं " उत्ससर्प ॥ ४६ ॥

(समासः) शैल उपमा यस्यसः । शैवलानां मञ्जर्यः शैवलमञ्जर्यः तासां । वारिणो राशिरिति वारिराशिः, तेन उत्पीड़ितः वारिराशिर्यस्यः सः । सरितः प्रवाह इति सरित्प्रवाहः ॥ ४६ ॥

(सरलार्थः) पर्वतसदृशाकारः सः गजः उरस्थलेन शैवललतानां जालानि आकर्षन् नदीतीरं आरुरोह, तेन क्षुभितं नदीजलं तु तत्प्रागेव कूलं प्लावयामास ॥ ४३ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) पहाड़की उपमावाला हाथी शिवाल की लताओं को छातीसे खींचता हुआ अपने हिलाए नदी जलके प्रवाहके बाद तट पर पहुँचा ॥ ४६ ॥

तस्यैकनागस्य कपोलभित्त्योर्जलावगाहक्षणमात्रशान्ता ।
वन्येतरानेकपदर्शनेन पुनर्दिदीपे मददुर्दिनश्रीः ॥ ४७ ॥

(अन्वयः) तस्य, एकनागस्य, कपोलभित्त्योः, जलावगाहक्षणमात्रशान्ता, मददुर्दिनश्रीः, वन्येतरानेकपदर्शनेन, पुनः, दिदीपे ॥ ४७ ॥

(टीका) तस्य = पूर्वोक्तस्य, एकनागस्य = एकाकिनोगजस्य, कपोलभित्त्योः = गण्डप्रदेशयोः जलावगाहक्षणमात्रशान्ता = नीरमज्जनमुहूर्तनिवृत्ता, मददुर्दिनश्रीः = मदवर्षलक्ष्मीः, वन्येतरानेकपदर्शनेन = ग्राम्यबहुगजावलोकनेन = पुनः = भूयः, दिदीपे = ववृधे ॥ ४७ ॥

(समासः) एकश्चासौ नाग इति एक नागः तस्य एकनागस्य । कपोलयोः भित्तिः कपोलभित्तिस्तयोः । जले अवगाहः जलावगाहस्तेन क्षणमात्रं शान्ता । मदस्य दुर्दिनमिति मददुर्दिनं तस्य श्रीः ।

(अन्वयः) सः, छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यं, भग्नाक्षपर्यस्तरथं, रामापरित्राणविहस्तयोधं, सेनानिवेशं, क्षणेन, तुमुलं, चकार ॥ ४९ ॥

(टीका) सः = हस्ती, छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यं = भग्नशृङ्खला-पलायिताश्वोष्ट्रवृषभशून्यं, भग्नाक्षपर्यस्तरथं = छिन्नरथावयव-पतितरथं, रामापरित्राणविहस्तयोधं = स्त्रीसंरक्षणव्याकुलवीरं, सेना-निवेशं = सैन्यशिविरं, क्षणेन = क्षणमात्रेण, तुमुलं = संकुलं, चकार = कृतवान् ॥ ४९ ॥

(समासः) युगं वहन्तीति युग्याः । छिन्नाः बन्धा यैस्ते छिन्न-बन्धाः अतएव द्रुताः इति छिन्नबन्धद्रुताः ते च ते युग्याश्चेति छिन्नबन्धद्रुतयुग्याः तैः शून्यस्तम् । भग्ना अक्षा येषान्ते भग्नाक्षा अतएव पर्यस्ता रथा यस्मिन् सः तम् । रामाणां परित्राणे विहस्ता योधा यस्मिन् सः तम् । सेनायाः निवेश इति सेनानिवेशस्तम् ॥४९॥

(सरलार्थः) वन्यगजस्य भयात् सर्वेऽपि अश्वाः सकलं सैन्यसमूहं क्षोभयामासुः ॥ ४९ ॥

(सरलार्थं हिन्दी) लगाम तोड़ाकर भागे हुए घोड़ों से शून्य, धुरा टूट जानेसे पड़े हुए रथों वाले तथा स्त्रियों की रक्षामें घबड़ाए हुए योद्धाओं वाले सैन्यको उस हाथीने क्षणमात्र में व्याकुल कर दिया ॥ ४९ ॥

तमापतन्तं नृपतेरवध्यो वन्यः करीति श्रुतवान्कुमारः ।
निवर्तयिष्यन्विशिखेन कुम्भे जघान नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः ॥ ५० ॥

(अन्वयः) वन्यः, करी, नृपतेः, अवध्यः, इति श्रुतवान्, कुमारः, आपतन्तं, तं, निवर्तयिष्यन्, विशिखेन, नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः, "सन्" कुम्भे, जघान ॥ ५० ॥

(टीका) वन्यः = आरण्यकः, करी = गजः, नृपतेः = राज्ञः, अवध्यः = अमारणीयः, इति, श्रुतवान् = ज्ञातवान्, कुमारः = अजः, आपतन्तं = आक्रमन्तं "अभिधावन्तं" इति वा, तं = गजं, निवर्तयिष्यन् = परावर्तयिष्यन् "न तु मारयिष्यन्" अतएव, नात्यायतकृष्ट-शार्ङ्गः = नातिदीर्घसमाकृष्टचापः, "सन्" विशिखेन = बाणेन, कुम्भे = गण्डस्थले, जघान = हतवान् ॥ ५० ॥

ापितः, "इदानीं" भवतः=तव, प्रतिप्रियं=*प्रत्युपकारं, न कुर्यां,
वेत्=तर्हि, मे=मम, स्वपदोपलब्धिः=स्वस्थानप्राप्तिः, वृथा
स्यात्=व्यर्थमेव भविष्यति ॥ ५६ ॥

(समासः) चिरं प्रार्थितं दर्शनं यस्य सः तेन । सत्त्वं विद्यते यस्या-
ौ सत्त्ववान् तेन । स्वपदस्य उपलब्धिरिति स्वपदोपलब्धिः ॥ ५६ ॥

(सरलार्थः) तदारभ्य चिरप्रार्थितं भवदागमनं प्रतीक्षमाणोऽ-
हमत्र तिष्ठामि । अद्य महता भाग्येन भवदागमनञ्जातं येनाहं शापमुक्तो
जातः । एवं उपकृतोऽहं यदि भवतः प्रत्युपकारं न कुर्यां तदा मे
स्वस्थानप्राप्तिरपि व्यर्थैव स्यात् ॥ ५६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) तव से आपके दर्शन की इच्छा से मैं यहां
रहता हूं आज बड़े भाग्य से आपके दर्शन होने से मैं शाप से मुक्त
हुआ, अब यदि आपका उपकार न किया तो मेरा "गन्धर्व स्थान"
पाना ही व्यर्थ होगा ॥ ५६ ॥

संमोहनं नाम सखे ममास्त्रं प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम् ।
गान्धर्वमादत्स्व यतः प्रयोक्तुर्न चारिहिंसा विजयश्च हस्ते ॥ ५७ ॥

(अन्वयः) हेसखे ? प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रं, गान्धर्वं, संमो-
हनं, नाम, मम, अस्त्रं, आदत्स्व, यतः, प्रयोक्तुः, अरिहिंसा, न,
विजयः च, हस्ते, स्थास्यतीतिशेषः ॥ ५७ ॥

(टीका) हेसखे ?=हेप्राणसम ?, प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रं=
प्रक्षेपणसंक्षेपभिन्नमन्त्रं, गान्धर्वं=गन्धर्वदेवताकं, संमोहनं, प्रस्वा-
पनं, नाम=प्रसिद्धं, मम=मे, अस्त्रं=आयुधं, आदत्स्व=गृहाण,
यतः=यस्मात् अस्त्रात्, प्रयोक्तुः=प्रक्षेपयितुः, अरिहिंसा=शत्रुमा-
रणं, न=नभविष्यति, "मा हिंस्यात्सर्वभूतानीतिश्रुतिदर्शनात्" वि-
जयः=शत्रुजयोऽपि, हस्ते=करे, हस्तगतविजयोभविष्यसीत्यर्थः॥५७॥

(समासः) प्रयोगे=प्रेरणे, संहारे=उपसंहारे च विभक्तौ=
भिन्नौ मन्त्रौ यस्य तत् । संमोह्यतेऽनेनेति सम्मोहनम् ।

(सरलार्थः) हेसखे ? प्रयोगे संहारे च भिन्नमन्त्रं संमोहनं नाम
मे गान्धर्वास्त्रं गृहाण येन त्वं शत्रुवधं विनैव जयश्रियं प्राप्स्यसि॥५७॥

(सरलार्थ हिन्दी) हे मित्र ? आप छोड़ने और लौटाने में
भिन्न २ मन्त्र वाले गन्धर्वसम्बन्धी सम्मोहन नामके मेरे अस्त्र को

* उपकृत-प्रतिरक्षं ... जीवितान्महाजे वस्तु ।

ग्रहण करो जिससे प्रयोग करनेवाले को वैरियों की हिंसा भी नहीं होगी और विजय हाथों में रहेगा ॥ ५७ ॥

अलं ह्रिया मां प्रति यन्मुहूर्तं दयापरोऽभूः प्रहरन्नपि त्वम् ।
तस्मादुपच्छन्दयति प्रयोज्यं मयि त्वया न प्रतिषेधरौक्ष्यम् ॥५८॥

(अन्वयः) "किञ्च" मां, प्रति, ह्रिया, अलं, यत्, त्वं, "मां" प्रहरन्, अपि, मुहूर्तं, दयापरः, अभूः, तस्मात्, उपच्छन्दयति, मयि, त्वया, प्रतिषेधरौक्ष्यं, न, प्रयोज्यम् ॥ ५८ ॥

(टीका) "किञ्च" मां, प्रति, ह्रिया = शरप्रहारनिमित्तया लज्जया अलं = विरतोभव "प्रहारलज्जितचित्तं दूरीकुरु" यत् = यस्मात् त्वं मां, प्रहरन्नपि = विध्यन्नपि, मुहूर्तं = क्षणमात्रं, दयापरः = कृपापरः, अभूः = आसीः, तस्मात्, कारणात्" उपच्छन्दयति = प्रार्थयमाने, मयि, त्वया = भवता, प्रतिषेधरौक्ष्यं = परिहारपारुष्यं, नप्रयोज्यं = नविधेयम् ॥ ५८ ॥

(समासः) प्रतिषेध एव रौक्ष्यमिति प्रतिषेधरौक्ष्यम् ॥ ५८ ॥

(सरलार्थः) यच्च, त्वं मयि बाणप्रहारं कृतवान् तेन मा लज्जितो भव, यतः, भवत्प्रक्षिप्तः बाण एव मां पुनः एतादृगवस्थाया अनुभवं कारितवान् अतोऽहं कृतोपकारं, त्वां, संमोहनास्त्राङ्गीकाराय प्रार्थये तत्र निषेधरूपं पारुष्यं त्वया न करणीयम् ॥ ५८ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) लज्जामतकरो, क्योंकि प्रहार करते हुये भी जब तू क्षणमात्र दयावान हुआ तो अब मुझ प्रार्थी पर निषेधरूप रूखापन करना तुझे उचित नहीं है ॥ ५८ ॥

तथेत्युपस्पृश्य पयः पवित्रं सोमोद्भवायाः सरितो नृसोमः ।
उदङ्मुखः सोऽस्त्रविदस्त्रमन्त्रं जग्राह तस्मान्निगृहीतशापात् ॥५९॥

(अन्वयः) नृसोमः, अस्त्रवित्, सः, तथेति, सोमोद्भवायाः, सरितः, पवित्रं, पयः, उपस्पृश्य, उदङ्मुखः, "सन्" निगृहीतशापात्, तस्मात्, अस्त्रमन्त्रं, जग्राह ॥ ५९ ॥

(टीका) नृसोमः = चन्द्रतुल्यः, "पुरुषश्रेष्ठः" अस्त्रवित् = अस्त्रज्ञः, सः = अजः तथा इति = तथास्तु इति, "अङ्गीकृत्य" सोमोद्भवायाः सरितः = नर्मदायाः, पवित्रं = पुण्यं, पयः = जलं, उपस्पृश्य = आचम्य, उदङ्मुखः = उत्तरास्यः, "सन्" निगृहीत-

(सरलार्थ हिन्दी) इस भांति मार्गमें दैवयोगसे अकस्मात् मित्र होने वाले उन दोनो में से एक गन्धर्व, कुबेरके उद्यानभूमि की ओर गया दूसरा (अज) सुराजसे शोभित विदर्भ देशको गया

तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुरुप्रहर्षः।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रश्चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली ॥ ६१ ॥

(अन्वयः) नगरोपकण्ठे, तस्थिवांसं, तं, तदागमारूढगुरुप्रहर्षः, क्रथकैशिकेन्द्रः, प्रवृद्धोर्मिः, ऊर्मिमाली, चन्द्रं, इव प्रत्युज्जगाम ॥ ६१ ॥

(टीका) नगरोपकण्ठे = नगरसमीपे, तस्थिवांसं = स्थितं, तं = अजं, तदागमारूढगुरुप्रहर्षः = अजागमनसञ्जातमहानन्दः, क्रथकैशिकेन्द्रः। विदर्भभूपः "इन्दूदये" प्रवृद्धोर्मिः = प्रवृद्धतरङ्गः, ऊर्मिमाली = समुद्रः, चन्द्रं = चन्द्रमसं इव, प्रत्युज्जगाम = प्रत्युद्गतवान् ॥

(समासः) नगरस्योपकण्ठमिति नगरोपकण्ठं तस्मिन्। तस्य आगमनेन आरूढः गुरुः प्रहर्षो यस्य सः। क्रथकैशिकानां इन्द्र इति क्रथकैशिकेन्द्रः। प्रवृद्धाः ऊर्मयो यस्मिन् सः। ऊर्मिरेव माला अस्त्यस्येति ऊर्म्मिमाली ॥ ६१ ॥

(सरलार्थः) यथा इन्दौ उदिते समुद्रः तं आलिङ्गनाय उच्छलितो भवति तथैव अजोऽपि यदा नगरसमीपमागतः तदा प्रसन्नाननो भोजराजः सम्मानयितुं स्वयं प्रत्युज्जगाम ॥ ६१ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे चन्द्रोदय होनेसे समुद्र आनन्दित हो उससे मिलता है उसी प्रकार नगर के समीप ठहरे हुये अजको विदर्भनाथ अत्यन्त प्रसन्न होकर मिला ॥ ६१ ॥

प्रवेश्य चैनं पुरमग्रयायी नीचैस्तथोपाचरदर्पितश्रीः।
मेने यथा तत्र जनः समेतो वैदर्भमागन्तुमजं गृहेशम् ॥ ६२ ॥

(अन्वयः) एनं, अग्रयायी, नीचैः, पुरं, प्रवेश्य, अर्पितश्रीः, तथा, उपाचरत्, यथा, तत्र, समेतः, जनः वैदर्भं, आगन्तुं "मेने" अजं, गृहेशं, मेने ॥ ६२ ॥

(टीका) एनं = अजं, अग्रयायी = सेवया अग्रे गच्छन्, नीचैः = नम्रः " सन्, पुरं = नगरं, प्रवेश्य = प्रवेशयित्वा, अर्पितश्रीः = दत्तच्छत्रचामरादिशोभः, तथा = तेन प्रकारेण, उपाचरत् = उपचरितवान्,

पुरुषास्तैः । प्रागद्वारस्य वेद्यां विनिवेशितौ पूर्णकुम्भौ यस्यास्तां । नवा चासौ उपकार्येति नवोपकार्या तां ॥ ६३ ॥

(सरलार्थः) यथा मदनः मनोरमं नवयौवनं स्वाधिष्ठानेन सुशोभितं करोति तथैव भोजराजस्य] सुचतुराः अधिकारपुरुषाः तमजं द्वारवेद्यां प्रतिष्ठापितमाङ्गलिककलशैः सुशोभितं मनोरमं राजभवनं प्रापितवन्तः ॥ ६३ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) द्वारकी वेदी पर भरे हुए कलशोंवाली, मनोहर विश्रामशाला में बाल्यावस्था से युवावस्थाको प्राप्त हुए कामदेव के समान रघुके प्रतिनिधि युवराज अजने वास किया ॥६३॥

तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं
कन्याललाम कमनीयमजस्य लिप्सोः ।
भावाववोधकलुषा दयितेव रात्रौ
निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव ॥ ६४ ॥

(अन्वयः) तत्र, स्वयंवरसमाहृतराजलोकं, कमनीयं, कन्याललाम, लिप्सोः, अजस्य, भावाववोधकलुषा, दयिता, इव, निद्रा, रात्रौ, चिरेण, नयनाभिमुखी, बभूव ॥ ६४ ॥

(टीका) तत्र = वस्त्रनिर्मितराजभवने, स्वयंवरसमाहृतराजलोकं = स्वयंवरसंमेलितभूपमण्डलं, कमनीयं = स्पृहणीयं, कन्याललाम = कन्यारत्नं, लिप्सोः = लब्धुमिच्छोः, अजस्य, भावाववोधकलुषा = अभिप्रायवेदनाप्रसन्ना, दयिता = प्रिया, इव, निद्रा = शयनं " स्यान्निद्रा शयनं स्वापः।" इत्यमरः, रात्रौ = निशायां, चिरेण = चिरकालानन्तरं, नयनाभिमुखी = नयनसंमुखी, बभूव = अभूत् ॥६४॥

(समासः) स्वयंवरार्थं समाहृतः राजलोको येन तत् । कन्यासु ललाम इति कन्याललाम । भावस्य अववोध इति भावाववोधः तेन कलुषा । नयनयोः अभिमुखीति नयनाभिमुखी ॥ ६४ ॥

(सरलार्थः) स्वयंवरे असाधारणरूपसम्पन्नस्य यस्य कन्यारत्नस्य प्राप्तये असंख्या राजानः समागताः, तस्य प्राप्तये अजोऽपि अत्युत्सुक आसीत् ॥ ६४ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) वहां स्वयंवर में राजकन्याको पाने के लिये अजकी आँखों में निद्रा रातमें अपने पतिके अभिप्रायको न जानने वाली मुग्धानायिका के समान बहुत समयके पीछे आई ॥ ६४ ॥

तं कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं
शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशाङ्गरागम् ।
सूतात्मजाः सवयसः प्रथितप्रबोधं
प्राबोधयन्नुषसि वाग्भिरुदारवाचः ॥ ६५ ॥

(अन्वयः) कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं, शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशाङ्गरागं, प्रथितप्रबोधं, तं, सवयसः, उदारवाचः, सूतात्मजाः उषसि, वाग्भिः, प्राबोधयन् ॥ ६५ ॥

(टीका) कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं = कर्णकुण्डलमर्दितोन्नतस्कन्धं, शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशाङ्गरागं = शय्याप्रच्छदवस्त्रसङ्घर्षणनिर्मृष्टकस्तूरिकाद्यङ्गरागं, प्रथितप्रबोधं = प्रकृष्टबोधसम्पन्नं, तं = अजं, सवयसः = समानवयस्काः, उदारवाचः = प्रौढगिरः, सूतात्मजाः = बन्दिपुत्राः, उषसि = प्रातःकाले, वाग्भिः = ललितबन्धैः स्तुतिपाठैः, प्राबोधयन् = प्रबोधयामासुः ॥ ६५ ॥

(समासः) कर्णयोर्भूषणमिति कर्णभूषणं ताभ्यां निपीडितौ पीवरौ अंसौ यस्य सः तं। शय्यायाः उत्तरच्छदस्य विमर्देन कृशः अङ्गरागो यस्य सः तं। प्रथितः प्रबोधो यस्य सः तं। समानानि वयांसि येषान्ते। उदारा वाचो येषां ते। सूतानां आत्मजा इति सूतात्मजाः ॥ ६५ ॥

(सरलार्थः) अथ प्रसुप्तस्य अजस्य विशालमंसद्वयं कर्णभूषणसङ्घर्षणाद्रेखाङ्कितं जातं, शय्यायाः उपर्यास्तरणवस्त्रस्य च घर्षणेन कस्तुरिकाद्यङ्गरागः धौतो बभूव। समतीतायां च निशायां मधुरकण्ठाः बन्दिनः मनोहरैः स्तुतिगीतिमङ्गलैः तं प्रबोधयामासुः ॥ ६५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) सोये हुए अज के स्कन्ध कर्णभूषण के सङ्घर्ष से कुछ दबसे गये थे। सोकर उठनेका समय होगया था इसलिये मधुरकण्ठ वाले सूत पुत्रों ने प्रातःकाल स्तुतियों तथा मांगलिक गीत एवं वाद्यों के द्वारा उसे जगाया ॥ ६५ ॥

१ सुललितगीतेन हि प्रभूणां बोधः क्रियते तथाहि भोजः— मृदुनिर्मर्दनैः पादे, गीतैर्व्यजनकैस्तथा । सुप्तो वा मधुरैर्गानैर्निद्रातो बोधयेन्नृपम्

रात्रिर्गता मतिमतां वर मुञ्च शय्यां
धात्रा द्विधैव ननु धूर्जगतो विभक्ता ।
तामेकतस्तव बिभर्ति गुरुर्विनिद्र-
स्तस्या भवानपरधुर्यपदावलम्बी ॥ ६६ ॥

(अन्वयः) हे मतिमतां वर ! रात्रिः, गता, शय्यां, मुञ्च, धात्रा, जगतः, धूः, द्विधा एव, विभक्ता, तां, एकतः, तव, पिता, विनिद्रः, "सन्" बिभर्ति, भवान्, तस्याः, अपरधुर्यपदावलम्बी, भव ॥ ६६ ॥

(टीका) हे मतिमतां वर ! = हे विज्ञश्रेष्ठ ! रात्रिः = निशा, गता = अतीता, शय्यां = पर्यङ्कं, मुञ्च = जहिहि, धात्रा = ब्रह्मणा, जगतः = संसारस्य, धूः = कार्यभारः, द्विधा = द्विप्रकारिका, एव, विभक्ता = विभज्य स्थापिता, तां = धुरं, एकतः = एककोटौ, तव = भवतः, पिता = गुरुः, " रघुः " विनिद्रः = निरलसः " सन्, बिभर्ति = धारयति, भवानपि " युवराजत्वात् " तस्याः जगत्पालनरूपधुरः, अपरधुर्यपदावलम्बी = अन्यभारवाहकस्थानावलम्बी, भव ॥६६॥

(समासः) मतिरस्यास्तीति मतिमान् तेषां । विगता निद्रा यस्मात् सः । धुरं वहतीति धुर्यः, तस्य पदमिति धुर्यपदं अपरञ्च तद्धुर्यपदमिति अपरधुर्यपदं तस्य अवलम्बी ॥ ६६ ॥

(सरलार्थः) हे कुशाग्रबुद्ध ! रात्रिः गता, प्रातःकालो जातः, शयनादुत्तिष्ठ, ब्रह्मदेवः पृथ्वीसंरक्षणरूपं कार्यभारं द्विधा विभज्य त्वयि त्वत्पितरि च समर्पितवान्, भवतः पिता तु निद्रां परित्यज्य स्वकार्यं करोत्येव भवानपि तां विहाय प्रजापालनरूपं कार्यं साधय ॥ ६६ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) हे सूक्ष्मबुद्धिवाले ? रात बीत गई, सवेरा हो आया, शय्या छोड़ो । विधाताने संसार के भार को दो हिस्से में बांटा है, जिसके एक हिस्से का भार तेरा पिता निरलस हो उठा रहा है तूभी निद्राछोड़ दूसरी ओर के भार को उठा ॥ ६६ ॥

निद्रावशेन भवताप्यनवेक्षमाणा
पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव ।
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी
सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः ॥ ६७ ॥

(अन्वयः) निद्रावशेन, भवता, पर्युत्सुकत्वं, अपि, निशि, खण्डि-
अबला, इव, अनवेक्षमाणा " सती " लक्ष्मीः, येन, " चन्द्रेण
" विनोदयति, सः, चन्द्रः, अपि, दिगन्तलम्बी, " सन् " त्वदा-
रुचिं विजहाति ॥ ६७ ॥

(टीका) निद्रावशेन = निद्रायत्तेन, भवता = त्वया, पर्युत्सुकत्व-
= अत्युत्कण्ठितत्वमपि, निशि = निशायां, खण्डिता = अन्याऽ-
ज्ञानकलुपिता, अबला = नायिका, इव, अनवेक्षमाणा = अवि-
यन्ती, सती, लक्ष्मीः = श्रीः, येन = चन्द्रेण सह, विनोदयति =
मोदं करोति, सः, चन्द्रोऽपि, दिगन्तलम्बी = पश्चिमाशाङ्गतः,
सन् " त्वदाननरुचिं = त्वन्मुखसादृश्यं, विजहाति = त्यजति ॥ ६७ ॥

(समासः) निद्रायाः वश इति निद्रावशः तेन । दिशामन्त इति
दिगन्तः तं लम्बत इति दिगन्तलम्बी । तव आननं त्वदाननं, तस्य
रुचिस्ताम् ॥ ६७ ॥

(सरलार्थः) निशायां त्वयि निद्रिते सति मन्ये तव चिरप्रिय-
मा लक्ष्मीः त्वां निद्रारूपायां अन्यस्यां कस्याञ्चिन्नायिकायां
आसक्तं दृष्ट्वा कुपिता भूत्वा स्वमनःसन्तोषार्थं त्वदाननसदृशं चन्द्रं
समाश्रयते सोऽपि चन्द्रः इदानीं अस्ताचलावलम्बी क्षीणप्रभः सन्
त्वन्मुखसादृश्यं जहाति अतस्त्वन्मुखसादृश्यस्य अन्यस्याभावात्
ता लक्ष्मीः निराश्रया जाता तत्त्वं तस्या विनोदार्थं तां गृहाण ॥६७॥

(सरलार्थ हिन्दी) सोए हुए तुमको मानो निद्रारूपी किसी
दूसरी स्त्रीमें आसक्त जान कुपित हुई लक्ष्मी तेरे मुखके समान
कान्तिवाले चन्द्रका आश्रयकरती है वह चन्द्रभी प्रभात के समय
अस्त होजाता है इसलिये निराश्रित उस लक्ष्मी को तूं ग्रहण कर॥६७॥

तद्वल्गुना युगपदुन्मिषितेन ताव-
सद्यः परस्परतुलामधिरोहतां द्वे ।
प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारमन्त-
श्चक्षुस्तव प्रचलितभ्रमरं च पद्मम् ॥ ६८ ॥

(अन्वयः) तव अन्तः, प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारं, तव, चक्षुः,
चलितभ्रमरं, पद्मं, च, " इति " द्वे, वल्गुना, युगपत्, तावत्,
न्मिषितेन, सद्यः, द्वे, अपि, परस्परतुलां, अधिरोहताम् ॥ ६८ ॥

(टीका) तत् = तस्मात्कारणात्, अन्तः = मध्ये, प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारं = चलन्मनोहरकनीनिकं, तव = ते, चक्षुः = नेत्रं, प्रचलितभ्रमरं = चलद्भृङ्गं, पद्मं = कमलं च, "इति" द्वे "अपि" वल्गुना = मनोज्ञेन, युगपत् = एककालमेव, तावद् उन्मिषितेन = उन्मीलितेन; "समकालमेव विकसितेन" सद्यः = तत्क्षणे, परस्परतुलां = अन्योन्यसादृश्यं, अधिरोहतां = प्राप्नुताम् ॥ ६८ ॥

(समासः) प्रस्पन्दमाना परुषेतरा तारा यस्य तत् । प्रचलिताः भ्रमराः यस्मिन् तत् प्रचलितभ्रमरम् ॥ ६८ ॥

(सरलार्थः) इदानीं बालातपसंयोगात् कमलानि विकासं प्राप्नुवन्ति, अतस्त्वमपि यदि अस्मिन्नेव समये निजं नेत्रद्वन्द्वं उन्मीलयसि तदा एककाले एव विकसितं चञ्चलनीलतारकायुतं त्वदीयं नेत्रं, नीलभ्रमरशोभितं पद्मं च एतदुभयमपि परस्परं सादृश्यं प्राप्नुयाताम् ॥ ६८ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) चञ्चल और मनोहर पुतलीवाले तेरे नेत्र और भीतर फिरते हुए भौंरेवाले कमल ये दोनों अपने २ सुन्दर विकाशसे परस्पर समानता प्राप्त करें अर्थात् कमल खिल रहा है आपभी अपनी आंखें खोलें ॥ ६८ ॥

वृन्ताच्छ्लथं हरति पुष्पमनोकहानां
संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः ।
स्वाभाविकं परगुणेन विभातवायुः
सौरभ्यमीप्सुरिव ते मुखमारुतस्य ॥ ६९ ॥

(अन्वयः) विभातवायुः, ते, मुखमारुतस्य, स्वाभाविकं, सौरभ्यं, परगुणेन, ईप्सुः, इव अनोकहानां, श्लथं, पुष्पं, वृन्तात्, हरति, अरुणांशुभिन्नैः, सरसिजैः, संसृज्यते ॥ ६९ ॥

(टीका) विभातवायुः = प्रभातवायुः, ते = तव, मुखमारुतस्य = निश्वासवायोः, स्वाभाविकं = नैसर्गिकं, सौरभ्यं = सौगन्ध्यं, परगुणेन = अन्यदीयगुणेन, ईप्सुः = आप्तुमिच्छुः, इव, अनोकहानां = वृक्षाणां, श्लथं = शिथिलं, पुष्पं = कुसुमं, वृन्तात् = प्रसवबन्धनात्, हरति = अपहरति, "आदत्ते" अरुणांशुभिन्नैः = सूर्यांशुविकसितैः, सरसिजैः = कमलैः, संसृज्यते = संगच्छते ॥ ६९ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) नीचेके होंठपर शोभापाकर दांतोकी कान्ति सहित तुम्हारी साधारण हंसी (मुस्कुराहट) के समान वृक्षों के लालपत्तों में पड़ीहुई हारके स्वेत मोतियोंकीसी स्वच्छतावाली ओसकी बूंद अत्यन्त शोभाको प्राप्त हो रही है ॥ ७० ॥

यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानु-
रन्हाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्।
आयोधनाग्रसरतां त्वयि वीर ? याते
किं वा रिपूंस्तव गुरुः स्वयमुच्छिनत्ति ॥ ७१ ॥

(अन्वयः) प्रतापनिधिः, भानुः, यावत्, न, आक्रमते, तावत्, अन्हाय, अरुणेन, तमः, निरस्तं, हे वीर !, त्वयि, आयोधनाग्रसरतां, याते, सति, तव, गुरुः, किं, रिपून्, स्वयं, उच्छिनत्ति, ॥ ७१ ॥

(टीका) प्रतापनिधिः = सूर्यः, यावत् न आक्रमते = नोच्छिनत्ति, तावत्, अन्हाय = झटिति, "द्राग्झटित्यञ्जसान्हाय" इत्यमरः, अरुणेन = सूर्यसारथिना, तमः = तमिस्रं, निरस्तं = दूरीकृतं, हे वीर ! = हे शूर ! त्वयि = भवति, आयोधनाग्रसरतां = संग्रामाग्रगामित्वं याते = प्राप्ते सति " तव = भवतः, गुरुः = रघुः, किं, रिपून् = शत्रून्, स्वयं, उच्छिनत्ति = उन्मूलयति, अपि तु नोच्छिनत्येव ॥ ७१ ॥

(समासः) प्रतापस्य निधिरिति प्रतापनिधिः, अग्रेसरतीत्यग्रेसरः तस्यभावोऽग्रसरता। आयोधनेषु अग्रसरतेत्यायोधनाग्रसरता तां॥७१॥

(सरलार्थः) यथा सूर्यसारथिः "अरुणः" सूर्योदयात्प्रागेव तदीयसाहाय्यं विनैव अन्धकारनिमग्नं समस्तमेव जगत् अन्धकार-नाशनेन प्रकाशयति तथैव त्वमपि उत्थितः सन् पितृसाहाय्यं विनैव सकलं अरिमण्डलं उन्मूलय ॥ ७१ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जब तक तेजका समुद्र सूर्य उदित नहीं हुआ उसके पहलेही उसके सारथी अरुणने अन्धेरा मिटा दिया, हे वीर ? संग्राम में तुम्हारे अग्रगामी होते हुए भी क्या अब तेरा पिता आप वैरियों को मारेगा ॥ ७१ ॥

शय्यां जहत्युभयपक्षविनीतनिद्राः
स्तम्बेरमा मुखरशृङ्खलकर्षिणस्ते ।

येषां विभान्ति तरुणारुणरागयोगा

भिन्नाद्रिगैरिकतटा इव दन्तकोशाः ॥ ७२ ॥

(अन्वयः) मुखरशृङ्खलकर्षिणः, उभयपक्षविनीतनिद्राः, ते, स्तम्बेरमाः, शय्यां, जहति, येषां दन्तकोशाः, तरुणारुणरागयोगात्, भिन्नाद्रिगैरिकतटाः, इव, विभान्ति, ॥ ७२ ॥

(टीका) उभयपक्षविनीतनिद्राः = वामदक्षिणपार्श्वपरिवर्तनापगतनिद्राः, मुखरशृङ्खलकर्षिणः = " अङ्गसञ्चालनात् " शब्दायमाननिगडाकर्षिणः, ते = तव, स्तम्बेरमाः = इभाः, हस्तिनः, शय्यां = शयनं, जहति = त्यजन्ति, येषां = स्तम्बेरमाणां दन्तकोशाः = दन्तकुड्मलाः, तरुणारुणरागयोगात् = बालार्करागसंयोगात्, भिन्नाद्रिगैरिकतटाः = छिन्नाद्रिधातुखण्डाः, इव, विभान्ति = शोभन्ते ॥७२॥

(समासः) उभाभ्यां पक्षाभ्यां विनीता निद्रा येषान्ते। मुखरश्चासौ शृङ्खलो मुखरशृङ्खलः, तं कर्षन्ति तच्छीलाः मुखरशृङ्खलकर्षिणः। स्तम्बे रमन्त इति स्तम्बेरमाः। दन्ताः कोशाः इव दन्तकोशाः। तरुणश्चासावरुण इति तरुणारुणः तस्य रागः तस्य योगात्। अद्रेः गैरिकतटा अद्रिगैरिकतटाः, भिन्ना अद्रिगैरिकतटा इति भिन्नाद्रिगैरिकतटाः ॥ ७२ ॥

(सरलार्थः) तव सेनागजेन्द्राः वामदक्षिणपार्श्वद्वयाङ्गपरिवर्तनपुरःसरं निद्रां विहाय उत्तिष्ठन्ति तेषां अङ्गसञ्चालनात् शृङ्खलानां " झन् झन् इति " महान् शब्दः समुत्पन्नो भवति तेषां दन्ताश्च बालारुणसंयोगेन पर्वतोत्खातकेलिसंलग्नगैरिकरागरक्ता इव शोभन्ते ॥ ७२ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) शब्द करती हुई साकलोंको (सिकड़) खैंचते हुए तुम्हारे हाथी दोनों ओर (दाहिनी ओर बाईं ओर) लोटपोटकर निद्रा दूर करते हैं। जिनके दांतोंके जोड़े नई धूपके संयोगसे पहाड़के गेरुए टुकड़ों के खोदनेसे लगी हुई लाली की नाइ चमकते हैं ॥ ७२ ॥

दीर्घेष्वमी नियमिताः पटमण्डपेषु

निद्रां विहाय वनजाक्ष ! वनायुदेश्याः ।

वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि

लेह्यानि सैन्धवशिलाशकलानि वाहाः ॥ ७३ ॥

(अन्वयः) हेवनजाक्ष ? दीर्घेषु, पटमण्डपेषु, नियमिताः, वनायुदेश्याः, अमी, वाहाः, निद्रां विहाय, वक्त्रोष्मणा, पुरोगतानि, लेह्यानि, सैन्धवशिलाशकलानि, मलिनयन्ति ॥ ७३ ॥

(टीका) हेवनजाक्ष ?=हेकमलाक्ष, दीर्घेषु=महत्सु, पटमण्डपेषु=वस्त्रगृहेषु, नियमिताः=बद्धाः, वनायुदेश्याः=पारसीकाः, " वनायुजाः पारसीकाः " इति विश्वः, अमी=एते, वाहाः=अश्वाः, निद्रां, विहाय=त्यक्त्वा, पुरोगतानि=अग्रस्थापितानि, लेह्यानि =आस्वाद्यानि, सैन्धवशिलाशकलानि=सैन्धवशिलाखण्डानि, वक्त्रोष्मणा=मुखवाष्पेण, मलिनयन्ति=मलिनानि कुर्वन्ति ॥ ७३ ॥

(समासः) वनजे इव अक्षिणी यस्यासौ वनजाक्षः, तत्सम्बुद्धौ पटानां मण्डपानि पटमण्डपानि तेषु । वनायुदेशे भवा वनायुदेश्याः । सैन्धवशिलानां शकलानीति सैन्धवशिलाशकलानि ॥ ७३ ॥

(सरलार्थः) हे कमलनयन ? वस्त्रनिर्मितवृहन्मण्डपेषु वद्धाः वनायुदेशोत्पन्नाः अश्वाः निद्रां विहाय सम्मुखस्थितानि सैन्धवशिलाखण्डानि आस्वादयन्तः सन्तः निजनिश्वासवायुभिः तानि मलिनानि कुर्वन्ति ॥ ७३ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) हे कमलनेत्र ! बड़े २ कनातके घेरोंमें बन्धे हुए पारसी देशके ये घोड़े निद्रा छोड़ आगे रक्खे हुए सेन्धा नोनके टुकड़ोंको चाटते हुए मुखकी भांपसे उन्हें मैला कर रहे हैं॥७३॥

भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः

स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः ।

अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता-

मनुवदति शुकस्ते मञ्जुवाकपञ्जरस्थः ॥ ७४ ॥

(अन्वयः) म्लानपुष्पोपहारः, विरलभक्तिः, भवति, प्रदीपाः, स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः, " वर्तन्ते " मञ्जुवाक्, पञ्जरस्थः, अयं, ते, शुकः, त्वत्प्रबोधप्रयुक्तां, नः, गिरं, अनुवदति ॥ ७४ ॥

१ सैन्धवलवणमश्वानां श्लेष्मनिवारणार्थं दीयते । तथा च
पूर्वाण्हकाले चाश्वानां प्रायशो लवणं हितम् । शूलमोहविबन्धघ्नं लवणं सैन्धवं वरम् । इति धनञ्जयः ।

(टीका) म्लानपुष्पोपहारः=मुखवाष्पम्लानपुष्पपूजः, विरल-
भक्तिः=विरलरचनः, भान्ति, प्रदीपाः=दीपाः, स्वकिरणपरिवेषो-
द्भेदशून्याः=निजांशुमण्डलनिर्गमशून्याः, "वर्तन्ते" मञ्जुवाक्=
मधुरवचनः, पञ्जरस्थः=पिञ्जरस्थितः, अयं=एषः, ते=तव, शुकः=
शुकनामा पक्षी, अपि, त्वत्प्रबोधप्रयुक्तां=त्वत्प्रबोधार्थमुच्चारितां, नः=
अस्माकं, गिरं=वाणीं, अनुवदति ॥ ७२ ॥

(समासः) पुष्पाणामुपहार इति पुष्पोपहारः, म्लानश्चासौ पुष्पोपहार इति म्लानपुष्पोपहारः, विरला भक्तिरिति विरलभक्तिः। स्वकिरणानां परिवेष इति स्वकिरणपरिवेषः, तस्य उद्भेदेन शून्याः। मञ्जुः वाक् यस्यासाविति मञ्जुवाक्। पञ्जरे तिष्ठतीति पञ्जरस्थः तव प्रबोधस्त्वत्प्रबोधस्तत्र प्रयुक्ता ताम् ॥ ७२ ॥

(सरलार्थः) उपायनार्थं आनीतानि पुष्पाणि मुखवाष्पादिना मलिनानि जातानि। प्रदीपा अपि निजकिरणमण्डलैः वहिः द्योतितुं असमर्थाः सञ्जाताः। अयञ्च पिञ्जरस्थापितः तव शुकः अपि त्वत्प्रबोधार्थं उच्चारितां अस्माकं वाणीं अनुवदति ॥ ७४ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) भेंटकेफूल कुह्मलाजानेसे सजावट मलिन होरही है, दीपक अपने किरण मण्डलसे बाहर चमकने में असमर्थ हो रहा है, और पिंजड़ेमें रक्खा हुआ यह तुह्मारा सुग्गाभी अपनी मीठी वाणी में तुह्मारे जगाने के लिये हमलोगों की कही हुई वाणीका अनुवाद कर रहा है ॥ ७४ ॥

इति विरचितवाग्भिर्बन्दिपुत्रैः कुमारः
सपदि विगतनिद्रस्तल्पमुज्झाञ्चकार ।
मदपटुनिनदद्भिर्बोधितो राजहंसैः
सुरगज इव गाङ्गं सैकतं सुप्रतीकः ॥ ७५ ॥

(अन्वयः) इति, विरचितवाग्भिः, वन्दिपुत्रैः, सपदि, विगतनिद्रः, कुमारः, मदपटु-निनदद्भिः, राजहंसैः, बोधितः, सुप्रतीकः सुरगजः, गाङ्गं, सैकतं, इव, तल्पं, उज्झाञ्चकार ॥ ७५ ॥

(टीका) इति=इत्थं, विरचितवाग्भिः=रचितस्तुतिपाठैः, वन्दिपुत्रैः=वैतालिकैः, सपदि=तत्क्षणे, "शीघ्रमेव" "सद्यः सपदि तत्क्षणे, इत्यमरः, विगतनिद्रः=अपगतनिद्रः, कुमारः=अजः, मदपटु

=मदमधुरं, "यथा स्यात्तथा" निनदद्भिः=निनादं कुर्वद्भिः राजहंसैः, बोधितः=जागरितः, सुप्रतीकः=सुप्रतीकाभिधेयः, सुरगजः=दिग्गजः, गाङ्गं=गङ्गासम्बन्धि, सैकतं=सिकतामयं, "पुलिनं" इव, तल्पं=शय्यां, उज्झाञ्चकार=तत्याज ॥ ७५ ॥

(समासः) विरचिता वाचो यैस्तैः । वन्दिनः पुत्रा इति तैः । विगता निद्रा यस्यासौ । मदेन पटु इति मदपटु । गङ्गाया इदं गाङ्गम् ॥ ७५ ॥

(सरलार्थः) मधुरभाषिभिः राजहंसैः जागरितः सुप्रतीकनामा दिग्गजः गङ्गायाः बालुकामयप्रदेशं यथा त्यजति तथैव उक्तप्रकारेण वचनरचनाचतुरैः स्तुतिपाठकैः जागरितः कुमारोऽपि शय्यां तत्याज ॥ ७५ ॥

(सरलार्थ हिन्दी) जैसे मधुरभाषी राजहंसों के जगाए हुए सुप्रतीक नाम सुरगजने गङ्गाका रेतीला तट छोड़ा उसी प्रकार ऊपर कहे हुए वचनोंकी रचना करने वाले सूतपुत्रों से जगाए हुए कुमार अजने भी शय्या (सेज) तुरंत छोड़ा ॥ ७५ ॥

अथ विधिमवसाय्य शास्त्रदृष्टं दिवसमुखोचितमञ्चिताक्षिपक्ष्मा ।
कुशलविरचितानुकूलवेषः क्षितिपसमाजमगात्स्वयंवरस्थम् ॥७६॥

(अन्वयः) अथ, अञ्चिताक्षिपक्ष्मा, "सः" शास्त्रदृष्टं, दिवसमुखोचितं, विधिं, अवसाय्य, कुशलविरचितानुकूलवेषः, "सन्" स्वयंवरस्थं, क्षितिपसमाजं, अगात् ॥ ७६ ॥

(टीका) अथ=शय्यात्यागानन्तरं, अञ्चिताक्षिपक्ष्मा=चारुनेत्रलोमा, सः=अजः, शास्त्रदृष्टं=शास्त्रावगतं, दिवसमुखोचितं=प्रभातोचितं, विधिं=अनुष्ठानं, अवसाय्य=समाप्य कुशलविरचितानुकूलवेषः = प्रसाधनचतुररचितस्वयंवरोचितवेषः "सन्" स्वयंवरस्थं=स्वयंवरस्थितं, क्षितिपसमाजं=भूपसमूहं अगात्=जगाम ॥ ७६ ॥

(समासः) अञ्चितानि अक्षिपक्ष्माणि यस्य सः । शास्त्रे दृष्टमिति शास्त्रदृष्टं । दिवसस्य मुखे उचितमिति दिवसमुखोचितम् । कुशलैः विरचितः अनुकूलवेशो यस्य सः । स्वयंवरे तिष्ठतीति स्वयंवरस्थः तं । क्षितिपानां समाजः क्षितिपसमाजः तं ॥ ७६ ॥

रघुवंशस्य द्वितीयादिसर्गचतुष्टये प्रश्नाः ।

सन् १९११

अथैकधेनोरपराधचण्डाद्गुरोः कृशानुप्रतिमाद्बिभेषि ।
शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुं गाः कोटिशः स्पर्शयता घटोघ्नीः ॥ १ ॥
अवेक्ष्य चानेन परार्ध्यजन्मना स्थितेरभेत्ता स्थितिमन्तमन्वयम् ।
स्वमूर्तिभेदेन गुणाग्र्यवर्तिना पतिः प्रजानामिव सर्गमात्मनः ॥ २ ॥
आपादपद्मप्रणताः कलमा इव ते रघुम् ।
फलैः संवर्धयामासुरुत्खातप्रतिरोपिताः ॥ ३ ॥
खर्जूरीस्कन्धनद्धानां मदोद्गारसुगन्धिषु ।
कटेषु करिणां पेतुः पुन्नागेभ्यः शिलीमुखाः ॥ ४ ॥
भक्तिः प्रतीक्ष्येषु कुलोचिता ते पूर्वान् महाभाग तयातिशेषे ।
व्यतीतकालस्त्वहमभ्युपेतस्त्वामर्थिभावादिति मे विषादः ॥ ५ ॥
तस्यैकनागस्य कपोलभित्त्योर्जलावगाहक्षणमात्रशान्ता ।
वन्येतरानेकपदर्शनेन पुनर्दिदीपे मददुर्दिनश्रीः ॥ ६ ॥
तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुरुप्रहर्षः ।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रश्चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली ॥ ७ ॥
एषां दण्डान्वयं खण्डान्वयं वावलम्ब्य व्याख्या कार्या ।

सन् १९१२

(१) निवर्त्य राजा दयितां दयालुः (२) पुरन्दरश्रीःपुरमुत्पताकम् ।
(३) ततो निषङ्गादसमग्रमुद्धृतं (४) इक्षुच्छायानिषादिन्यः ।
(५) तमीशः कामरूपाणाम् (६) तं श्लाघ्यसम्बन्धमसौ विचिन्त्य ।
दण्डान्वयं खण्डान्वयं वावलम्ब्यैषां व्याख्या कार्या ।

सन् १९१३

(१) धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्रभावं (२) तदङ्गमग्र्यं मघवन्महाक्रतोः
(३) स सैन्यपरिभोगेण (४) अपनीतशिरस्त्राणाः
(५) तमर्चयित्वा विधिवद्विधिज्ञः (६) अथ प्रभावोपनतैः कुमारं ।
एषामन्वयमुखेन व्याख्या कार्या ।

मालूम होता है कि मुझे आपके पास इससे पहले ही आजाना चाहिये था। अस्तु । यद्यपि इस समय आप केवल नामधारी राजा के सदृश होरहे हैं पर, फिरभी देवताओं की तृप्ति के लिये स्वयं क्षीण चन्द्रकी तरह भिक्षुकों में सर्वस्व दान किये आप अनुपम सुषमाका विकास कर रहे हो । जैसे किसी कवि ने कहा है कि—

मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो
मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः ।
कलाशेषश्चन्द्रः, सुरतमृदिता बालवनिता,
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नृपाः ॥

अब मैं गुरुदक्षिणा के लिये और किसी राजा के पास जाता हूं " इतना कह कर ज्योंही कौत्स ने जाना चाहा कि राजा रघुने उन्हे रोक कर पूछा कि हे विद्वन् कितनी धनकी आपको आवश्यकता है इसपर कौत्स ने गुरु महर्षि वरतन्तु के साथ की हुई सारी बातें कहकर उसे चौदहकरोड़ की आवश्यकता बतलाई । रघुने यह कहकर कि आजतक मेरे यहां से कोई अतिथि अपने मनोरथ को बिना पूरा किये लौटा नहीं इस लिये आप मेरे इस पवित्र अग्निशाला में दो तीन दिन कृपा कर प्रतीक्षा करें मैं आपके कार्य के लिये प्रयत्न करता हूं । कौत्सने इसे स्वीकार किया । रघुने कुबेर पर प्रातःकाल चढ़ाई करने का निश्चय किया । रघु प्रातःकाल ज्योंही रथ पर पैर रखता है कि खजाने के पहरेदारों ने आ विनीत होकर निवेदन किया कि "रात्रि में " कोष-गृह " में सुवर्ण की वृष्टि हुई है । " रघु ने जाकर उसे देखा और पर्वत की तरह वह सुवर्ण की सारी राशि विद्वान् कौत्स को देदी कौत्स ने उन्हें पुत्र लाभ का आशीर्वाद देकर गुरु के आश्रम की ओर प्रयाण किया ।

कुछ दिन के बाद रघु को एक पुत्र हुआ जिसका नाम "अज" रक्खा गया । क्रमशः समय पाकर शिक्षा आदि पाने के उपरान्त अज युवा अवस्था को प्राप्त हुआ और इन्दुमती के स्वयंवर में प्रस्थान किया, मार्ग में मतङ्ग ऋषि के शाप से गज शरीर को प्राप्त प्रियंवद गन्धर्व को मार कर उसका उस योनिसे उद्धार किया । प्रसन्न होकर उसने उनको सम्मोहन नामका अस्त्र दिया । इस प्रकार वह राजा भोज के नगर में पहुंचा । भोज ने उसका स्वागत किया और एक सुन्दर सजे सजाए राजभवन में ठहराया अज ने स्नानादि क्रिया से निवृत्त हो विश्राम किया और दूसरे दिन प्रातःकाल स्वयंवरोचित वेश-भूषा को धारण कर स्वयंवरस्थ राज महल की ओर प्रयाण किया ।

सन् १९२१

(१) पुरन्दरश्रीः पुरमुत्पताकम्० (२) अमंस्त चानेन परार्ध्यजन्मना० ।
(३) [illegible] (४) नाकान्तरेषु पतितं [illegible] ।
(५) [illegible] स्वसंस्कृतेन लेख्यः ।

सन् १९२२

(अ) संचारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः ॥
(क) सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण न्याय्या मया मोचयितुं भवत्तः ।
न पारणा स्याद्विहता तवैवं भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियार्थः ॥
(ख) त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवीमशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवत् ।
न केवलं तद्गुरुरेकपार्थिवः क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि सः ॥
(ग) कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम् ।
रत्नपुष्पोपहारेण छायामानर्च पादयोः ॥
(५) एवं तयोरध्वनि दैवयोगादासेदुषोः सख्यमचिन्त्यहेतु ।
एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान् सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान् ॥
एते श्लोका दण्डान्वयमुखेन समासविग्रहप्रदर्शनपूर्वकं व्याख्येयाः ।
सिंहदिलीपयोः संवादः संस्कृतभाषया संक्षेपतो लेख्यः ॥

सन् १९२३

(१) विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य ।
उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः ॥ १ ॥
न संयतस्तस्य बभूव रक्षितुर्विसर्जयेद्यं सुतजन्महर्षितः ।
ऋणाभिधानात्स्वयमेव केवलं तदा पितॄणां मुमुचे स बन्धनात् ॥ २ ॥
दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि ।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे ॥ २ ॥
शरैरुत्सवसङ्केतान् कृत्वा स विरतोत्सवान् ।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान् ॥ ४ ॥
संमोचितः सत्त्ववता त्वयाहं शापाच्चिरप्रार्थितदर्शनेन ।
प्रतिप्रियं चेद्भवतो न कुर्यां वृथा हि मे स्यात्स्वपदोपलब्धिः ॥ ५ ॥
(क) एते श्लोका दण्डान्वयेन समासविग्रहप्रदर्शनपूर्वकं व्याख्येयाः ।
(ग) अन्तिमश्लोके कः केन शप्तः केन च मोचितः ।
(२) कौत्सस्य रघोश्च संवादः स्वसंस्कृतेन लेख्यः ॥ २० ॥

(ङ) यदात्थ राजन्यकुमार तत्तथा यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः ।
जगत्प्रकाशं तदशेषमिज्यया भवद्गुरुर्लङ्घयितुं ममोद्यतः ॥

(च) ततः प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम् ।
शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन् रसानिव ॥

(२) संस्कृतभाषया संक्षेपेण पञ्चमसर्गीयकथा लिख्यताम् ।

(३) द्वितीयचतुर्थश्लोकयोर्वर्त्तमानयोश्छन्दसोर्लक्षणे लिख ।

(४) विद्युन्माला, मालिनी, प्रहर्षिणी, शिखरिणी, स्रग्धराणां लक्षणान्युदाहरणानि च प्रदर्शय ।

सन् १९३२

(१) दण्डान्वयमवलम्ब्य व्याख्यायन्ताम् ।

(क) तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना ।
तथा हि सर्वे तस्यासन् परार्थैकफला गुणाः ॥

(ख) क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः ।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा ॥

(ग) शतैस्तमक्ष्णामनिमेषवृत्तिभिर्हरिं विदित्वा हरिभिश्च वाजिभिः ।
अवोचदेनं गगनस्पृशा रघुः स्वरेण धीरेण निवर्त्तयन्निव ॥

(घ) स प्रतापं महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं न्यवेशयत् ।
अङ्कुशं द्विरदस्येव यन्ता गम्भीरवेदिनः ॥

(ङ) शरीरमात्रेण नरेन्द्र तिष्ठन्नाभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः ।
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः ॥

(२) प्रथमश्लोके महाभूतपदेन केषां ग्रहणम् ?
तृतीयश्लोके एनमिति कथं सिध्यति ?
चतुर्थश्लोके च गम्भीरवेदिनः किं लक्षणमेतत्सर्वं लिख—

(३) हिन्दीभाषया एतेषां वाक्यानां विशदार्थं लिख—

(क) त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता ।

(ख) चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे ।

(ग) प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् ।

(घ) आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ।

(४) दोधक-तोटक-पृथ्वीच्छन्दसां सोदाहरणानि लक्षणानि प्रदर्शय

(५) "सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः" कस्यच्छन्दसोऽयं पादः?
सलक्षणं तच्छन्दोऽभिधीयताम् ।

